संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय) की त्रैमासिक यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका

खंड–37, अंक–1 | आईएसएसएन : 2321–2608 | जनवरी-मार्च 2025

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
नई दिल्ली

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय) की त्रैमासिक यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका

खंड-37, अंक-1 जनवरी-मार्च 2025 आईएसएसएन : 2321-2608

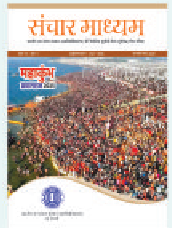

संचार माध्यम के बारे में:

'संचार माध्यम' (ISSN : 2321-2608) भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), नई दिल्ली की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित सामग्री चयन में उच्च मानदंडों का पालन करने वाली अग्रणी और यूजीसी केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में आरंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध-पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों के लिए निष्पक्ष समीक्षा की एक कठोर प्रक्रिया का पालन किया जाता है। भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय) के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है।

प्रधान संपादक

डॉ. अनुपमा भटनागर
कुलपति
भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
नई दिल्ली

संपादक

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार
अध्यक्ष, स्ट्रैटिजिक कम्युनिकेशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
नई दिल्ली

संपादक मंडल

श्री अच्युतानंद मिश्र
वरिष्ठ पत्रकार एवं पूर्व कुलपति, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. सच्चिदानंद जोशी
सदस्य सचिव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली

प्रो. ओम प्रकाश सिंह
पूर्व प्रोफेसर एवं निदेशक, महामना मदनमोहन मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

प्रो. पवित्र श्रीवास्तव
विभागाध्यक्ष, विज्ञापन एवं जनसंपर्क विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. आनंद प्रधान
प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक, भारतीय जन संचार संस्थान, (समविश्वविद्यालय) ढेंकनाल परिसर, ओडिशा

प्रो. अनिल कुमार सौमित्र
प्रोफेसर, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), जम्मू परिसर

प्रो. प्रमोद कुमार
प्रोफेसर, अँग्रेजी पत्रकारिता एवं संपादक, 'संचार माध्यम', भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), नई दिल्ली

डॉ. शुचि यादव
अध्यक्ष, मीडिया अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. राजेश कुशवाहा
सह आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), अमरावती परिसर

डॉ. राकेश उपाध्याय
सह आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), नई दिल्ली

डॉ. विनीत उत्पल
सहायक आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), जम्मू परिसर

श्री संत समीर
एसोसिएट प्रकाशन, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), नई दिल्ली

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय) की ओर से प्रो. (डॉ.) वीरेंद्र कुमार भारती द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

*सभी तरह के संपादकीय पत्राचार और लेख भेजने के लिए **संपादक, संचार माध्यम,** भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), जेएनयू न्यू कैंपस, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110067 (भारत) को संबोधित किया जाना चाहिए (दूरभाष : 91-11-26742920, 26741357)*

***ईमेल :** sancharmadhyamiimc@gmail.com, drpk.iimc@gmail.com*
***जर्नल का वेब लिंक :** https://www.iimc.gov.in/about-journal-0*
***वेबसाईट :** www.iimc.gov.in*

'संचार माध्यम' में प्रकाशित विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति हैं। भारतीय जन संचार संस्थान का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

कुलपति की कलम से

डॉ. अनुपमा भटनागर
कुलपति
भारतीय जन संचार संस्थान
(समविश्वविद्यालय)

भारत एक विविधतापूर्ण देश है, जहाँ विभिन्न जातियों, भाषाओं और बोलियों का समावेश है। जनजातीय समुदाय देश की आबादी का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं, जिनकी अपनी विशिष्ट परंपराएँ, रीति-रिवाज और सामाजिक संरचनाएँ होती हैं। जनजातीय समाज की संचार परंपरा एक समृद्ध और अनूठी परंपरा है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक, प्रतीकात्मक और सांस्कृतिक रूप से संचार के विभिन्न रूपों को अपनाते हुए विकसित हुई है। जनजातीय समाज की भाषा, लोकगीत, नृत्य, कला, संगीत और अन्य पारंपरिक संचार माध्यम उनकी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक ताने-बाने को सुदृढ़ करते हैं। जनजातीय समाज में संचार के विभिन्न प्रकार होते हैं, जो उनके जीवन के हर पहलू से जुड़े होते हैं। ये संचार माध्यम पारंपरिक होते हैं और बाहरी समाज से अलग होते हैं। मुख्य रूप से जनजातीय समाज में मौखिक, दृश्य और प्रतीकात्मक संचार प्रमुख रूप से देखे जाते हैं। जनजातीय समाज में मौखिक संचार का विशेष महत्त्व होता है। जनजातीय समाज की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर मौखिक रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाई जाती है। लोककथाओं और मिथकों के माध्यम से समाज में नैतिक मूल्यों का संचार किया जाता है। विभिन्न उत्सवों, त्योहारों और सामाजिक आयोजनों में लोकगीत और गाथाएँ गाई जाती हैं, जो जनजातीय समाज के इतिहास और परंपराओं को संरक्षित रखती हैं। जनजातीय समाज में परंपरागत रूप से सभा और सामूहिक वार्तालाप महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

दृश्य और प्रतीकात्मक संचार माध्यमों के रूप में जनजातीय समाज अपनी संस्कृति और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए चित्रों और भित्तिचित्रों का उपयोग करता है। उदाहरण के लिए, भील और गोंड जनजाति की पेंटिंग प्रसिद्ध हैं। कई जनजातियों में संकेतों, प्रतीकों और विशेष आभूषणों के माध्यम से भी संचार किया जाता है। विशेष प्रकार के टैटू और शरीर पर किए गए चिह्न सामाजिक पहचान और भूमिका को दर्शाते हैं। जनजातीय नृत्य और संगीत न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि संचार का भी एक प्रभावी माध्यम हैं। इनमें देवी-देवताओं की आराधना, सामाजिक संदेश और ऐतिहासिक घटनाएँ सँजोई जाती हैं। जनजातीय समाज प्रकृति के बहुत करीब होता है, इसलिए उनके संचार माध्यमों में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। जनजातीय समाज में नगाड़े और ड्रम जैसे वाद्य यंत्रों का उपयोग संदेश भेजने के लिए किया जाता है। विशेष ध्वनियों से लोगों को किसी विशेष अवसर या आपातकालीन स्थिति के बारे में सूचित किया जाता है। कुछ जनजातियाँ संचार के लिए धुएँ के संकेतों का उपयोग करती हैं, जो दूरस्थ क्षेत्रों में संदेश भेजने का एक प्राचीन तरीका है। जनजातीय समाज की संचार परंपरा उनकी संस्कृति और सामाजिक संरचना का एक अभिन्न अंग है। यह परंपरा प्राकृतिक, मौखिक, दृश्य और सांकेतिक माध्यमों से संचालित होती है। हालाँकि, आधुनिक संचार माध्यमों के आगमन से जनजातीय समाज में भी परिवर्तन आ रहे हैं, जिससे उनकी पारंपरिक संचार प्रणालियाँ धीरे-धीरे बदल रही हैं; फिर भी, यह आवश्यक है कि उनकी संचार परंपराओं को संरक्षित करने के प्रयास किए जाएँ, ताकि उनकी अनूठी पहचान बनी रहे।

प्रयागराज में इस वर्ष आयोजित महाकुंभ में देशभर से जनजातीय समाज ने भी उत्साह के साथ सहभागिता की। जनजातीय समाज का व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन कुंभ की उच्चतम चेतना का जीवंत उदाहरण है। सह अस्तित्व, सह जीवन, परमार्थ और समष्टि के साथ एकात्मकता हमेशा जनजातीय समाज के जीवन मूल्य रहे हैं। दुर्भाग्य से अँग्रेजों के आगमन के बाद से जनजातीय समाज की आध्यात्मिक चेतना और जीवन दर्शन पर प्रश्नचिह्न लगाए जाने आरंभ हुए और उसे भारत की सनातन परंपरा से अलग दिखाने के प्रयास हुए। इन प्रयासों के कारण समाज में भी भ्रम की स्थिति बनी। विविधता भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, जिसे भूल से भी अलगाव नहीं समझा जाना चाहिए। कुंभ का भी मुख्य संदेश विविधता में एकता ही है। कुंभ इस बात का प्रमाण है कि जनजातीय समाज न सिर्फ सनातन परंपरा का अंग है, अपितु इस आध्यात्मिक चेतना का जन्म ही अरण्य संस्कृति में हुआ, जो आगे चलकर ग्रामीण एवं नगरीय संस्कृति में अनवरत प्रकट हो रही है। महाकुंभ का संदेश है कि जनजातीय समाज के वैशिष्ट्य और अस्मिता की प्राणप्रण से रक्षा की जानी चाहिए

महाकुंभ : लोक प्रबोधन का मंगलकारी माध्यम

उत्तर प्रदेश के प्रयागराज में पूर्णिमा के दिन 13 जनवरी से आरंभ महाकुंभ 26 फरवरी, 2025 को महाशिवरात्रि के दिन संपन्न होने जा रहा है। राज्य सरकार का दावा है कि इस बार कुंभ में 60 करोड़ से अधिक लोग गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम में डुबकी लगाने वाले हैं। किसी निमंत्रण अथवा सुविधा की अपेक्षा किए बगैर इतनी विशाल संख्या में हर आयु वर्ग के लोगों का विश्वभर से आना और स्नान करके शांतिपूर्वक वापस चले जाना किसी चमत्कार से कम नहीं है। यह चमत्कार सनातन संस्कृति में ही संभव है। अन्यथा, इतिहास साक्षी है कि बड़ी संख्या में एकत्र भीड़ अनुशासनहीन होकर अनियंत्रित हो जाती है। विश्व के इस सबसे बड़े आयोजन को वर्ष 2017 में यूनेस्को ने एक अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में सूचीबद्ध किया था। कुंभ कब आरंभ हुआ, यह सटीक जानकारी तो उपलब्ध नहीं है, लेकिन कुछ हिंदू ग्रंथों के अनुसार यह सतयुग से चला आ रहा है। 'कुंभ' शब्द 'कुंभक' (अमृत कलश) से बना है और 'ऋग्वेद' में कुंभ और उससे जुड़े स्नान का उल्लेख है। 'अथर्ववेद' और 'यजुर्वेद' में भी इसके लिए प्रार्थना है। इससे सिद्ध होता है कि कुंभ का इतिहास शताब्दियों पुराना है।

ज्योतिष गणना के अनुसार, बृहस्पति ग्रह की चाल के आधार पर ही महाकुंभ का आयोजन होता है। बृहस्पति को सूर्य का एक चक्र पूरा करने में 12 वर्ष लगते हैं। जब बृहस्पति सूर्य के 12 चक्र लगा लेते हैं, तब 144 साल बाद महाकुंभ का आयोजन होता है। इसे ऐसे भी समझ सकते हैं कि जब प्रयागराज में 12 बार पूर्णकुंभ हो जाते हैं, तो उसे एक महाकुंभ का नाम दिया जाता है। पूर्णकुंभ 12 वर्ष में एक बार लगता है और महाकुंभ 12 पूर्णकुंभ में एक बार लगता है। वर्तमान कुंभ महाकुंभ है। इससे पहले महाकुंभ वर्ष 1954 में लगा था और अगला महाकुंभ वर्ष 2169 में लगेगा। वर्ष 2019 में आयोजित अर्धकुंभ और इस बार महाकुंभ के लिए जो व्यवस्थाएँ उत्तर प्रदेश सरकार ने कीं, उनकी तीर्थयात्रियों ने खूब प्रशंसा की है। हालाँकि इतने बड़े आयोजन में दुर्घटनाओं से बचना आसान नहीं होता, और इस बार भी कुछ दुर्घटनाएँ हुई हैं, लेकिन प्रशासन ने जिस तत्परता से उन्हें सँभाला, वह प्रशंसनीय था। स्वाधीनता के पश्चात् वर्ष 1954 में आयोजित महाकुंभ में भगदड़ हो जाने से करीब 800 तीर्थयात्री मारे गए थे। हालाँकि इस बार जो भगदड़ की घटना हुई है, उसे लेकर संदेह जताया गया है कि वह एक साजिश थी। उस घटना की न्यायिक जाँच चल रही है, जो सच होगा सामने आ जाएगा।

लोकविमर्श का सबसे बड़ा मंच

कुंभ सनातन संस्कृति के अक्षुण्ण प्रवाह का जीवंत प्रमाण है। आध्यात्मिक महत्त्व के साथ यह भारत की सांस्कृतिक एकता का ऐसा प्रतीक है, जहाँ सब भेद समाप्त हो जाते हैं। भारत में तमाम तरह की विविधता है—मत-पंथ, जाति, खान-पान, पहनावा, भाषा-बोली, क्षेत्र आदि—परंतु कुंभ ऐसा स्थान है, जहाँ सभी शंकराचार्य, साधु-संत और सामान्य जन एक ही घाट पर स्नान करते हैं। कोई किसी की जाति-मत नहीं पूछता। यही भारत की सांस्कृतिक एकता है, जो तमाम विविधताओं के बाद भी समाज को शताब्दियों से एक साथ बाँधे हुए है। इस सांस्कृतिक एकता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए परस्पर संवाद आवश्यक है, ताकि सम भाव, मम भाव और समानुभूति बनी रहे तथा उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक संपूर्ण भारत एक मन, एक भाव से जुड़े और सोचे। कुंभ में संपूर्ण भारत अपने सामयिक संदर्भों, जीवन संदर्भों, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भों पर सामूहिक विचार करता है। भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के नायक लोगों को संवाद के वे सूत्र देते हैं, जिनसे उनका भावी जीवन समर्थ होता है। यह परंपरा आज भी अक्षुण्ण है।

एक समय था जब हमारे पास संवाद, संचार और समाचार के आधुनिक माध्यम नहीं थे। आज जैसा मीडिया भी नहीं था। किंतु समाज था, लोग थे, विविध भाषाएँ थीं। संवाद, संचार और शास्त्रार्थ जैसे शब्द थे। संवाद और विमर्श ने संपूर्ण समाज और राष्ट्र को एक साथ जोड़ रखा था। इस दृष्टि से लोकविमर्श का सबसे बड़ा मंच कुंभ ही है, जहाँ विश्वभर से साधक, ज्ञानी और विद्वान् आते हैं। उनके सान्निध्य में वहाँ होने वाली चर्चाएँ लोकजीवन के लिए प्रेरणा बनती हैं। ये विमर्श और चर्चाएँ संपूर्ण देश के गिरिवासियों, नगरवासियों, ग्रामवासियों और वनवासियों तक पहुँचती हैं। संवाद और संचार की यह परंपरा इतनी वैज्ञानिक है कि यहाँ होने वाली चर्चाओं का संदेश अपने मूल रूप में बिना विकृत हुए आमजन तक पहुँचता है। तमाम तकनीकी नवाचारों के बावजूद आधुनिक संचार माध्यमों से प्रसारित संदेशों की ग्रहणशीलता पर कई प्रश्न हैं, जो अनेक अध्ययनों में प्रमाणित हो चुके हैं, लेकिन कुंभ की वाचिक परंपरा लोकप्रबोधन का आज भी प्रभावशाली और मंगलकारी माध्यम बनी हुई है। इस संचार में हर वर्ग और समूह के लोग मूल तत्त्व को आसानी से ग्रहण कर लेते हैं।

वाचिक परंपरा के कारण ही भारत, भारत है। आठ सौ वर्षों तक आक्रांताओं के असंख्य प्रहारों और नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वप्रसिद्ध श्रेष्ठ शिक्षा संस्थानों में मौजूद ज्ञान भंडार को विधर्मियों द्वारा नष्ट कर देने के बावजूद वाचिक परंपरा के कारण ही भारत का परंपरागत ज्ञान आज अक्षुण्ण है। भारतीय वाचिक परंपरा अत्यंत वैज्ञानिक है, जिसमें उसी व्यक्ति को ज्ञान प्रदान किया जाता था, जिसके पास सही सुर, लय, ताल और कंठस्थ करने की शक्ति होती थी। यह नियम इसलिए रहा है, ताकि ज्ञान अपने मूल रूप में बिना किसी विकृति के अगली पीढ़ी तक पहुँचे। वेद हमारे आदिग्रंथ हैं। उनके मंत्र हजारों वर्षों तक मानव सभ्यता के पास वाचिक परंपरा में ही रहे। स्मृति और कंठ ने इन्हें कई पीढ़ियों तक जीवित रखा। जब लिपि का आविष्कार हुआ तब वे ग्रंथ में अंकित हुए। सामवेद से उत्पन्न संगीत का ही कमाल है कि आज भी वेद मंत्र सही स्वर और लय में गाए जाते हैं। रामायण और महाभारत की कथाएँ जनमानस में जीवन मूल्यों का संचरण अत्यंत रोचक और रम्य शैली में करती हैं। भारतीय संचार परंपरा का उद्देश्य लोकमंगल और विश्वमंगल है। भारत के पर्व, उत्सव, मेले, प्रवचन, प्रदर्शन कलाएँ, लोक कलाएँ, संगीत,

साहित्य, योग, आयुर्वेद सब लोकमंगल से जुड़े हैं। कुंभ मेला इन अभिव्यक्तिजन्य कलाओं का सामूहिक मंच रहा है, जहाँ ज्ञान, कला, संगीत और ज्ञान-विज्ञान के सभी अनुशासन अपना स्थान पाते रहे हैं। इन सामूहिक अभिव्यक्तियों से ही समूचा भारत जीवनी शक्ति पाता रहा है। भारत की सांस्कृतिक थाती और विरासत को बनाने, बचाने और संवादरत रखने का काम भी इन आयोजनों ने किया है।

सार्थक संवाद का सृजन

कुंभ की यह संवाद परंपरा आध्यात्मिक शुद्धि के विचारों से कहीं आगे है। इसमें संपूर्ण जीवन का विचार है। यहाँ पारंपरिक संगीत, नृत्य, कलाओं, शिल्प कौशल सबके प्रयोग से सार्थक संवाद का सृजन होता है। आध्यात्मिक यात्रा के साथ-साथ विविध जीवनानुभवों का साक्षी बनकर व्यक्ति भारत की सांस्कृतिक भाव यात्रा से भी जुड़ जाता है। इसलिए कुंभ एकता, पवित्रता और ज्ञानोदय का प्रतीक है। सांस्कृतिक संचार की इस यात्रा में नदियाँ, कथाएँ, मिथक, अनुष्ठान, संस्कार और सरोकार सब जन-संवाद करते हैं। इस अथक प्रवाहमान यात्रा में नदियों की आवाजें भी शामिल हैं, जिन्हें सुनने स्वयं कुंभ भी आता है और कुंभ में शामिल होने का स्वप्न सँजोए करोड़ों लोग भी। कुंभ की यह संचार यात्रा बारह वर्ष बाद आने वाले अपने हर पड़ाव पर लोकोत्सव में बदल जाती है, जिसमें भारतीय संस्कृति कुलाँचें भरती पूरे विश्व को स्वयं में समाहित कर लेने की ताकत दिखा देती है। इस लोकोत्सव में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भारतीय अवधारणा सहजता से चरितार्थ होती दिख जाती है। इस अनुष्ठानिक संचार में हम अपनी संस्कृतियों, संस्कारों और सरोकारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सहजता से बिना किसी विशेष प्रयास के हस्तांतरित होते देखते हैं। इसमें अवलोकन और अनुभव ही माध्यम बनकर जन-संचार के मानकों को पूरा करते हैं।

भारतीय संस्कृति की अवधारणा में सामूहिकता निहित है। हमने आरंभ से ही विश्व को एक परिवार की तरह मानकर स्वयं को प्रस्तुत किया है। हमारी सभी सांस्कृतिक चेतनाओं में समूह पहले आता है, फिर व्यक्तिगत। यही वजह है कि कुंभ जैसे आयोजन केवल देश को ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व को अपने अंदर सहेज लेने का सामर्थ्य रखते हैं। यही वजह है कि प्रत्येक कुंभ में पग-पग पर संस्कृतियाँ अपनी पूरी रौ में चमकती-दमकती हैं। इसी चमक-दमक के आलोक में हम पीढ़ियों को बनाने और माँजने का दायित्व निभाते हैं। दूर-दराज के स्थानों से कुंभ में अपने-अपने समूहों में पहुँचते लोगों के पास अपनी संस्कृति की ऐसी पूँजी होती है, जिसमें सब एक ऐसी डोर से गुँथे होते हैं, जिसको टूटना नहीं आता, केवल जोड़ना आता है। गाते-बजाते-नाचते-बतियाते इन समूहों में भारतीयता की उस चेतना के दर्शन होते हैं, जिसके सहारे हम पूरे देश को एकता के सूत्र में पिरोते आए हैं। इसलिए कुंभ सामूहिक संस्कृति का हिस्सा बनने और उसे निभाते रहने की सीख देने वाली पाठशाला की तरह होता है। इस मेले में हम ऐसा बहुत कुछ बड़ी सहजता से पा जाते हैं, जिसे देने की जुगत में बहुत से विश्वविद्यालय पीछे छूट जाते हैं। इसलिए कुंभ हमारी सांस्कृतिक सामूहिकता को समझने व उससे जुड़ने के मुक्त विश्वविद्यालय हैं।

अध्यात्म, ज्ञान और संवाद की त्रिवेणी

कुंभ में पहुँचे बहुत से लोग किसी लोक कलाकार से कम नहीं होते। हर किसी को अपनी विरासत में बहुत कुछ ऐसा मिला होता है, जो खुशियों के कुंभ के रूप में यहाँ फूट पड़ता है। कह तो यह भी सकते हैं कि यहाँ पहुँचते ही विरासत में मिलीं संस्कृतियाँ अन्य संस्कृतियों के साथ मिलकर अठखेलियाँ करने लगती हैं। सब बहुरंगी लोकरंग में झूम उठते हैं। लोग अपनी-अपनी वाणी में लोकगीतों के स्वरों को एक लय-ताल में बह जाने देते हैं। कोई किसी की लय में झूमता नजर आता है तो कोई किसी की धुन गुनगुनाता मिल जाता है। संगम की रेली पर विदेश से पहुँचे लोग भी अपनी सुर-लय-ताल को हमारी सामूहिक संस्कृति की विरासत का हिस्सा बनाना चाहते हैं। यही वह बात है जो कुंभ को वैश्विक बनाती है। आर्टिफीशियल इंटेलिजेंस, रोबोटिक्स और चिप कम्युनिकेशन जैसी तकनीक ने कुंभ को पूरी दुनिया में पहुँचा दिया है। जो काम मुख्यधारा का मीडिया नहीं कर सका, वह काम यूट्यूब, फेसबुक, इंस्टाग्राम और स्मार्टफोन ने कर दिया। इनके कारण वे लोग भी कुंभ का 'लाइव' आनंद ले सके, जो किसी कारणवश इसमें सहभागी नहीं हो सके। इस दृष्टि से गणना की जाए तो कहा जा सकता है कि इस बार संपूर्ण भारत ने महाकुंभ के दर्शन किए, जो संभवत: इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ।

कुंभ का विचार अध्यात्म, ज्ञान और संवाद तीनों की त्रिवेणी है। इससे उपजी संवाद की धाराएँ हमें लोकमंगल और विश्वमंगल के लिए प्रेरित करती हैं। एक सुंदर दुनिया बनाने के लिए हमें इन्हीं भावों से भरी मनुष्यता का निर्माण करना पड़ेगा। यह विश्व मानवता के सुमंगल का विचार करने की जगह भी है। मानवता के सम्मुख चुनौतियाँ हम सबकी हैं। समूचे विश्व की हैं। अध्यात्म जहाँ हमें समष्टि से जोड़ता है, वहीं संवाद हमें आपस में जोड़ता है। आज जब संपूर्ण दुनिया में संघर्ष, कत्लेआम, युद्ध और श्रेष्ठता के लिए दूसरे को कुचल डालने के षड्यंत्र आम हैं, मानवता संकटों से घिरी हुई है, तो भारत की संवाद और संचार परंपरा विश्व को मार्ग दिखाती है। संवाद न होने से ही ज्यादातर संकट खड़े होते हैं। संवाद की दुनिया इसका एकमात्र विकल्प है। एक ही देश से अलग होकर बने दो देशों में भी संवाद नहीं है। इसका एकमात्र कारण है कि हमने लोकमंगल और संवाद का विचार त्याग दिया है। संवाद न होने से राज्य-राज्य, व्यक्ति-व्यक्ति, समाज-समाज टकरा रहे हैं। भारत ने संवाद और शास्त्रार्थ के माध्यम से संकटों का हल निकालने की परिपाटी विकसित की है, जहाँ हिंसा और आतंक का कोई स्थान नहीं है। इस परिपाटी का प्रत्यक्ष दर्शन है कुंभ। यह परिपाटी भारत के व्यवहार में भी दिखती है। इसी कारण विश्व में जहाँ कहीं भी शांति स्थापना का प्रश्न होता है तो विश्व भारत की तरफ देखता है।

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार
संपादक

प्रकाशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
अरुणा आसफ अली मार्ग, जेएनयू न्यू कैंपस, नई दिल्ली-110 067

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)

की यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका

खंड 37 (1) आईएसएसएन : 2321-2608 जनवरी-मार्च 2025

विषय सूची

1. कुंभ : भारतीय संचार परंपरा का बृहद्‌तम विग्रह 1
डॉ. जयप्रकाश सिंह

2. हिंदी-बाँग्ला की आदिवासी कथा साहित्य परंपरा 5
शशिप्रभा यादव

3. हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति की सांस्कृतिक धरोहर और जनसंचार नीति का अध्ययन 11
डॉ. अर्चना कटोच, पवन कुमार, यासिर अरफात एवं अजयंत कटोच

4. गुज्जर बकरवाल जनजाति में सामाजिक-सांस्कृतिक संचरण : गोजरी लोक संस्कृति के संदर्भ में 18
प्रवीन कुमार और प्रो. मलकीत सिंह

5. संचार की भारतीय वाचिक परंपरा : एक अध्ययन 24
मृत्युंजय कुमार

6. 'मत्स्य पुराण' में वर्णित जंबूद्वीप का अध्ययन 29
डॉ. विक्रांत शर्मा

7. बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में मीडिया की भूमिका 38
डॉ. भानुप्रिया जयसवाल और डॉ. पूर्वा कुमारी

8. भारतीय उत्सवधर्मिता पर मीडिया का प्रभाव : एक विश्लेषण 45
तुमुल कक्कड़ और डॉ. सुनील कुमार मिश्र

9. सांस्कृतिक पहचान और मीडिया : राम मंदिर के संदर्भ में भारत-नेपाल संबंध 50
डॉ. पूर्वा कुमारी

10. संस्कृति, भाषा और अर्थ : मानवशास्त्रीय अध्ययन में सांस्कृतिक संप्रेषण की चुनौतियाँ 56
डॉ. निशीथ राय

11. उत्तराखंड होम-स्टे पर्यटन बढ़ाने में सोशल मीडिया की भूमिका 62
डॉ. पूनम बिष्ट

12. डिजिटल कनेक्टिविटी के कारण उभरते नए बाजार का अध्ययन 67
रोशन लाल और डॉ. संतोष कुमार गौतम

13. सोशल मीडिया के माध्यम से युवाओं में गलत सूचना के प्रभाव को कम करने में मीडिया साक्षरता की भूमिका 72
पूजा और डॉ. अर्चना कुमारी

14. सोशल मीडिया का युवाओं पर प्रभाव 77
डॉ. आलोक चौहान

15. डिजिटल प्लेटफॉर्मों के माध्यम से परंपराओं को संरक्षित करने में युवाओं की भूमिका 81
चेतना शर्मा और डॉ. महक जंजुआ

16. भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता में राष्ट्रीय संचेतना का अनुशीलन 86
आदित्य देव त्यागी और प्रो. (डॉ.) प्रशांत कुमार

17. जम्मू-कश्मीर की प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के सोशल मीडिया (फेसबुक पेज) का विश्लेषण - विधानसभा चुनाव-2024 के संदर्भ में 92
डॉ. मलकीत सिंह

18. अंतरराष्ट्रीय मीडिया संगठन : एक अध्ययन 97
प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

19. सिनेमाई कहानियों व किरदारों पर गांधी के प्रभाव का अध्ययन 106
अंजना शर्मा, डॉ. मीता उज्जैन और डॉ. रंजन सिंह

20. पुस्तक समीक्षा : हिंदी पत्रकारिता के अजातशत्रु की याद 111
संत समीर

21. पुस्तक समीक्षा : डिजिटल पत्रकारिता के बहुआयामी स्वरूप को दर्शाती पुस्तक 113
अल्बर्ट अब्राहम

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 1-4, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

कुंभ : भारतीय संचार परंपरा का बृहद्‌तम विग्रह

डॉ. जयप्रकाश सिंह[1]

सारांश

भारतीय परंपरा भगवान श्रीराम को 'विग्रहवान धर्म' कहती है। ऐसा इसलिए कहा जाता है, क्योंकि धर्म की समस्त विशेषताएँ और मान्यताएँ उनके जीवन में, चरित्र में अपने श्रेष्ठतम रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। इसी तरह, कुंभ को भारतीय संचार परंपरा का 'बृहद्‌तम विग्रह' कहा जा सकता है, क्योंकि इस आयोजन में भारतीय संचार परंपरा की समस्त मान्यताएँ और विशेषताएँ अपने बृहद्‌तम और श्रेष्ठतम स्वरूप में अभिव्यक्त होती हैं। भारतीय संचार परंपरा के मूल्य एवं मान्यताएँ कुंभ में दो स्तरों पर अभिव्यक्त होते हैं। स्वयं कुंभ की कथा, मंथन और संवाद की मूलभूत मान्यताओं और जटिल गतिशीलता के बारे में संकेत करती है। दूसरे स्तर पर कुंभ में जिस सहजता से संप्रदायगत सहभागिता होती है, समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी उपस्थिति देता है और उभरती हुई सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं और नव-प्रवृत्तियों के बारे में विस्तार से संवाद कर भविष्य की दिशा तय करने का प्रयास इसमें होता है, वह इसे भारतीय संचार परंपरा का बृहद्‌तम विग्रह बना देता है। आधुनिक संचार सैद्धांतिकी की दृष्टि से भी देखें तो भी आभ्यंतर संचार से लेकर जनसंचार तक, संचार के समस्त प्रारूप कुंभ में समानांतर रूप से एक साथ घटित हो रहे होते हैं। कुंभ से संबंधित ऐसी अनेक विशेषताएँ और मान्यताएँ हैं, जिनका संचारीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन भारतीय संचार परंपरा के मूलभूत तत्त्वों से हमारा परिचय तो करा ही सकता है, उनके बारे में नई दृष्टि भी प्रदान कर सकता है। प्रस्तुत शोध-आलेख कुंभ के संचारीय परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन की दिशा में किया गया एक प्रयास है।

संकेत शब्द : कुंभ, संवाद, मंथन, भारतीय संचार परंपरा, विग्रह, संचारीय परिप्रेक्ष्य, संचार सैद्धांतिकी

प्रस्तावना

कुंभ आस्था का बृहद्‌तम समागम है। संख्या की दृष्टि से कुंभ में जितनी संख्या में भक्त इकट्ठे होते हैं और आस्था की डुबकी लगाते हैं, उसकी समकक्षता पूरे विश्व में कहीं पर भी देखने को नहीं मिलती है। आस्थावान् लोगों का यह सबसे बड़ा समागम धर्म, परंपरा और संस्कृति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ही, संचारीय दृष्टि से भी अतिशय महत्त्वपूर्ण परिघटना है। इतनी बड़ी संख्या में लोगों के एकत्रित होने, विभिन्न संप्रदायों और व्यवस्था के समस्त घटकों के एकत्र होकर संवादरत होने, नवीन सामाजिक और सांस्कृतिक पहलों के सूत्रपात होने के पीछे संवाद और मंथन जैसे कुछ मूलभूत संचारीय मूल्य एवं मान्यताएँ काम कर रहे होते हैं।

कुंभ, संवाद की परंपरा का सांस्थानिक स्वरूप है। सत्यव्रतियों के लिए भारतीय संस्कृति का घोष वाक्य 'वादे वादे जायते तत्त्वबोध:' है। संवाद से ही सत्य की उपलब्धि होती है। आप अध्यात्म के सूत्रों की पहचान करना चाहते हैं अथवा एक बेहतर व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं, इसके लिए संवाद से बढ़कर कोई मानवीय और समग्र तरीका नहीं हो सकता। संवाद की अवधारणा के आधार पर ही लोकतांत्रिक मूल्य पनपते हैं और लोकतांत्रिक लोकमानस भी बनता है। किसी भी समस्या से जुड़े सभी पक्षों की पहचान और समाधान के लिए अधिकतम सुझाव संवाद की प्रक्रिया के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। संवाद की अतिशय महत्ता को ध्यान में रखकर ही शायद इसे धार्मिक पवित्रता की परिधि में प्रस्तुत किया जाता है (सिंह, 2017)। किसी के मत को खत्म करने के लिए शस्त्र उठाने की परंपरा हमारे यहाँ कभी भी नहीं रही। यह भी एक स्थापित तथ्य है कि समाज का स्वरूप-निर्माण और उसकी भावनाओं का निर्माण कार्य उसके अंदर होने वाले संवाद से प्रभावित होता है (कुमार, 2007)। इसलिए संवाद व्यक्तिगत और व्यवस्थागत दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

वैदिक काल से प्रारंभ होकर आज तक संवाद की बहुधर्मी परंपराएँ हमारे देश में फलती-फूलती रही हैं। शंका और प्रश्न इसके मूलाधार रहे हैं (त्रिपाठी, 2017)। अन्य सभ्यताओं ने अपने विकासक्रम को युद्धों के माध्यम से परिभाषित करने की कोशिश की, जबकि भारत में युद्ध और विजय के साथ महत्त्वपूर्ण संवाद भी युगनिर्धारक घटनाक्रम के रूप में इतिहास में अंकित हो गए हैं। यम-नचिकेता संवाद हो, गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद हो अथवा जनक-अष्टावक्र संवाद हो, ये सभी हमारी सांस्कृतिक विकास यात्रा के महत्त्वपूर्ण पड़ाव सिद्ध हुए हैं (सिंह, 2024)। कुंभ इस संवाद परंपरा की सघनतम और बृहद्‌तम अभिव्यक्ति है। कुंभ में संवाद और मंथन कई स्तरों और स्वरूपों में एक साथ घटित होता है। इसी कारण, यह कुंभ संचारीय दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण आयोजन बन जाता है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-आलेख में कुंभ आयोजन और इसके दार्शनिक पक्ष से संबंधित विविध दस्तावेजों का अवलोकन करके उनका संचारीय-परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया गया है। इसके लिए विषयगत-विश्लेषण शोध पद्धति का उपयोग किया गया है।

समुद्र-मंथन : कथा में अंतर्निहित संचारीय मूल्य

संवाद और संचार के श्रेष्ठतम मूल्य कुंभ की कथा में अंतर्निहित हैं, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि कुंभ की कथा का संचारीय परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जाए। पौराणिक कहानियों के अनुसार कुंभ के आयोजन का संबंध समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में उत्पन्न अमृत कलश से है। समुद्र-मंथन के कारण जिन चौदह रत्नों की समुद्र से उत्पत्ति हुई, उनमें अमृत कलश भी शामिल था। अमृत कलश पर आधिपत्य जमाने के लिए

[1]सहायक आचार्य, कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश. ईमेल : jpsh.pol@gmail.com

भागदौड़ और एक-दूसरे को छकाने का जो खेल शुरू हुआ, उसके कारण कुछ बूँदें जमीन पर छलक पड़ी थीं। जहाँ-जहाँ पर ये अमृत बूँदें छलकी थीं, वहाँ-वहाँ पर कुंभ के आयोजन होने लगे। समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में अपने परंपरागत मतभेदों को भुलाकर देव और दानवों ने सहभागिता की थी और इनसे उपजे रत्नों में हलाहल विष भी शामिल था। यदि समुद्र-मंथन की प्रक्रिया को एक मिथक मानकर संवाद और व्यवस्था के संदर्भों में हम इसकी व्याख्या करें तो इसके कई पुरातन और सनातन अर्थ निकल सकते हैं।

कुंभ आयोजन के केंद्र में समुद्र-मंथन की कथा है। मंथन ही इस कथा का सबसे बड़ा मूल्य भी है। मंथन का यह मूल्य प्रायः कुछ आदर्शों को स्थापित करने की इच्छा से उपजता है, लेकिन कोरे आदर्शों के जरिये आगे नहीं बढ़ता। यह यथार्थ की सटीक समझ के आधार पर आदर्शों को स्थापित करने की प्रक्रिया है। कथा तो यही संदेश देती है। समुद्र-मंथन की योजना देवों के पराजित होने के बाद और देवों को पराजित करने वाले असुरों को सहभागी बनाकर बनाई जाती है। शत्रु को सहभागी बनाने के क्या कारण हो सकते हैं? असुर पक्ष को अमृत प्राप्त करने की योजना का हिस्सा बनाने के अपने संकट थे, लेकिन यथार्थ यह था कि उनकी शक्ति को नकारकर, उन्हें सहभागी बनाए बिना समुद्र-मंथन नहीं किया जा सकता था। देवता अक्षम थे और अकेले समुद्र-मंथन करना उनके सामर्थ्य के बाहर था। दानवों को सहभागी बनाना यथार्थ की स्वीकृति थी। समुद्र-मंथन का सबसे बड़ा संदेश यथार्थ की स्वीकृति ही है। प्रिय हो या अप्रिय, यथार्थ को स्वीकार किए बिना सच और सफलता की तरफ आगे नहीं बढ़ा जा सकता। यथार्थ का सामना करने का साहस आदर्श गढ़ने, पाने की मूलभूत शर्त है।

समुद्र-मंथन की कथा बताती है कि मंथन एक बहुआयामी और जटिल प्रक्रिया है। इतनी जटिल कि कई बार विरोधाभासी प्रतीत होती है, लेकिन जो सत्य के लिए, धर्म के लिए विरोधाभासों को साध सके, विरोधियों को साथ ले सके, वही मंथन कर पाने में सक्षम होता है। मंथन का आदर्श शिव है और यथार्थ शक्ति है। देवता मंथन के लिए अपने अहंकार को त्यागकर असुरों से संवाद करते हैं, उनसे समुद्र-मंथन में सहभागी होने का निवेदन करते हैं, तो इसका कारण बड़े लक्ष्य के प्रति उनकी सजगता है। मंथन की कथा का दूसरा प्रमुख संदेश यही है। अहंकार का कद कभी भी लक्ष्य से बड़ा नहीं होना चाहिए। पूरी तरह सजग रहते हुए सभी शक्ति-केंद्रों का सम्मान करना, उनसे संवाद करना, सहभागी बनाना यही मंथन है। संवाद रचने या सहभागिता सुनिश्चित करने का आशय यह नहीं होता कि सजगता छोड़ दी जाए। लक्ष्य और शत्रु के प्रति सजगता मंथन की पूर्व शर्त है। समुद्र-मंथन में भी यह सजगता दिखती है। अमृत को लेकर मोहिनी रूप धारण करने का प्रकरण यह साबित करता है कि निर्णायक क्षणों में देवपक्ष अपने लक्ष्य को लेकर सजग है।

मंथन भविष्य के अनिश्चय को स्वीकार करने का साहस है। यह मनमाने, मनोनुकूल निष्कर्षों पर पहुँचने और उन पर विश्वास करने से हमें रोकती है। मंथन-जो है, उससे संवाद है और जो होना चाहिए, उसकी आकांक्षा है। और, यथार्थ तो परिवर्तनशील है। वह कब, कौन-सा रूप धरकर हमारे सामने खड़ा हो जाए, इसका अनुमान लगाना मुश्किल है। इसलिए भविष्य का अनिश्चय स्वीकार कर अपने मार्ग पर आगे बढ़ना मंथन का तीसरा संदेश बन जाता है। मंथन की प्रारंभिक स्थिति में कोई भी पक्ष यही नहीं जानता कि समुद्र-मंथन क्या परिणाम लेकर आएगा, लेकिन देवपक्ष इस बात को लेकर स्पष्ट है कि इसे टाला नहीं जा सकता। मार्ग में हलाहल विष है और अंत में अमृत का कुंभ भी। भविष्य के इस अनिश्चित स्वरूप को स्वीकार करने का साहस होने पर मंथन की घटना जन्म लेती है।

समुद्र-मंथन की यह कथा इस बात के लिए भी आश्वस्त करती है कि यदि कोई भविष्य का अनिश्चय स्वीकार कर आगे बढ़ता है तो अंतिम परिणाम अच्छा ही होता है, अंत में अमृत-कुंभ ही प्राप्त होता है। अंतिम निष्कर्ष 'सत्यमेव जयते' ही है। यह इस कथा से मिलने वाला संबल है। सत्य में अनुरक्ति और उसके विजय में विश्वास, भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा मूल्य है और समुद्र-मंथन भी इस मूल्य को पोषित करता है।

कुंभ को मंथन के इन संदेशों के परिप्रेक्ष्य में ही ठीक ढंग से समझा जा सकता है। कुंभ महोत्सव का मंथन की इस कथा से गहरा संबंध हैं। कुंभ मंथन की देन है और यह मंथन की परंपरा को आगे बढ़ाने का आयोजन भी। कुंभ को मंथन का महोत्सव बनाकर ही अमृत की कुछ बूँदें देश-समाज के लिए प्राप्त की जा सकती हैं। मंथन का महोत्सव बनने की स्थिति में कुंभ संघर्ष-समाधान का सबसे प्रभावी और बड़ा उपकरण बन सकता है और तब संघर्षों से निजात खोजती दुनिया के लिए कुंभ की यह भूमिका अमृत की किसी बूँद से कम नहीं होगी।

कुंभ संघर्ष-समाधान की सनातन परंपरा है और संघर्षों के समाधान की संभावनाएँ अब भी इसमें बची हुई हैं। अपने-अपने हिस्से के सच को अंतिम सच मान लेना बहुत स्वाभाविक है। यदि टुकड़ों में बँटे सच एक-दूसरे से संवाद न करें तो बृहत्तर सच अपरिचित रह जाता है, बड़ी संभावनाएँ आकार नहीं ले पातीं। यह स्थिति ही अतिवादिता को जन्म देती है। अतिवादिता और संवादहीनता के वर्तमान दौर में कुंभ जैसे आयोजनों के मूलभाव को पुनरुज्जीवित किया जाना बहुत आवश्यक हो जाता है, क्योंकि कुंभ व्यवस्थागत घटकों के बीच संवाद का एक बृहद् पारंपरिक प्लेटफॉर्म रहा है।

व्यवस्थागत-संवाद

कुंभ की धार्मिक महत्ता तो असंदिग्ध है ही, संचारीय दृष्टि से देखें तो व्यवस्थागत घटकों के बीच संवाद का एक बृहद् पारंपरिक प्लेटफॉर्म भी है। भारत की व्यवस्थागत संरचना पश्चिमी दुनिया से अलग रही है। यहाँ पर नीति-निर्माण की प्रक्रिया बहुध्रुवीय है। यह राज, समाज और धर्म में विकेंद्रित है। इन त्रिपुटी के सुंदर समन्वय से यह व्यवस्था संचालित होती है। भारत में राजसत्ता, धर्मसत्ता और समाजसत्ता एक-दूसरे का नियंत्रण और संतुलन तो करती ही रही हैं, निरंतर संवाद कर एक-दूसरे को पोषित भी करती रही हैं। कुंभ व्यवस्था के इन सभी घटकों को एक नियमित अंतराल पर एकत्र करके अवसर प्रदान करता है।

व्यवस्था के अलग-अलग घटक विभिन्न अवसरों पर एक-दूसरे से संवाद करते रहे हैं, लेकिन सभी घटकों में एक साथ संवाद की संभावनाएँ नहीं बन पातीं। कुंभ इस दृष्टि से व्यवस्था के सभी घटकों के बीच संवाद का सृजन करता है। व्यवस्था का प्रमुख घटक होने के कारण समाज, समय के कारण हो रहे बदलावों को अपने ढंग से अनुभव करता है और आदर्श की मर्यादाओं में रहकर नए बदलावों के साथ सामंजस्य बैठाने की कोशिश करता है। परिवर्तन की गति मर्यादा के स्तंभों को धाराशायी न कर दे, इसके लिए समाज लगभग एक दशक में कुछ सूत्रों की तलाश कर लेता

है और यह चाहता है कि व्यवस्था में उनको स्थान मिले। हालाँकि ये सूत्र अभिव्यक्ति के लिहाज से अनगढ़ होते हैं और कुछ हद तक अपरिष्कृत भी, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से सक्षम होते हैं। इन सूत्रों और समाधानों की खूबसूरती यह है कि इनकी रचना दैनिक जीवन के झंझावातों में स्वाभाविक रूप से की गई होती है। ऐसे सूत्र एकांत में पैदा होने वाले एकांगी सूत्र नहीं होते, बल्कि जीवन की धूप-छाँव में, दु:ख-सुख में, उतार-चढ़ाव में पैदा होते हैं। शायद इसीलिए इनमें व्यवस्था को ठीक रास्ते पर रखने की क्षमता अधिक होती है।

इसी तरह धर्मसत्ता का तो ध्येय ही है—आत्मनोमोक्षार्थ जगत् हिताय च। आत्म-मुक्ति का रास्ता सामाजिक कल्याण से पृथक् नहीं है। इसीलिए, धर्मसत्ता की भी सामाजिक बदलावों पर बड़ी गहरी नजर होती है। वह एक परिदृश्य में हो रहे बदलावों का विश्लेषण करने में सक्षम होती है; और, राजसत्ता जिस शब्दावली और जिन मुहावरों को समझती है, उनमें ही नए बदलावों को अभिव्यक्त भी कर सकती है। धर्मसत्ता का चिंतन लोकसत्ता की अपेक्षा अधिक उदात्त और आदर्शवादी होता है। इस परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक हो जाता है कि धर्मसत्ता और लोकसत्ता का नियमित अंतराल पर संगम होता रहे, ताकि यथार्थ और आदर्श का सम्मिलन हो सके। अपरिष्कृत विचारों को सुघड़ अभिव्यक्ति मिल सके। लोकसत्ता, धर्मसत्ता के आकाश में उड़ान भर सके और धर्मसत्ता, लोकसत्ता की खुरदुरी जमीन पर चलने के कटु अनुभव से वाकिफ हो सके।

व्यवस्था की नीति-निर्धारक होने के कारण राजसत्ता की भूमिका और महत्ता निर्णायक होती है, लेकिन साथ ही राजसत्ता में अपने निष्कर्षों को अंतिम मानने की नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है। शक्ति का संकेंद्रण होने के कारण कई बार राजसत्ता में प्रजा हित की बात नेपथ्य में चली जाती है। यह भी एक तथ्य है कि राजसत्ता यदि लोकोन्मुखी और धर्मोन्मुखी हो तो सर्वकल्याण का लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि राज, समाज और धर्म को संचालित करने वाली शक्तियाँ एक साथ बैठें। एक संतुलित और समग्र विधायन के लिए धर्मसत्ता, राजसत्ता और लोकसत्ता का संगम आवश्यक है। कुंभ को एक ऐसा ही संगम माना जा सकता है।

व्यवस्थागत संवाद की यह प्रक्रिया भारतीय एकता का मूलाधार है। जब तक यह संवाद बना रहता है, विभिन्नता विखंडन में परिवर्तित नहीं होती, संवाद के अभाव में अपने अंग-प्रत्यंग भी अलग अस्तित्व के रूप में दिखने लगते हैं। संवाद परंपरा के आलोक में देखने पर बौद्ध, जैन परंपरा-विद्रोही नहीं, बल्कि परंपरा का विस्तार प्रतीत होते हैं।

संप्रदायगत संवाद

अंतरपांथिक संवाद को संघर्ष-समाधान और शांति-स्थापना के महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में वैश्विक स्वीकृति एक समसामयिक परिघटना है। भारत ने सदियों पहले संप्रदायगत संवाद के महत्त्व को न केवल पहचाना, बल्कि कुंभ में उसको सांस्थानिक स्वरूप भी प्रदान किया। कुंभ में लंबे समय तक विभिन्न संप्रदाय और अखाड़े न केवल एक जगह एकत्रित होते हैं, बल्कि एक-दूसरे के साथ रहते हुए शांतिपूर्वक कल्पवास भी करते हैं (त्रिपाठी, 2022)।

यह संप्रदायगत संवाद इस मान्यता से उपजता है कि सत्य एक बृहत्तर सत्ता है, और संप्रदाय उसके किसी एक अंश को ही अनुभूत एवं रेखांकित कर पाता है। यह मान्यता कुंभ में बहुत सबल होकर अभिव्यक्त होती है। अपनी मान्यता पर दृढ़ रहते हुए दूसरे की मान्यताओं को समझने का प्रयास करने और सम्मान का भाव रखने की जैसी प्रवृत्ति कुंभ में दिखती है, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है।

कुंभ का संप्रदायगत संवाद इस भारतीय मान्यता को नियमित अंतराल पर स्वीकृति भी प्रदान करता रहता है कि भारतीय दर्शन एवं संप्रदाय आधारित अनेक परंपराएँ रही हैं और भारतीय समाज संप्रदायगत सामंजस्य के साथ कार्य करता रहा है। संप्रदायगत श्रेष्ठता अथवा मानकीकरण की जो प्रवृत्ति अब भारतीय समाज में दिखने लगी है और जिसके कारण कई बार विद्वेष की स्थिति पैदा हो जाती है, वह भारत का परंपरागत स्वभाव नहीं रहा है। कुंभ अपने संप्रदाय को मानक मानने की प्रवृत्ति का निषेध करता है। यह संप्रदायगत सामंजस्य और संवाद के लिए भारतीय समाज को अभ्यस्त करता है। इसलिए, संप्रदायगत परिप्रेक्ष्य में देखें तो कुंभ में संप्रदायों को 'देखने, जानने और समझने की जो शुद्ध भारतीय दृष्टि है' (अग्रवाल, 2009) वह उपलब्ध होती है।

कल्पवास से अमृत-स्नान तक : संचार के विविध स्वरूप

कुंभ एक ऐसा आयोजन है, जहाँ पर आभ्यंतर संचार से लेकर जनसंचार तक संचार की सभी प्रक्रियाएँ एक साथ घटित हो रही होती हैं। कल्पवास आभ्यंतर संचार का प्रतीक है। एक महीने तक गृहस्थ और सन्यासी निरंतर एक निर्धारित जीवनशैली का पालन करते हुए आत्म-संवाद करने की कोशिश करते हैं। स्वयं को परिष्कृत करने की कोशिश करते हैं। वहीं कुंभ का विशाल जनसैलाब, विशेषकर अमृत-स्नान के दिन पारंपरिक जनसंचार का एक बृहद्तम स्वरूप धारण कर लेता है।

विभिन्न संप्रदायों, संतों और अखाड़ों के शिविर समूह संचार के लिए आदर्श अवसर बनकर उभरते हैं, तो स्नान के लिए भक्तों की यात्रा और कुछ समय तक उनका साथ-साथ रहना अंतरवैयक्तिक संचार का अवसर बन जाता है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि कुंभ एक ऐसा जन-समागम है, जिसमें संचार के सभी स्वरूप अपनी पूरी त्वरा और सघनता के साथ अभिव्यक्त होते हैं। संचार के सभी स्वरूपों का एक साथ परिघटित होना, एक ऐसे मंथन को जन्म देता है, जिससे सभ्यता एवं समाज स्वयं को परिष्कृत करते रहते हैं।

अमृत-कलश और अमरत्व : एक संचारीय परिप्रेक्ष्य

अमृत और अमरता का भी कुंभ से गहरा संबंध है। साधारणतया अमृत से एक ऐसे पदार्थ का आशय निकाला जाता है, जिसको ग्रहण करने के बाद हम कालबाह्य हो जाते हैं, कालातीत हो जाते हैं, काल के गुणधर्म से परे हो जाते हैं। अस्तित्व का विस्तार त्रिकाल में हो जाता है। लेकिन, यह अमृत और अमरत्व की बहुत रूढ़ व्याख्या है। रूपांतरण की प्रक्रिया के जरिये अपने अस्तित्व को बनाए रखना भी एक प्रकार का अमरत्व है। भारतीय संस्कृति का अमरत्व कुछ इसी प्रकार का है। सामयिक परिवर्तनों को आत्मसात् करने की प्रक्रिया में भारतीय संस्कृति का कलेवर बदल जाता है, लेकिन उसके मूलाधार नहीं बदलते। वह नितनवीन होने के साथ भी चिरपुरातन भी बनी रहती है। नितनवीन और चिरपुरातन के बीच संतुलन बिंदुओं की खोज और उनको साधने की प्रक्रिया में कुंभ जैसे आयोजनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। कुंभ संवाद और संचार के विभिन्न स्वरूपों

और प्रक्रियाओं के माध्यम से सभ्यतागत स्मृतियों को संरक्षित करता है। यह संरक्षण ही किसी भी सभ्यता के लिए अमृत का काम करता है, क्योंकि स्मृति ही संस्कार, संकल्प, श्रेय तथा प्रेय रूपों में आकांक्षा और सर्जन के विविध पुरुषार्थ का आधार बनती है (धर्मपाल, 2007)।

निष्कर्ष

इस परिप्रेक्ष्य में कुंभ को व्यवस्थागत संवाद के प्लेटफॉर्म के मूल स्वरूप में स्थापित करने की आवश्यकता बढ़ जाती है। ऐसा करना अपनी सांस्कृतिक धारा को अक्षय बनाए रखने के लिए जरूरी है। कुंभ जैसे बृहत्तर आयोजन के जरिये मंथन के मूल्य और संवाद की संस्कृति को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। यदि ऐसा हो सके तो निश्चित रूप से सनातन भावधारा बनी रहेगी और इससे सभ्यतागत रूपांतरण की भावना भी बनी रहेगी। निरंतर तीव्र परिवर्तनों को झेल रही भारतीय सभ्यता में इस तथ्य को स्थापित करने की आवश्यकता सबसे अधिक हो गई है कि मंथन और संवाद ही उसके लिए अमृत-कुंभ बनकर उसके अस्तित्व का संरक्षण और संवर्धन करते रहे हैं और कुंभ मंथन और संवाद का सभ्यतागत अवसर बनता रहा है।

संदर्भ

अग्रवाल, वी. एस. (2009). *पृथ्वी-पुत्र*. नई दिल्ली : सस्ता-साहित्य मंडल प्रकाशन, पृष्ठ-110.

कुमार, ए. (2007). *संगीत और संवाद*. नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृष्ठ-25.

त्रिपाठी, आर. वी. (2017). *संवादोपनिषद् : संस्कृत परंपरा के वैश्विक संवाद पर विमर्श*. भारत अध्ययन केंद्र, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, पृष्ठ-9.

त्रिपाठी, आर. वी. (2022). *वाद और संवाद की भारतीय परंपराएँ.* रामटेक : कवि कुलगुरु कालिदास विश्वविद्यालय, पृष्ठ 136.

धर्मपाल. (2010). *भारतीय चित्त, मानस, काल*. अहमदाबाद : पुनरुत्थान प्रकाशन ट्रस्ट, पृष्ठ-107.

सिंह, जे. पी. (2017). *सूचना से संवाद*. नई दिल्ली : वैदिक पब्लिशर्स, पृष्ठ-01.

सिंह, जे. पी. (2024). *नारदीय संचारनीति*. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ-52.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 5-10, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

हिंदी-बाँग्ला की आदिवासी कथा साहित्य परंपरा

शशिप्रभा यादव[1]

सारांश

लगभग डेढ़ सौ साल पहले आदिवासी भाषाओं में लिपियाँ विकसित होने लगीं। अब तक एक दर्जन से अधिक आदिवासी भाषाओं की लिपियाँ तैयार हो चुकी हैं। कई आदिवासी भाषाओं ने पड़ोस की किसी बड़ी भाषा की लिपि स्वीकार ली है। जैसे बंगाल के संथाली बाँग्ला में, उड़ीसा के संथाली उड़िया और झारखंड के संथाली देवनागरी में लिखते हैं। लेकिन, कई आदिवासी अपनी मूल भाषा में ही लिखते हैं। आदिवासी भाषाओं में लेखन और मुद्रण की परंपरा प्रारंभ होने के साथ ही हिंदी और बाँग्ला में कथा साहित्य सृजन की परंपरा प्रारंभ हुई। हिंदी में आदिवासी कथा साहित्य सृजन की परंपरा 1899 ई. में जगन्नाथ चतुर्वेदी के उपन्यास 'वसंत मालती' के प्रकाशन के साथ आरंभ हुई। हिंदी में कथा साहित्य सृजन बीसवीं शताब्दी में विकास के शीर्ष पर पहुँचा। बाँग्ला में आदिवासी साहित्य माझी रामदास टुडू, साधु रामचंद मुर्मू और रघुनाथ मुर्मू की कलम के सहारे आगे बढ़ा। बाँग्ला की आदिवासी कथा परंपरा का सर्वाधिक विकास बाँग्ला लेखिका महाश्वेता देवी की आदिवासी जीवन केंद्रित कथा कृतियों के प्रकाशन के साथ हुआ। हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद ने किसान को नायक बनाया तो बाँग्ला में मानिक बंद्योपाध्याय ने मछुआरों को। उससे काफी आगे जाकर बाँग्ला लेखिका महाश्वेता देवी ने आदिवासियों को अपनी अधिकतर कथाकृतियों का नायक बनाया।

संकेत शब्द : हिंदी आदिवासी उपन्यास, बाँग्ला आदिवासी उपन्यास, हिंदी आदिवासी कहानी, बाँग्ला आदिवासी कहानी

प्रस्तावना

'मतुराअ कहनि' पहला मुंडारी उपन्यास है। वही पहला आदिवासी उपन्यास भी है। यह बीसवीं सदी के दूसरे दशक में लिखा गया। इसके एक भाग का अनुवाद हिंदी में 'चलो चाय बागान' शीर्षक से किया गया। पहली आदिवासी कहानीकार एलिस एक्का बीसवीं सदी के छठे-सातवें दशक में सक्रिय थीं। उनकी कहानियों को वंदना टेटे ने संकलित कर पुनः प्रकाशित कराया। आठवें दशक में रामदयाल मुंडा कविता के अलावा कहानी लेखन के क्षेत्र में भी सक्रिय थे। पीटर पॉल एक्का लंबे समय से आदिवासी कथा लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। उनके कहानी संग्रह 'राजकुमारों के देश में' और 'परती जमीन' आदिवासी साहित्य की महत्त्वपूर्ण रचनाओं में शामिल हैं। रोज केरकेट्टा का 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' हिंदी पाठकों के बीच काफी चर्चित है। वाल्टर भेंगरा 'तरुण' का कहानी संग्रह 'जंगल की ललकार' सन् 1989 में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा उनके संग्रह हैं—'लौटती रेखाएँ', 'देने का सुख' आदि। आदिवासियत को आधार बनाकर वंदना टेटे ने हाल ही में एक कहानी संग्रह संपादित किया है—'आदिवासी कथा जंगल'। यह संग्रह आदिवासी जीवन दर्शन का जीवंत दस्तावेज है। इनके अलावा कहानी लेखन के क्षेत्र में मंगल सिंह मुंडा, रूपलाल बेदिया, सिकरादास तिर्की, शंकरलाल मीणा आदि भी सक्रिय हैं। आदिवासियों ने उपन्यास के क्षेत्र में भी अपनी उपस्थिति दर्ज की है। पीटर पौल एक्का और वाल्टर भेंगरा 'तरुण' सन् 1980-90 के दशक से लगातार लेखन कार्य कर रहे हैं। पीटर पॉल एक्का के 'पलाश के फूल', 'मौन घाटी' और 'सोन पहाड़ी' आदिवासी जीवन दर्शन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। वाल्टर भेंगरा के प्रमुख आदिवासी उपन्यास हैं—'जंगल के गीत', 'लौटते हुए', 'तलाश'। मंगल सिंह मुंडा का 'छैला संदु' और अजय कंडुलना का बड़े 'सपनों की उड़ान' भी आदिवासी उपन्यासों की सूची में हैं।

शोध प्रविधि

हिंदी और बाँग्ला की आदिवासी कथा साहित्य परंपरा कब शुरू हुई और उसका विकास किस भाँति हुआ, इस शोध प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए प्रस्तुत शोध आलेख में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक विधि का उपयोग किया गया है। आवश्यकतानुसार भावानुसंधान, विचारानुसंधान और प्रवृत्तिमूलक अनुसंधान विधि का उपयोग भी किया गया है।

हिंदी का आदिवासी कथा साहित्य

हिंदी में पहला आदिवासी उपन्यास आज से ठीक 125 वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ। हुस्न तबस्सुम निहाँ द्वारा संपादित पुस्तक 'आदिवासी विमर्श के विभिन्न आयाम' में संकलित 'हिंदी उपन्यासों में आदिवासी संस्कृति : लोक गीत, लोक नृत्य एवं लोक कथाएँ' शीर्षक लेख में कुमार विश्वमंगल ने लिखा है, "हिंदी में प्रथम आदिवासी उपन्यास जगन्नाथ चतुर्वेदी का 'वसंत मालती' माना जाता है, जो 1899 में प्रकाशित हुआ (निहाँ, 2021, पृष्ठ-199)। हिंदी में आदिवासी उपन्यासों का विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ। कुमार विश्वमंगल के शब्दों में, "बीसवीं शताब्दी में 'शैलूष' (शिवप्रसाद सिंह), 'धार' (संजीव), 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (संजीव), 'अल्मा कबूतरी' (मैत्रेयी पुष्पा), 'गगन घटा घहरानी' (मनमोहन पाठक), 'पठार पर कोहरा' (राकेशकुमार सिंह), 'रेत' (भगवानदास मोरवाल), 'मगनगोड़ा नीलकंठ हुआ' (महुआ माजी), 'धुणी तपे तीर' (हरिराम मीणा), 'ग्लोबल गाँव के देवता' (रणेंद्र) जैसे सशक्त उपन्यासों का सृजन हुआ, जिनमें आदिवासियों के जीवन की स्थिति के विविध आयामों को चित्रित किया गया है" (निहाँ, 2021, पृष्ठ-199)।

इसी कड़ी में मुख्यतः आदिवासियों को केंद्र बनाकर लिखे गए हिंदी उपन्यासों में 'रथ के पहिए' (देवेंद्र सत्यार्थी), 'कब तक पुकारूँ' (रांगेय राघव), 'सूरज किरण की छाँव' (राजेंद्र अवस्थी), 'जंगल के फूल' (राजेंद्र अवस्थी), 'जंगल के आसपास' (राकेश वत्स), 'पाँव तले की

[1]पीएच.डी. शोधार्थी, विद्यासागर विश्वविद्यालय, मिदनापुर, पश्चिम बंगाल. ईमेल : sprabharao1981@gmail.com

दूब' (संजीव), 'जहाँ बास फूलते हैं' (श्री प्रकाश मिश्र), 'सावधान! नीचे आग है' (संजीव), 'काला पादरी' (तेजिंदर), 'अरण्य में सूरज' (श्रीमती अजित गुप्ता) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। तेजिंदर का 'काला पादरी' मध्यप्रदेश की 'उराँव' जनजाति की समस्याओं को व्यक्त करनेवाला उपन्यास है। उपन्यासकार आदिवासियों के औपनिवेशिक व्यवस्था में फँसे होने की वास्तविकता सामने रखता है। साथ ही आदिवासी भूख, अभाव, दारिद्र्य, शोषण आदि से परेशान होकर ईसाई, बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की ऐतिहासिक वास्तविकता की ओर भी संकेत करता है। आदिवासियों के भूख, अभाव और दारिद्र्य को व्यक्त करता हुआ वह लिखता है, "साहब, रात में बच्चा मर गया। उसकी माँ ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी माँ भी मर गई। उसने भी कई दिनों से कुछ खाया नहीं था" (तेजिंदर, 2016, पृष्ठ- 21)।

'पठार पर कोहरा' झारखंड के मुंडा आदिवासियों की करुण कथा है। राकेश कुमार सिंह ने आजादी के बाद भी आदिवासियों के जीवन की समस्याओं का कोहरा न हटने की बात उपन्यास में की है। उपन्यास ने साहू, बाबू और बंदूकधारी संस्कृति की पोल खोल दी है, जो अँग्रेजों के झारखंड छोड़ने पर शोषण का काम रहे हैं। उपन्यास की शुरुआत ही इस प्रकार हुई है—

"जंगल यहाँ से शुरू होता है
बहुत जहरीला होता है कौमनिष्ट दिकू....!"
'दिकू...यानी वह व्यक्ति, जो जन्मना जंगल का वासी न हो
जो जंगल के बाहर का हो। गैर-आदिवासी हो। 'दिकू'...
यानी वह जो दिक्कत का कारण बने। दिक्कतें पैदा करे।"...
बाघ, भालू, गीध, कौए और सियार से भी ज्यादा खतरनाक होता है
दिकू। और उसमें भी कौमनिष्ट।"

(सिंह, 2024, पृष्ठ-01)

उपन्यास में सरकारी योजनाओं के भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ किया गया है। उपन्यासकार आदिवासियों की योजनाओं में हो रहे भ्रष्टाचार के रूप को इस प्रकार व्यक्त करता है, "आजादी के बाद आदिवासियों की कल्याण की सैंकड़ों योजनाएँ बनी हैं, पर उनके क्रियान्वयन का क्या हुआ? आवंटित राशि का दस प्रतिशत भी देश के आदिवासियों तक नहीं पहुँच रहा है। कई योजनाएँ कागज पर चलती रहती हैं। कई योजनाएँ तो फाइलों की कब्र में ही दफन हो गई। यदि अफसरशाही और राजनीति का यही तालमेल कायम रहा तो पता नहीं कितने समय तक आदिवासी समाज इसी तरह अपढ़, असंस्कृत, भूखा, नंगा, शोषित, उपेक्षित और लोकतंत्र के ज्ञान एवं विज्ञान से कटा रहेगा" (सिंह, 2024, पृष्ठ-137)।

भगवानदास मोरवाल का 'रेत' उपन्यास हरियाणा की कंजर जनजाति की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं को प्रस्तुत करता है। 'कंजर' अर्थात् काननचर यानी जंगल में घूमनेवाले। यह कंजर अपने आप को 'माना गुरु' और 'माँ नलिन्या' की संतान मानते हैं। कंजरों को (जरायमपेशा) अपराधी मनोवृत्ति वाली जनजाति समझा जाता है। अँग्रेज सरकार ने इन पर कई बंधन डाल दिए थे, जिसे उपन्यासकार ने थानेदार केसर सिंह के माध्यम से कहलवाया है। केसर सिंह कबीले के मुखिया से कहता है, "बिना इजाजत या इत्तिला दिए कोई कंजर गाँव छोड़कर नहीं जा सकता ...और जाता है तो मुखिया को इसकी जानकारी होनी चाहिए, जिसकी इत्तिला मुखिया को थाने में देनी होती है" (मोरवाल, 2016, पृष्ठ-51)। उपन्यास में कंजरों के पुलिस, अफसरशाही, प्रशासन द्वारा हो रहे शोषण को व्यक्त किया गया है। साथ ही यह उपन्यास यौन शुचिताओं की सभी सीमाएँ तोड़ देता है।

हरिराम मीना का 'धूणी तपे तीर' 17 नवंबर, 1913 के दिन घटित मानगढ़ (राजस्थान) की घटना पर आधारित है। इस घटना की इतिहासकारों ने अनदेखी की थी। इस उपन्यास के माध्यम से हरिराम मीना ने 'भीलो'-'मीनो' के ऐतिहासिक योगदान को उजागर किया है। उपन्यास के केंद्र में है गोविंद गुरु का ऐतिहासिक योगदान। उपन्यासकार ने स्पष्ट करने की कोशिश की है कि कैसे गोंविद गुरु ने मीणों को संगठित किया, उनमें कैसी जागृति भर दी, उन्हें बलिदान के लिए कैसे तैयार किया। यही इस उपन्यास की कथावस्तु है। इस उपन्यास पर प्रकाश डालते हुए स्वयं उपन्यासकार ने लिखा है, "देश का पहला 'जालियाँवाला कांड' अमृतसर (1919) से छह वर्ष पूर्व दक्षिणी राजस्थान के बाँसवाड़ा जिला के मानगढ़ पर्वत पर घटित हो चुका था, जिसमें जालियाँवाला से चार गुना अधिक शहादत हुई थी'' (मीणा, 2008, पृष्ठ-भूमिका)। रणेंद्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' वस्तुतः आदिवासियों-वनवासियों के जीवन का संतप्त सारांश है। शताब्दियों से संस्कृति और सभ्यता की पता नहीं किस छन्नी से छनकर अवशिष्ट के रूप में जीवित बच गए असुर समुदाय की गाथा पूरी प्रामाणिकता व संवेदनशीलता के साथ रणेंद्र ने लिखी है। आग और धातु की खोज करनेवाली, धातु पिघलाकर उसे आकार देनेवाली कारीगर असुर जाति को सभ्यता, संस्कृति, मिथक और मनुष्यता सबने मारा है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' असुर समुदाय के अनवरत जीवन संघर्ष का दस्तावेज है। देवराज इंद्र से लेकर ग्लोबल गाँव के व्यापारियों तक फैली शोषण की प्रक्रिया को रणेंद्र उजागर कर सके हैं। हाशिये के मनुष्यों का सुख-दुख व्यक्त करता यह उपन्यास झारखंड की धरती से उपजी महत्त्वपूर्ण रचना है। असुरों की अपराजेय जिजीविषा और लोलुप-लुटेरी टोली की दुरभिसंधियों का हृदयग्राही चित्रण उपन्यास में हुआ है : "धमाकों की आवाज सुनाई पड़ी। हड़बड़ाकर साइकिल से गिर पड़ा। धमाके अभी भी गूँज रहे थे। कान सुन्न हो गए। पैर काँप रहे थे। साइकिल किसी तरह सँभाले, धीरे-धीरे पैदल ही बढ़ा। पता चला कि लैंडमाइंस बिछाई गई थी। बातचीत के लिए जाते ललिता, बुधनी दी, गंदूर, एतवारी, लालचन दा के बाबा और पंद्रह लोगों की धज्जियाँ उड़ गई थीं। लेकिन बिखरी हुए देह की जगह पिघला हुआ गरम लोहा वहाँ बहने लगा। लाल पानी-सा लोहा धीरे-धीरे पाट की धरती में समा रहा। ठीक पाथरपाट के गोलीकांड के बाद की घटना फिर घटी। इस बार ठीक मेरे पैरों के पास से भी धधकता लोहा बहता जा रहा था। न जाने क्यों मुझे लग रहा था कि वह मुझे खींच रहा है, चुंबक की तरह। ग्लोबल गाँव के देवता खुश थे। जो लड़ाई वैदिक युग में शुरू हुई थी, हज़ार-हज़ार इंद्र जिसे अंजाम नहीं दे सके थे, ग्लोबल गाँव के देवताओं ने वह मुकाम पा लिया था। असुर-बिरिजिया, बिरहोर-कोरबा, आदिम जाति-आदिवासी सब मुख्यधारा में शामिल होने ही वाले थे। मुख्यधारा की लहरें चाँद छूने को बेताब थीं। वे लहराती इठलाती राज्यों की राजधानियों से होती वाया दिल्ली, वाशिंगटन डी.सी. की ओर दौड़ी जा रही थीं। इधर पाट पर जहाँ-जहाँ पिघला लोहा बहा था, वहाँ पलाश का जंगल लहलहा रहा था। टहटह लाल पलाश से तेज धार आती। पिघले बहते लोहे की तेज धार जैसी। राजधानी के युनिवर्सिटी हॉस्टल से सुनील असुर अपने साथियों के साथ कोयलबीघा पाट के लिए निकल रहा था। लड़ाई की बागडोर अब उसे सँभालनी थी" (रणेंद्र, 2017, चौथा संस्करण, पृष्ठ-100)।

अजित गुप्ता का 'अरण्य में सूरज' राजस्थान की भील जनजाति की जीवन वास्तविकता को स्पष्ट करता है। उपन्यासकार ने भीलों के परंपरागत जीवन को उनकी रूढ़ियों, मिथकों, अंधविश्वासों, दंतकथाओं के माध्यम से पाठकों के सामने रखा है। उपन्यास में शिक्षा को आदिवासियों के जीवन सुधार के एक पर्याय के रूप में रखा गया है। वैश्वीकरण, बाजारवाद का यह युग भी भीलों की मानसिकता आसानी से न बदल सकने की बात उपन्यासकार करता है। इस उपन्यास ने बाल-विवाह, बेरोजगारी एड्स जैसी बीमारी, अंधविश्वास, दारिद्रय, शोषण, विस्थापन, अशिक्षा जैसी समस्याओं को अभिव्यक्त किया है।

महुआ माजी का उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' जल-जंगल-जमीन की समस्या और विकिरण तथा विस्थापन से जूझते आदिवासी जीवन की महागाथा है। समूची दुनिया में आदिवासियों के जीवन पर आज सबसे ज्यादा प्रभाव वहाँ यूरेनियम के लिए हो रहे खनन का पड़ रहा है। उपन्यास खनन से ही शुरू होता है। उसके बाद उसका पूरा संसार आँखों के सामने खुलता चला जाता है। उस खनन से जो रेडियोधर्मी प्रदूषण फैल रहा है, उसके दुष्परिणामस्वरूप आदिवासी स्त्रियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकलांग और विकृत बच्चों को जन्म दे रही हैं और जंगलजीवियों की एक समूची दुनिया नष्ट हो रही है।

रमणिका गुप्ता के दोनों उपन्यास 'सीता' और 'मौसी' आदिवासी समाज के दो पहलू हैं। दोनों एक व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं या पूरक हैं। दोनों उपन्यास दो आदिवासी महिलाओं की दास्तान हैं। ये उपन्यास उन आदिवासी अंचलों के हैं, जो विकसित होकर एक नए औद्योगिक परिवेश में बदल रहे हैं, जहाँ आदिवासी संस्कृति तार-तार हो रही है और उसे बचाने की जद्दोजहद जारी है। ये उपन्यास उस संक्रमण काल के दौर का कथानक समेटे हैं, जहाँ विस्थापन के कारण आदिवासी अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है और वह अपनी पहचान व संस्कृति बचाने की भरसक कोशिश कर रहा है। 'सीता' और 'मौसी' में दोनों ही शीर्ष पात्रों का दबंग व्यक्तित्व और ओजस्वी संघर्ष, अपनी समूची अस्तित्व चेतना के साथ उभरकर सामने आया है। कथ्य पूरी तरह से तथ्यों पर आधारित है।

'मौसी' ने जंगल से अपनी जंग शुरू की और खदानों के बीहड़ में धक्के खाकर फिर अपने गाँव लौट आई। लौट आई वह अपने जंगल में। जंगल, जो उजड़ चुका था। उस गाँव में, जो मूल आदिवासियत गँवाकर जातियों का अखाड़ा बन रहा था। मौसी संघर्ष की भाषा सीख चुकी थी। उस माहौल में अट नहीं पा रही थी। वह अस्मिता को पहचान और जान चुकी थी। उसने अपनी स्वतंत्रता बरकरार रखने के लिए गाँव छोड़ दिया और कमाने-खटने के लिए शहर आ गई, अपने भरोसे जीने के उपक्रम का संकल्प लेकर। बहुत से पुरुषों के हाथों में फिसलती चली गई थी मौसी। अब उसे पुरुष के भरोसे जीना स्वीकार नहीं था। उसे स्वीकार्य था पुरुष का साथी बनकर साथ लेना, पति या खूँटा बनाकर नहीं।

सीता अपनी जंग शुरू करती है कोयला खदानों से। उस मिलीजुली बोली-भाषा वाली संस्कृति के बल पर वह अपनी पहचान बनाती है। किसान से कामगार बन चुकी सीता किसानों की लड़ाइयों का नेतृत्व भी एक अगुआ दस्ते की सदस्य के नाते करती है। धर्म व जाति को वह अपने आदिवासी समाज के नजरिये से देखती है। वह अपनी जीवनशैली बरकरार रखती है और वैसे ही जीती है, रहती है! आर्थिक स्तर पर भी वह मजदूरों के हकों के लिए संघर्ष करती है। राजनीतिक स्तर पर भी वह जागरूक हो चुकी है और संगठन पर अपनी पकड़ जमा चुकी है।

रमणिका गुप्ता ने इन उपन्यासों के अलावा आदिवासी जीवन पर कई कहानियाँ भी लिखी हैं। हिंदी में आदिवासी कहानियों के संकलन का मूल्यवान कार्य वंदना टेटे ने किया है। इस दृष्टि से उनकी संपादित किताबें 'हिंदी की आरंभिक आदिवासी कहानियाँ', 'एलिस एक्का की कहानियाँ', 'लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 1972 ई. में राँची, झारखंड के रोमन काथलिक मिशन के 'बुलाहट कार्यालय' के सौजन्य से 'जलते-जलाते दीप' नामक हिंदी कथा संग्रह का प्रकाशन हुआ है। अस्सी पृष्ठों की इस पुस्तक में 13 कहानियाँ हैं, जिसका मुद्रण एजुकेशन प्रेस, राँची से हुआ है। हिंदी में प्रकाशित यह संभवतः भारत का पहला आदिवासी कथा-संग्रह है (टेटे व पंकज, 2020, पृष्ठ-06)। बाद में इस संग्रह के दो और खंड प्रकाशित हुए। 'जलते-जलाते दीप' खंड-2 में चौदह और खंड-3 में 12 कहानियाँ शामिल हैं। किसी आदिवासी द्वारा लिखित और प्रकाशित हिंदी की पहली कहानी 1921 की 'निष्कलंका' पत्रिका में छपी है। उस कहानी का शीर्षक है 'एक छोटी-सी कथा' और लेखक हैं सुलिमान किसपोट्टा। निष्कलंका में प्रकाशित कहानियों का संकलन वंदना टेटे और अश्विनी कुमार पंकज ने 'हिंदी की आरंभिक आदिवासी कहानियाँ' शीर्षक से प्रकाशित किया है। इस पुस्तक में संकलित सभी 31 कहानियाँ 'निष्कलंका' से ली गई हैं, जो 1921 से 1970 के बीच छपी हैं (टेटे व पंकज, 2020, पृष्ठ-12)।

'हिंदी की आरंभिक आदिवासी कहानियाँ' पुस्तक में संकलित कहानियों में शामिल हैं—एक छोटी-सी कथा (सुलिमान किसपोट्टा), माछी हर दिन खैला (ए. कुजूर), हुंडार का गुंडा (ओबेद होरो), सच्ची दुर्घटना (जे. तोपनो), आपत्ति (प. श. न.), जादू का सिंगारदान (स. ज.), 'तू' ही मेरी आशा (थोमस बड़ा, एस. जे.), नील सैनिक (अलेक्स बेक), शहीद (ब्र. पीटर तिरकी), ईश्वर की लीला (नोर्बर्ट सुरीन), सुजान (ब्र. जौन एक्का), मीठे आँसू (श्री श्री खेसपूँप), बाल बलि (लता तिरकी), तीन दर्पण (मेरी पुलकेरिया धान), नया साल नया क्या? (क्लेमेंट एक्का), जीवन साथी (डी. जोनी 'तरुण नायक), अप्रत्याशित (इमोजेन मींज), टूटी आस (जेम्स केरकेट्टा), दीपक जल रहा था (एम. लुडवीणा सोरेंग), फिल्म और फैशन का फंदा (प्रेमेंद्र), सवाल-दर-सवाल (थेओ. टोप्पो), मैं अकेला (क्लेमेंट एक्का)। इस पुस्तक में संकलित 'मन फेरने वाले', 'अन्याय का बोझा', 'कौन अधिक हँसा', 'बुधु उराओं और सोमरा खड़िया', 'दो ढीले', 'धोखेबाज गाय', 'बंदर मत बनो', 'तुंबा और बाघ' और 'पुनर्मिलन' शीर्षक कहानियों के साथ कहानीकारों का नाम नहीं दिया गया है, क्योंकि वे अज्ञात हैं। कथ्य, विषय, शैली और 'आदिवासी कहन' की दृष्टि से निःसंदेह ये कहानियाँ अनमोल हैं। हिंदी गद्य साहित्य एवं आदिवासी कथा लेखन के आरंभ, विकास और उत्कर्ष के इतिहास को इनको पढ़े बगैर नहीं जाना जा सकता है (टेटे व पंकज, 2020, पृष्ठ-13)। इनका महत्त्व इसलिए है कि ये आदिवासियों द्वारा हिंदी में लिखी गई आरंभिक कहानियाँ हैं। हिंदी साहित्य और आदिवासी साहित्य, दोनों का इतिहास इनके बिना अधूरा है। हिंदी भाषा-साहित्य के विकास में इनका ऐतिहासिक योगदान है। आदिवासी अस्मिता, साहित्य व सामाजिक-राजनीतिक जागरूकता और पढ़े-लिखे व ईसाई हुए आदिवासी समाज में आरोपित सांस्कृतिक मूल्यों के ये प्राथमिक ऐतिहासिक दस्तावेज हैं (टेटे व पंकज, 2020, पृष्ठ-13)।

हिंदी में संथाली का पहला कहानी संग्रह 'कुकम्' 1952 में प्रकाशित

हुआ (टेटे, 2021, पृष्ठ-55)। इसके लेखक हैं बालकिशोर बासके। संथाली कहानियों का दूसरा संग्रह 'बुलमुंडा' है, जिसके लेखक डोमन साहू समीर हैं। कुमारी बासंती का नागपुरी कहानी संग्रह 'क्रिसमस कर साँझ', शकुंतला मिश्र का कहानी संग्रह 'एक चकता रउद', फ्रांसिस्का कुजूर की कहानियों का संग्रह 'मूसल', रोज केरकेट्टा का कहानी संग्रह 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' हिंदी में प्रकाशित हैं। हिंदी में जो आदिवासी कहानियाँ मील का पत्थर मानी जाती हैं, वे हैं—'माँहा का खाली जाल' (विजय टुडु), 'हिसाब' (नथानियेल मुर्मू मारसाल दूत), 'तीन पाव चावल' (बालकिशोर बासके), 'धरती का बेटा' (बासुदेव बेसरा), 'मेरी पहचान' (सुंदर मनोज हेंब्रम और रंगीला मोर (पंकज किस्कू)। ये कहानियाँ न केवल हमें संथाली विश्व दृष्टिकोण को समझने में मदद करती हैं, बल्कि हमें आदिवासियत के विशिष्ट कथन, शैली और सौंदर्यबोध का भी भरपूर आस्वाद देती हैं (टेटे, 2023, पृष्ठ-11)।

बाँग्ला का आदिवासी कथा साहित्य

बाँग्ला लेखिका महाश्वेता देवी ने आदिवासियों को अपनी अधिकतर कथाकृतियों का नायक बनाया। महाश्वेता की कई कथाकृतियाँ आदिवासियों की प्रामाणिक संघर्ष गाथाएँ हैं। इनमें आदिवासी समाज की चिंता कदाचित् पहली बार बाँग्ला कथा साहित्य में प्रकट हुई। भारत के अधिकतर आदिवासी समुदाय मुख्यत: जंगल पर आश्रित रहे हैं। जंगल ही उनके जीवन और जीविका का उद्गम स्थल रहा है। लेकिन, भारत में अँग्रेजी राज के दौरान सन् 1878 ई. में कुख्यात जंगल कानून लागू किया गया तो उसके परिणामस्वरूप आदिवासी जंगल में शिकार करने, पशु चराने, लकड़ी-पत्ते-मधु आदि संग्रह करने जैसे सभी अधिकारों से वंचित हो गए। यहाँ तक कि जंगल के भीतर और आसपास आदिवासियों के जितने भी गाँव थे, सरकार ने उन्हें जबरन उजाड़ दिया। एक तरह से जंगल पर आश्रित एक विशाल जनसमुदाय को आजीविका का वैकल्पिक अवसर न देकर, उन्हें जंगल से भगाकर तिल-तिल मरने के लिए मौत के मुँह में धकेल दिया गया। तत्कालीन अँग्रेज हुकूमत ने वैसे भी यह कानून जंगल की वनस्पतियों और वन्य प्राणियों के संरक्षण के मकसद से लागू नहीं किया था, बल्कि वह भारत की विपुल वन संपदा को लूटने की महज सरकारी चाल थी। जंगलों से आदिवासियों को क्रूरतापूर्वक खड़ेड़ कर उन्हें (जंगलों) बड़े-बड़े यूरोपीय ठेकेदारों और देसी महाजनों के हाथों बेच दिया गया था और उसके बाद उन ठेकेदारों-बनियों-महाजनों के गिरोह जंगल की लूट में जुट गए। दूसरी ओर, जंगल जिनकी आजीविका का एकमात्र साधन था, जो जंगल को माँ मानते हैं, माँ की ही तरह उसका सम्मान और पूजा करते रहे हैं, तरह-तरह के लोकाचार और अनुष्ठान के माध्यम से जो लोग हजारों वर्षों से जंगल को बचाए हुए खुद भी जंगल की विविध संपदा पर आश्रित होकर जी रहे थे, वे सारे-के-सारे आदिवासी अपना सब कुछ खो जाने के बाद धीरे-धीरे विक्षुब्ध होने लगे। एक के बाद एक आदिवासी विद्रोह पनपने लगा। ब्रिटिश सरकार के तरह-तरह के दमन-उत्पीड़न के बावजूद विद्रोह की आग फैलती ही गई। इस आग ने बिरसा मुंडा के 'उगगुलान' या महाविद्रोह के जरिये भीषण रूप धारण किया। सन् 1899-1900 ई. के दौरान सदी की शुरुआत में भारत के बिहार प्रांत के छोटानागपुर अंचल में यह ऐतिहासिक विद्रोह आरंभ हुआ। इसी महाविद्रोह पर महाश्वेता देवी ने उपन्यास लिखा 'अरण्येर अधिकार'। हिंदी में यह 'जंगल के दावेदार' शीर्षक से अनूदित होकर प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में महाश्वेता समाज में व्याप्त मानवीय शोषण और उसके विरुद्ध उबलते विद्रोह को उम्दा तरीके से रखांकित करती हैं। बिरसा मुंडा की असमय मौत से भले ही यह आंदोलन कुछ समय के लिए दब गया था, लेकिन बाद में धीरे-धीरे अलग-अलग तरह से अलग-अलग रूप में सभी आदिवासी समुदायों के बीच फैल गया।

महाश्वेता ने बिरसा के महासंग्राम के बाद तिलका माझी के संग्राम पर 'शाल-गिरह की पुकार' नामक उपन्यास लिखा। उसमें लेखिका की स्थापना है—हिंदुस्तान में गोराशाही लूट पर टिकी थी। व्यापार करने आई ईस्ट इंडिया कंपनी ने लूट-व्यापार को स्थायी बनाने के लिए षड्यंत्र और सैनिक हस्तक्षेप के जरिये 1757 में प्लासी-युद्ध में जीत के बाद सत्ता हाथ में ले ली। मगर रियाया पर प्रभुत्व स्थापित करना आसान न था। गोरों के खिलाफ असंतोष फैलने लगा था। मुनाफे के लिए गोरे अकाल और भूख की तिजारत कर रहे थे। अपने शासन क्षेत्र का विस्तार कर रहे थे। बिहार-बंगाल के जंगल के दावेदार संथालों से अपना लोहा मनवाने और उनकी स्वतंत्र-प्रवृत्ति पर काबू पाने के लिए गोरों ने जंगल-उत्पादों, धान-चावल की खरीद शुरू की। गोरों ने बाजार को हथियार बनाया। संथाल भड़क उठे और विद्रोह की कमान सँभाली संथाल परगना के आदि विद्रोही तिलका माँझी ने। संथाल जीवन और गोरों के विरुद्ध उनके ऐतिहासिक संग्राम की गाथा 'शाल-गिरह की पुकार' में कही गई है। यह न केवल इतिहास है, बल्कि हर भारतीय के लिए गौरव-स्मृति भी है।

महाश्वेता देवी ने अपने दूसरे कई उपन्यासों व कहानियों में भी सदियों से मुख्यधारा से बाहर धकेली गई आदिवासी अस्मिता के प्रश्न को शिद्दत से उठाया। महाश्वेता के भीतर की वेदना को 'टेरोडेक्टिल' उपन्यास की चंद पंक्तियों में देखा जा सकता है जब एक पात्र कहता है, "आदिवासी कल्याण के मद में प्राप्त रुपयों से इन राजपथों, सड़कों का निर्माण हुआ है, ताकि मालिक, महाजन, दलाल और अय्याश लोग आदिवासियों द्वारा बनाई शराब और आदिवासी युवतियों के इच्छुक लफंगे, अहंकारी युवक सीधे आदिवासियों की बस्तियों तक पहुँच सकें।... ये आदिवासी जब इन रास्तों पर चलते हैं तो वे उनकी शिक्षा व्यवस्था, सिंचाई के पानी, पीने के पानी और स्वास्थ्य केंद्रों की समाधि के ऊपर पाँव रखकर चलते हैं।.... उनका प्राप्य क्या है? भारत की कुल आबादी के सात दशमलव सात छह प्रतिशत जो लोग हैं, उन पाँच करोड़, छियानबे लाख, अठाइस हजार छह सौ अड़सठ लोगों का प्राप्य क्या है, यह अब भी उन्हें नहीं बताया गया है...न दूरदर्शन बताता है न रेडियो न अखबार न एमएलए, एमपी के प्रत्याशी; न पंच न पंचायत, न राज्य सरकारें न आदिवासी सलाहकार...। न बतलाने की इस नीति का अनुसरण करने के लिए कितना विपुल श्रम और अर्थ व्यय होता है, कितने ही दिग्गज बुद्धिजीवी इसमें लगे हैं। कितने ही राजनैतिक दाँव-पेंच इसे लेकर चले जाते हैं। उनका प्राप्य क्या था, इसे जाने बिना ही आदिवासी अपनी प्रेत छाया से ढँकी जिंदगियाँ लेकर इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर जाएँगे" (देवी, 1997, पृष्ठ-24)।

ये एक-एक शब्द महाश्वेता के भीतर खौल रहे हैं। महाश्वेता की बेचैनी उनकी दूसरी कृतियों में भी देखी जा सकती है। 'टेरोडेक्टिल' पूँजीवादी प्रगति और आदिम संस्कृति के दो जीवन मूल्यों के संघात का चित्रण करता है, तो 'चोट्टि मुंडा और उसका तीर' शोषण के खिलाफ चोट्टि मुंडा के वीरतापूर्वक संघर्ष की महागाथा है। 'चोट्टि मुंडा और उसका तीर' में

महाश्वेता देवी पूछती हैं—"आदिवासियों के हित में कानून बने पर लागू कितने हुए? क्या बंधुआ आदिवासी मुक्त हो गए? बेगी प्रथा समाप्त हुई? हवाई योजनाविदों का विश्वास है कि इन इलाकों में 'कुष्ट ग्राम' है, जहाँ सब-के-सब कुष्ठ रोगी हैं, पर ऐसा गाँव नहीं मिलता। कागजी विकास योजनाओं के पीछे दृष्टि है कि आदिवासी मनुष्य नहीं, तमाशे के खिलौने हैं।" उपन्यास में एक पात्र का यह कथन द्रष्टव्य है—"आप लोग भारत को मध्ययुग में रख देंगे। अरे कोई अछूत, आदिवासियों के लिए कुछ करता क्यों नहीं" (देवी, 1981, पृष्ठ-274)?

'अग्निगर्भ' में महाश्वेता देवी पूछती हैं—"जब बटाईदारी-अधिया जैसी घृणित प्रथा में किसान पिस रहे हों, खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी न मिले, बीज-खाद-पानी-बिजली के लाले पड़ें, तो उनका अस्तित्व दाँव पर होता है। ऐसे में वे सामंती हिंसा के विरुद्ध हिंसा को चुन लें तो क्या आश्चर्य?" 'अग्निगर्भ' का संथाल किसान बसाई टुडू किसान-संघर्ष में मरता है। लाश जलने के बावजूद उसके फिर सक्रिय होने की खबर आती है। बसाई फिर मारा जाता है। वह अग्निबीज है और अग्निगर्भ है सामंती कृषि-व्यवस्था। 'अग्निगर्भ' उपन्यास में महाश्वेता देवी मानती हैं कि इस धधकते वर्ग-संघर्ष को अनदेखा करना और इतिहास के इस संधिकाल में शोषितों का पक्ष न लेने वाले लेखकों को इतिहास माफ नहीं करेगा। असंवेदनशील व्यवस्था के विरुद्ध शुद्ध, सूर्य के समान क्रोध ही उनकी प्रेरणा है। 'अग्निगर्भ' में उन संघर्षशील लोगों की कथा है, जिन्होंने सामाजिक न्याय के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए। 'दौलति' में तीन उपन्यास हैं और तीनों की प्रतिनिधि महिला पात्र हैं—दौलति, बासमती और गोहुअन। एक तरह की आर्थिक स्थितियों के बावजूद तीनों की सोच अलग-अलग है। आदिवासी स्त्री के मनोविज्ञान तथा उनके संग्राम का तलस्पर्शी विवेचन महाश्वेता ने इस कथा कृति में किया है। दरअसल, आदिवासी स्त्री की उत्पीड़ित जिंदगी का आईना है यह कथाकृति। दक्षिण बिहार, बंगाल, उड़ीसा, गुजरात व महाराष्ट्र की जनजातियों के बीच वर्षों काम करने के अनुभव ने महाश्वेता को पैनी दृष्टि और ऐसी शक्ति दी, जिससे वे भारतीय आदिवासी जीवन के पीड़ादायक मुद्दों का अनुभव कर सकीं और अपनी कृतियों में अभिव्यक्त कर सकीं। आदिवासियों-दलितों के जीवन और वृत्तांत के माध्यम से उन्होंने इतिहास, मिथक और वर्तमान राजनैतिक यथार्थ के ताने-बाने को सँजोते हुए सामाजिक परिवेश की माननीय पीड़ा को स्वर दिया।

अपने कई उपन्यासों की तरह अपनी अनेक कहानियों में भी महाश्वेता देवी जनजातियों और आदिवासियों के संग्राम को वाणी देने के लिए संघर्षशील नायकों का संधान करती हैं। इन संघर्षशील आदिवासी नायकों का संधान महाश्वेता की कहानी 'बाढ़' में बागदी के रूप में, 'बाँयेन' में डोम, 'शाम सवेरे की माँ' में पाखमारा, 'शिकार' में ओरॉंव, 'बीज' में गंजू, 'मूल अधिकार और भिखाली दुसाध' में दुसाध, 'बेहुला' में माल और 'द्रौपदी' में संथाल के रूप में सहज ही हो जाता है। इनमें गंजू लोगों का काम है—मृत मवेशियों की खाल निकालना। भिखारी दुसाध की जीविका है—घूम घूमकर बकरी चराना। बाँयेन बन जाने के पहले चंडी का वंशगत काम था—श्मशान में मुर्दे गाड़ना। डोम श्मशान के मालिक हैं। आदिवासियों का यह तो आनुवांशिक काम है, यही उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी आदिवासी बनाए रखता है। कुछ लोग तीन-पाँच कर जरूर ऊपर उठ जाते हैं, पर कुछ लोग ही। जैसे 'बाँयेन' कहानी में मलिंदर गंगापुत्र श्मशान से ऊपर उठकर जिले के लाशघर में काम पा जाता है और सरकार बाबू के साथ मिलकर लावारिश लाशों के कंकाल के व्यापार में लगता है, पर अपने संस्कारों से नहीं उबर पाता। 'बाँयेन' कहानी में महाश्वेता देवी अत्यंत मार्मिकता के साथ यह रेखांकित करती हैं कि जो स्वयं मुख्यधारा से निर्वासित हैं, वे स्वयं अपने में से किसी व्यक्ति को समाज से निर्वासित करते हैं तो वह निर्वासित स्त्री मनुष्येतर श्रेणी में पहुँच जाती है। तुर्रा यह कि उसे भी वह अपनी नियति मानकर कबूल करती है। चंडी बाँयेन बन जाती है तो मलिंदर अपने बेटे भगीरथ से कहता है, 'पहले वह आदमी थी, तेरी माँ थी।' भगीरथ को किंतु पिता की बात गले नहीं उतरती, वह अपनी माँ को मनुष्य ही मानता है, बाँयेन नहीं। वह बाँयेन स्त्री ही एक बड़ी रेल दुर्घटना रोकती है अपनी आहुति देकर, तो आदिवासी समाज ठगा रह जाता है और भगीरथ जब देश और शासन के सामने अपना परिचय चंडी बाँयेन के पुत्र के रूप में देता है, तो कहानी अपने अत्यंत मार्मिक क्षण में पहुँच जाती है।

'बाँयेन' में मलिंदर अपनी जाति से जिस तरह ऊपर उठ जाता है, उसी तरह 'शाम सवेरे की माँ' में जटी भी जाति से ऊपर उठती है। बाँयेन में मलिंदर ने, 'शाम सबेरे की माँ' में जटी ने पारिवारिक या आनुवांशिक जीविका के बजाय दूसरा काम चुना, पर वे अपने संस्कारों से ऊपर नहीं उठ पाए। 'बेहुला' में भी संस्कार से आदिवासियों को मुक्त करने की आकांक्षा कथाकार में है। 'बेहुला' में संस्कारों की मुक्ति श्रीपद की मृत्यु में ही है। बाढ़ में एक पुराना रूपक आता है कि बहुत पहले एक बार बाढ़ के पानी में जात-पाँत का बंधन बह गया था और धनी लोगों ने आदिवासियों को भरपेट भोजन कराया था। इस व्यंजना की प्रतिष्ठा कदाचित् विषमता के बीच समता की स्थापना करने के लिए की गई है। आखिर पेट की ज्वाला कैसे शांत हो? 'बीज' कहानी में दूलन गंजू को लगता है, 'जिंदा रहने की चतुराई के बारे में सोचते-सोचते उसे अपने बेटों और पोतों के साथ बात करने का वक्त न मिला।'

परिमल हेंब्रम ने बाँग्ला में 'संथाली साहित्येर इतिहास' नामक पुस्तक लिखी है। उस किताब से बाँग्ला भाषा में रचे जानेवाले आदिवासी साहित्य के विकास क्रम का पता चलता है। पश्चिम बंगाल की आबादी में 5.80 प्रतिशत आदिवासी हैं और उनकी प्रमुख भाषा संथाली है। संथाली भाषा का इतिहास बहुत पुराना है। चर्यापदों में संथाली के कई शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। आधुनिक काल में संथाली में उन्नीसवीं सदी के आखिर में माझी रामदास टुडू ने 'खेरवाल बोंसा धरम पुथि' नामक ग्रंथ की रचना कर संथाली के महत्त्व को प्रतिपादित किया। साधु रामचंद मुर्मू (1897-1954) ने संथालीभाषी समाज में अपनी भाषा व संस्कृति के गौरव का गान किया। साधु रामचंद मुर्मू के बाद पंडित रघुनाथ मुर्मू (1905-1982) ने बंगाल में संथाली साहित्य को आगे बढ़ाया। उन्होंने संथाली भाषा की लिपि 'ओलचिकी' का पुनरुद्धार किया। पंडित रघुनाथ मुर्मू ने लिखा है—"आमाग ओड़ाग लागिद आमाग दुवार लागिद जाँहाय दो बाय नेला आमगेम नेला।" यानी अपने घर, द्वार और परिवार को दूसरा व्यक्ति नहीं देखता। उसकी देखभाल खुद करनी होती है। इसी तरह अपनी मातृभाषा के विकास के लिए दूसरा कोई नहीं आएगा। पंडित रघुनाथ मुर्मू ने बच्चों के लिए 'अलचेमेद', 'अल उपरुम', 'पारसीपहा', 'दाड़ेगेधन', 'एलखा', 'पारसीइतून', 'रनड़' और 'बांखेड़' जैसी रचनाएँ लिखीं, तो 'सिधू कानू' और 'खेरवालबीर' जैसे नाटक भी। पंडित रघुनाथ मुर्मू की भाँति मंगलचंद्र, गोराचंद टुडू, नारायण सोरेन, ठाकुर प्रसाद मुर्मू ने भी संथाली

साहित्य को बहुविध समृद्ध किया। उसी कड़ी में बंगाल के पुरुलिया जिले से आनेवाले शारदा प्रसाद किस्कू जुड़ते हैं। उनकी किताब 'भुरका इपिल' बहुत लोकप्रिय रही है। गोमस्ता प्रसाद सोरेन भी पुरुलिया से आते हैं। उनकी पहली किताब 'अक्षर थाउ' 1965 में प्रकाशित हुई। 'कहीस अरंग', 'नोनकन गेयाबन होर', 'नोनकन गेताबन समाज' उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। रविलाल माँझी कविता, कहानी, नाटक और निबंध लिखते हैं।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में जनजातियों के जीवन की विकल कर देनेवाली अभिव्यक्ति की, उनमें कुछ प्रमुख नाम हैं—मार्शल हेंब्रम, ताड़कचंद्र सरकार, राईचरण विश्वास, साधु रामचंद्र मुर्मू, महानंद हाल्दार, रणजित कुमार सिकदर, पशुपतिनाथ महतो। बंगाल के संथाली साहित्यकारों में विराम हांसदा, चैतन्य हेंब्रम, कुमारस माझी, रामदास टुडू, पाउल जुझौर सोरेन, गोराचंद टुडू, नारायण सोरेन, फिलेमन मुर्मू, अमृत हांसदा, अनादिचरण हेंब्रम, पृथ्वी हांसदा, कलेंद्रनाथ मांडी, मलिंद हांसदा, गौरचंद मुर्मू, रूपचंद हांसदा, निरुपमा मुर्मू और खेलवाल सोरेन प्रमुख हैं। डॉ. पी.सी. हेंब्रम, भोजराज हेंब्रम, धीरेंद्रनाथ बास्के, हरप्रसाद मुर्मू, जदुनाथ टुडू, वैद्यनाथ मंडी, कनाईलाल टुडू, सीरन मुर्मू, रबन बास्के, आदित्य कुमार मंडी, श्याम बेसरा, कजली सोरेन, दुगाई टुडू, विशाखा माझी, रामेश्वर मुर्मू, श्याम सी टुडू, लालचंद सोरेन, श्यामसुंदर बेसरा, जमादार किस्कू, रविलाल टुडू, मंगल माझी, जदूलाल बेसरा, सनत हांसदा, रूपचंद हांसदा, गणेशठाकुर हांसदा, श्यामचरण हेंब्रम, परिमल हांसदा, अनपा मार्डी, सुचित्रा हांसदा, मायनो टुडू, रानी मुर्मू, गुहिराम की संथाली रचनाएँ अपनी संवेदना और मार्मिकता में बेजोड़ हैं। लक्ष्मी मांडी पश्चिम बंगाल की उल्लेखनीय आदिवासी महिला लेखिका हैं।

निष्कर्ष

हिंदी और बाँग्ला कथा साहित्य परंपरा का विकास एक ही तरह हुआ। दोनों भाषाओं ने आदिवासियों के कठिन जीवन संग्राम को, जल, जंगल और जमीन की समस्या को, आदिवासियों के शोषण, दोहन और उत्पीड़न को एक जैसे मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया। चूँकि दोनों भाषाओं के कथा साहित्य में आदिवासी विमर्श की एक जैसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान रही हैं, अतः दोनों भाषाओं में सहकार संबंध रहा है। बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में कहें तो सभी भारतीय भाषाओं में एक जैसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान रही हैं। भारतीय भाषाओं के साहित्य में मूलभूत एकता है। कदाचित् इसीलिए राधाकृष्णन ने भारतीय साहित्य की एक परिभाषा दी थी, जो साहित्य अकादमी का आदर्श वाक्य है। उन्होंने कहा था, "भारतीय साहित्य एक है, जो अनेक भाषाओं में लिखा जाता है।" हिंदी और बाँग्ला दोनों के आदिवासी कथा साहित्य में उत्तर-औपनिवेशिक भारत में अपनी भाषाई, सांस्कृतिक और अस्तित्वगत पहचान को संरक्षित करने की अकुलाहट देखी जा सकती है। दोनों भाषाओं के आदिवासी कथा साहित्य के सृजन के मूल में जल (पानी), जंगल (जंगल) और जीवन (आदिवासी जीवन) हैं। दोनों भाषाओं का आदिवासी कथा साहित्य आदिवासियों के प्रति तथाकथित सभ्य समाज को संवेदनशील बनाने की पहल करता है और सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित उत्पीड़न और असमानताओं के बारे में जागरूकता बढ़ाता है।

संदर्भ

टेटे, वंदना. एवं पंकज, अश्विनी. कुमार. (सं.). (2020). *हिंदी की आरंभिक आदिवासी कहानियाँ*. राँची : प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन. पृष्ठ-06.

टेटे, वंदना. एवं पंकज, अश्विनी. कुमार. (सं.). (2020). *हिंदी की आरंभिक आदिवासी कहानियाँ*. राँची : प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन. पृष्ठ-12.

टेटे, वंदना. एवं पंकज, अश्विनी. कुमार. (सं.). (2020). *हिंदी की आरंभिक आदिवासी कहानियाँ*. राँची : प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन. पृष्ठ-13.

टेटे, वंदना. एवं पंकज, अश्विनी. कुमार. (सं.). (2020). *हिंदी की आरंभिक आदिवासी कहानियाँ*. राँची : प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन. पृष्ठ-13.

टेटे, वंदना. (2021). *आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन*. राँची : नोशन प्रेस. पृष्ठ-55.

टेटे, वंदना. (सं.). (2023). *चुनिंदा संताली कहानियाँ*. राँची : प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन. पृष्ठ-11.

तेजिंदर. (2016). *काला पादरी*. इलाहाबाद : साहित्य भंडार. पृष्ठ- 21

देवी, महाश्वेता. (1997). *टेरोडैक्टिल*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृष्ठ-24.

देवी, महाश्वेता. (1981). *चोट्टि मुंडा और उसका तीर*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृष्ठ-274.

निहाँ, हुस्न. तबस्सुम. (सं.). (2021). *आदिवासी विमर्श के विभिन्न आयाम*. दिल्ली : अकादमिक बुक्स इंडिया. पृष्ठ-199.

निहाँ, हुस्न. तबस्सुम. (सं.). (2021). *आदिवासी विमर्श के विभिन्न आयाम*. दिल्ली : अकादमिक बुक्स इंडिया. पृष्ठ-199.

मीणा, हरिराम. (2008). *धूणी तपे तीर*. दिल्ली : साहित्य उपक्रम. पृष्ठ-भूमिका.

मोरवाल, भगवानदास. (2016). *रेत*. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ-51.

रणेंद्र. (2017, चौथा संस्करण). *ग्लोबल गाँव के देवता*. दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ-100.

सिंह, राकेशकुमार. (2024 तृतीय संस्करण). *पठार पर कोहरा*. दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ-01.

सिंह, राकेशकुमार. (2024 तृतीय संस्करण). *पठार पर कोहरा*. दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ-137.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 11-17, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति की सांस्कृतिक धरोहर और जनसंचार नीति का अध्ययन

डॉ. अर्चना कटोच[1], पवन कुमार[2], यासिर अरफात[3] एवं अजयंत कटोच[4]

सारांश

गद्दी समुदाय हिमाचल प्रदेश का एक प्रमुख जनजातीय समूह है, जिसकी सांस्कृतिक परंपराएँ, वेशभूषा, लोकनृत्य, मेले और त्योहार इसकी अनूठी पहचान हैं। यह समुदाय न केवल अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सँजोए हुए है, बल्कि अपने पारंपरिक तत्त्वों के माध्यम से जनसंचार नीति के विभिन्न आयामों को भी दर्शाता है। गद्दी समुदाय के पारंपरिक नृत्य जैसे 'डांगी', 'चुराही' और 'नचणौध' इस समुदाय के लोगों में सामाजिक संवाद और एकजुटता का माध्यम हैं। इसी तरह, वेशभूषा और आभूषण उनके सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों को प्रकट करते हैं। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य गद्दी समुदाय के नृत्य, वेशभूषा, मेले और त्योहारों में निहित जनसंचार नीति का विवेचन करना है। अध्ययन प्राथमिक और द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। प्राथमिक आँकड़े धर्मशाला में गद्दी समुदाय के प्रबुद्ध व्यक्तियों से साक्षात्कार के माध्यम से एकत्र किए गए हैं, जबकि द्वितीयक आँकड़े पुस्तकों, शोध आलेखों और अन्य स्रोतों से संकलित किए गए। यह आलेख दर्शाता है कि कैसे गद्दी समुदाय के सांस्कृतिक तत्त्व न केवल उनकी परंपराओं को जीवंत बनाए रखते हैं, बल्कि जनसंचार के माध्यम से सामुदायिक एकता, संवाद और सांस्कृतिक संरक्षण को भी प्रोत्साहित करते हैं। शोध के निष्कर्ष से स्पष्ट है कि आधुनिकता के बावजूद गद्दी समुदाय ने अपनी सांस्कृतिक विरासत को सहेज कर रखा है। अध्ययन का उद्देश्य इस समृद्ध संस्कृति को समझना और संरक्षित करने के प्रयासों को प्रोत्साहित करना है।

संकेत शब्द : गद्दी, भरमौर, चंबा, काँगड़ा, लोकनृत्य, वेशभूषा, मेले, त्योहार, जनसंचार नीति

प्रस्तावना

भारत का सांस्कृतिक परिदृश्य विविधताओं से भरा हुआ है। इसमें हर क्षेत्र और समुदाय की अपनी अलग पहचान है, जो उसकी सांस्कृतिक धरोहर और परंपराओं से परिलक्षित होती है। हिमाचल प्रदेश का गद्दी समुदाय एक ऐसा ही जनजातीय समूह है, जिसकी सांस्कृतिक परंपराएँ अनूठी हैं। यह समुदाय विशेष रूप से अपने लोकनृत्य, वेशभूषा, मेले और त्योहारों के लिए प्रसिद्ध है। इन सांस्कृतिक तत्त्वों में न केवल उनकी पहचान झलकती है, बल्कि यह उनके सामाजिक और सांस्कृतिक संवाद का माध्यम भी है। शालिक ठाकुर ने अपने समाचार आलेख में गद्दी शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'गब्दिका' से माना है, जिसका जिक्र पाणिनि के साहित्य में एक सिंधवादी जनपद के रूप में है। 7वीं ई. में साहिल वर्मन के शासन के दौरान इस जनपद को 'गदबिका-अहेरन' कहा जाता था। धीरे-धीरे यह शब्द गद्देरन के रूप में परिवर्तित होता चला गया होगा (ठाकुर, 2024)।

गद्दी समुदाय का निवास स्थान मुख्यतः हिमाचल प्रदेश के चंबा और काँगड़ा जिलों में है। यह समुदाय मूलतः अर्ध-घुमंतू और पशुपालक है। भेड़-बकरी पालन इनके जीवन का मुख्य आधार है। कठिन भौगोलिक परिस्थितियों और परिवहन की कमी के बावजूद, गद्दी समुदाय ने अपनी सांस्कृतिक परंपराओं को संरक्षित रखा है। गद्दी समुदाय का जीवन उनके लोकनृत्यों, वेशभूषा और त्योहारों में परिलक्षित होता है। ये सांस्कृतिक पहलू केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इनके माध्यम से यह समुदाय अपनी भावनाओं, विश्वासों और परंपराओं को व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए, 'चुराही' नृत्य में सामूहिकता और सामुदायिक एकता का प्रदर्शन होता है। इसी प्रकार, उनके त्योहार जैसे 'सैर' और 'बिसू' उनके कृषि और पर्यावरण के प्रति गहरे संबंध को दर्शाते हैं। गद्दी समुदाय की वेशभूषा उनकी सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है। पहनावे में 'लुआंचडी' एवं 'डोरा' और आभूषण जैसे 'नथ' और 'चंद्रहार' उनकी परंपराओं और धार्मिक विश्वासों को दर्शाते हैं। यह वेशभूषा न केवल उनकी सामाजिक स्थिति का प्रतिबिंब है, बल्कि यह उनके पर्यावरण और जीवनशैली के अनुकूल भी है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य गद्दी समुदाय के इन सांस्कृतिक तत्त्वों में निहित जनसंचार नीति को समझना और विश्लेषण करना है। यह अध्ययन दिखाता है कि कैसे गद्दी समुदाय ने अपनी परंपराओं को आधुनिकता के साथ संतुलित रखा है।

साहित्य समीक्षा

गद्दी समुदाय और उनकी सांस्कृतिक परंपराओं पर विभिन्न शोध एवं साहित्यिक स्रोत उपलब्ध हैं, जो उनके सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन को समझने में सहायक हैं। सिंह (2021) ने अपने शोध आलेख 'हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति के त्योहार' में गद्दी समुदाय के विभिन्न त्योहारों (ढोलरु, बसो, पतरोडू, मिंजर) आदि का विवरण एवं उनके महत्त्व को दर्शाया है। वहीं अपने एक अन्य आलेख 'गद्दी जनजाति के लोकनाट्य' में सिंह (2024) ने गद्दी समुदाय की लोकनाट्य परंपरा का विवरण दर्ज किया है। ठाकुर (2024) ने अपने समाचार आलेख 'प्राकृतिक सुंदरता और संस्कृति के लिए विदेशों तक मशहूर है हिमाचल की गद्दी जनजाति' में गद्दी शब्द की उत्पति का जिक्र किया है। शर्मा (2015) ने अपनी पुस्तक 'रिचुअल्स, परफॉर्मेंस एंड ट्रांसफॉर्मेशन : द गद्दी शेफर्ड्स ऑफ हिमाचल हिमालयाज' में गद्दी समुदाय की लोकसंचार परंपराओं का विश्लेषण किया है। इसमें विशेष रूप से उनके लोकनृत्य और

[1]सह-आचार्य, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश, ईमेल : archnakatoch3@gmail.com
[2]शोधार्थी, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश, ईमेल : pawanvashishtha1@gmail.com
[3]शोधार्थी, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश, ईमेल : arfatyasir5@gmail.com
[4]शोधार्थी, समाजशास्त्र एवं मानव विज्ञान विभाग, अशोका विश्वविद्यालय, सोनीपत, हरियाणा, ईमेल : ajayant.katoch_phd23@ashoka.edu.in

गीतों को सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बताया गया है। श्रीधर (2016) ने 'अ जर्नी विद गद्दी पर्सनैलिटीज' नामक फीचर आलेख में गद्दी समुदाय के खान-पान, दैनिक जीवन और सामाजिक विश्वासों को उजागर किया है। इसमें वन अधिनियम 1865 के उनके जीवन पर प्रभाव का भी वर्णन किया गया है। वर्मा (1996) ने गद्दी समुदाय की पारंपरिक वेशभूषा और आभूषणों के सांस्कृतिक महत्त्व का वर्णन किया है। इसमें 'डोरा' और 'लुआंचडी' के प्रतीकात्मक महत्त्व को दर्शाया गया है। 'डांस फॉर्म्स ऑफ हिमाचल प्रदेश' (2014) नामक पुस्तक में गद्दी समुदाय के विभिन्न नृत्यों का विवरण है, जिसमें 'चुराही' और 'डांगी' जैसे नृत्यों का उल्लेख किया गया है।

शोध उद्देश्य

1. गद्दी समुदाय की ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन।
2. गद्दी समुदाय के लोकसहित्य, नृत्य, वेशभूषा, मेले और त्योहारों में निहित जनसंचार नीति का विश्लेषण।

शोध प्रविधि

इस शोध में गुणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। यह अध्ययन प्राथमिक और द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। प्राथमिक आँकड़े के रूप में हिमाचल प्रदेश के गद्दी समुदाय से संबंधित पाँच विशेषज्ञों का साक्षात्कार लिया गया। ये विशेषज्ञ गद्दी लोक संस्कृति को बढ़ावा देने, इस पर शोध कार्य करने या इसे संरक्षित रखने में संलग्न हैं। साक्षात्कार के माध्यम से गद्दी समुदाय के नृत्य, वेशभूषा, मेले और त्योहारों में निहित जनसंचार नीति को समझने और उनकी सांस्कृतिक धरोहर का दस्तावेजीकरण करने का प्रयास किया गया है। द्वितीयक आँकड़े पुस्तकों, शोध आलेखों, पत्र-पत्रिकाओं और ऑनलाइन संसाधनों से प्राप्त किए गए। इन स्रोतों के माध्यम से गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक प्रथाओं, ऐतिहासिक संदर्भों और वर्तमान सामाजिक-आर्थिक संदर्भों से संबंधित तथ्यों का अध्ययन किया गया। संग्रहीत आँकड़ों का विषय-वस्तु और वर्णनात्मक विश्लेषण किया गया, ताकि गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक परंपराओं में निहित जनसंचार नीति को गहराई से समझा जा सके। शोध में गद्दी समुदाय के लोकनृत्य, वेशभूषा, मेले और त्योहारों में निहित जनसंचार नीति का गहराई से अध्ययन किया गया है।

गद्दी समुदाय के लोकनृत्य

गद्दी समुदाय के लोकनृत्य उनके सामाजिक और सांस्कृतिक संवाद का प्रतीक हैं। ये नृत्य उनकी सामूहिकता, सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक संदेशों के आदान-प्रदान का साधन हैं (शर्मा, 2015; वर्मा, 1996)।

लोकनृत्य का सांस्कृतिक महत्त्व : गद्दी समुदाय के लोकनृत्य जैसे 'डांगी,' 'चुराही' और 'नचणौध' उनके सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं।

1. **डांगी नृत्य :** यह गद्दी महिलाओं का नृत्य है, जो गोल घेरे में बैठकर गाए जाने वाले गीतों के साथ किया जाता है। इसमें महिलाएँ पारंपरिक गीत गाती हैं, जो उनके जीवन के विभिन्न अनुभवों को व्यक्त करते हैं।
2. **चुराही नृत्य :** यह सामूहिक नृत्य पुरुषों और महिलाओं द्वारा एक साथ किया जाता है। यह नृत्य सामूहिकता और समुदाय के भीतर सामंजस्य को दर्शाता है (डांस फॉर्म्स ऑफ हिमाचल प्रदेश, 2014)।

गद्दी लोकगीतकार सुनील राणा के अनुसार, "गद्दी लोकनृत्य न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि ये जनसंचार का एक प्रमुख माध्यम भी हैं। लोकनृत्यों के माध्यम से सामाजिक और धार्मिक संदेशों का प्रसार होता है। ये नृत्य सामाजिक जागरूकता बढ़ाने और समुदाय को एकजुट करने में सहायक होते हैं" (कुमार, 2024)। लोकनृत्य के माध्यम से सामाजिक मुद्दों और सांस्कृतिक अनुभवों को साझा किया जाता है। नृत्यों के दौरान गाए जाने वाले गीतों के माध्यम से पारंपरिक ज्ञान और सामूहिक अनुभवों का प्रसार होता है। ये नृत्य पीढ़ियों के बीच ज्ञान के हस्तांतरण का भी माध्यम बनते हैं (भावना, 2024)। लोकनृत्य एक दृश्य और श्रव्य माध्यम के रूप में प्रभावी हैं। ये सामूहिकता, सामाजिक जुड़ाव और सांस्कृतिक संरक्षण को बढ़ावा देते हैं। इन नृत्यों का उपयोग सामाजिक संदेशों और जागरूकता अभियानों में किया जा सकता है।

लोकनाटक तथा लोककथाएँ

लोकसाहित्य को आमजन का प्रमुख साहित्य माना जाता है। कोई भी समुदाय अपने लोक साहित्य से बड़े करीबी से जुड़ा होता है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होता रहता है। गद्दी समुदाय अपने लोक साहित्य के लिए भी जाना जाता है।

1. **स्वांग :** गद्दी समुदाय के प्रमुख लोक नाटक के रूप में स्वांग प्रमुख स्थान रखता है। सिंह (2024) के अनुसार यह लोक नाटक विधि हिमाचल के छतराड़ी क्षेत्र में प्रसिद्ध है। जब भाद्रपद की राधा अष्टमी को मणिमहेश की यात्रा समाप्त होती है, तो उस दिन छतराड़ी में स्वांग निकाले जाने की प्रथा है। इस लोक नाटक में मुखौटा धारण किए हुए तीन पुरुष होते हैं। एक स्त्री भी मुखौटाधारी होती है। एक तरफ जहाँ पुरुषों को असुर की संज्ञा दी जाती है, वहीं स्त्री देवी का प्रतीक मानी जाती है। स्त्री और पुरुष दोनों में लड़ाई होती है। अंत में स्त्री जीतती है। यह लोग नाटक विधा जनसंचार का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है, जिससे समाज में बुराई पर अच्छाई की जीत का संदेश संप्रेषित किया जाता है।
2. **हरणातर :** यह गद्दी समुदाय की अन्य महत्त्वपूर्ण लोक संचार विधा है, जिसमें चंबा के भरमौर में होली के आसपास मंचन किया जाता है। इस लोक नाटक के दौरान नृत्य, गीत आदि कई तरह से प्रस्तुति दी जाती है। इसमें हुए लोग जानवर के रूप में सजे होते हैं, जहाँ जानवरों की तरह कदमताल किया जाता है। यह लोक साहित्य मनोरंजन के साथ-साथ सामुदायिक संचार की भावना को भी प्रस्तुत करता है (सिंह, 2024)।

गद्दी समुदाय के लोकसाहित्य में लोक नाटक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लोकनाटक तथा लोककथाएँ गद्दी समाज में किसी भी विशेष घटना, विश्वास या आस्था को समझाने का एक लोक माध्यम हैं। दंतकथाओं तथा लोकनाटकों के प्रदर्शन के माध्यम से आम गद्दी जन के मध्य इतिहास, नैतिक शिक्षाएँ तथा पारंपरिक ज्ञान के संप्रेषण का कार्य किया जाता है। गद्दी समाज के लोग इन कथाओं को रात के समय परिवार तथा अपने समुदाय के बीच सुनते हैं, जो उनके पारस्परिक संबंधों को मजबूत करने का कार्य करती हैं और उन्हें सांस्कृतिक दृष्टिकोण से

जोड़ती भी हैं।

गद्दी समुदाय की वेशभूषा और जनसंचार नीति

गद्दी समुदाय की वेशभूषा न केवल उनके सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों को दर्शाती है, बल्कि यह उनकी पहचान और जनसंचार का भी एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। गद्दी समुदाय को आभूषण बहुत प्रिय हैं। यह समुदाय प्रत्येक अवसर पर चाँदी तथा सोने से बने आभूषणों को धारण करता है। खासकर चाँदी से बने आभूषण समुदाय को बहुत प्रिय हैं। गद्दी महिलाएँ त्योहार तथा विभिन्न अवसरों पर आभूषण जरूर पहनती हैं। गद्दी महिलाएँ विभिन्न अवसरों में मेहँदी भी लगाती हैं। स्त्रियों के अतिरिक्त गद्दी पुरुष चोला, कुर्ता तथा साफा के साथ-साथ चाँदी का बना चंद्रहार भी कुछ अवसरों पर पहनते हैं। वैसे तो आधुनिकता ने गद्दी समुदाय को प्रभावित किया है, परंतु विभिन्न अवसरों तथा त्योहारों पर गद्दी समुदाय अपनी पारंपरिक वेशभूषा में ही रहना पसंद करता है।

गद्दी समुदाय की पारंपरिक वेशभूषा का विश्लेषण : गद्दी समुदाय की पारंपरिक वेशभूषा, जैसे 'लुआंचडी' और 'चोला,' उनकी सांस्कृतिक पहचान का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है (वर्मा, 1996)।

1. **लुआंचडी :** 'लुआंचडी' महिलाओं की पारंपरिक पोशाक है, जिसे चाँदी के आभूषण जैसे 'नथ,' 'चंद्रहार,' और 'चिड़ी' के साथ पहना जाता है। यह वैश्विक स्तर पर भी पसंद किया जाता है।
2. **चोला और डोरा :** पुरुषों का चोला तथा ऊनी वस्त्र जोकि कमर पर बाँधा जाने वाला डोरा न केवल व्यावहारिक उपयोग के लिए है, बल्कि धार्मिक मान्यताओं का भी प्रतीक भी है।

गद्दी समुदाय के आभूषण

गद्दी महिलाएँ आभूषण की शौकीन होती है। गद्दी महिलाओं में सोने के बजाय चाँदी आभूषण अधिक प्रचलित होते हैं। चाँदी के आभूषण वजनदार और बेहतर डिजाइन के होते हैं, जिन्हें गद्दी समुदाय में बहुत पवित्र माना जाता है। नाक के लिए चाँदी के बजाय सोने का आभूषण बेहतर माना जाता है (वर्मा, 1996)।

चित्र 1 बंगड़िया/ कंगन

कुछ सैलडिया कुछ पिलडिया हो लेई बंजारा आया......
लेई दे ढोला बंगड़िया...

उक्त लोकगीत में लाड़ी (पत्नी) अपने लाड़े (पति) से बंगड़िया (कंगन) लेने के लिए रिझाती है। संपूर्ण लोकगीत में लाड़ी और लाड़े के मध्य आभूषण पर तकरार होती है। गद्दी समुदाय के लोग अपने आभूषणों के लिए स्थानीय बाजार पर निर्भर होते हैं। फलत: वे स्थानीय सुनारों के अच्छे व्यवसाय में योगदान देते हैं। गद्दी महिलाएँ अक्सर सुनार से अपने आभूषण प्राप्त करते समय लोकगीत गाती हैं, जैसे टीएम म्यूजिक यह गीत–

"टिक टिक टोके घड़ी देन्या सुन्यारा....
हो टिक टिक टोके घड़ी देन्या सुन्यारा..
टोके रा रुआज बड़ा आया हो।
धूड वो धूड़ बजदा के आया अम्मा मेरिए माए....
छैई वो छप बजदा के आया अम्मा मेरिये माए....."

'चक' और 'चिड़ी' बालों के लिए चाँदी के आभूषण हैं। चाँदी का बना चंद्रहार गद्दी महिलाओं के बीच बहुत लोकप्रिय है। नाक के आभूषणों का गद्दी समुदाय की महिलाओं में सामाजिक और धार्मिक महत्त्व है (इन्हें विवाहित महिलाओं के सुहाग की निशानी के तौर पर माना जाता है)। विधवा गद्दन नाक में कोई आभूषण नहीं धारण करती हैं। 'लौंग' (नाक में बड़ी तीली), 'कोका' (नाक में पतली-सी तीली), 'तीली' तथा 'बालू' (नथ का एक रूप) नाक के आभूषण हैं। बालू को कुछ समारोहों में पहना जाता है।

गद्दी महिलाएँ कान के आभूषणों में प्रमुख रूप से 'बाली', 'बुंदे', 'झुमके', 'काँटे', 'लटकनी', 'तुंगनी' और 'कनफुल' आदि पहनती हैं। हाथों में चाँदी के 'कंगन', 'गोजरी', 'टोके', 'कांगनु', 'स्नंगु' और 'बंगन' आदि प्रसिद्ध आभूषण हैं। उँगलियों में अँगूठी भी पहनी जाती है, जिसे स्थानीय लोगों द्वारा 'मुंदरी' के नाम से जाना जाता है (सिंह, 2024)। गद्दी महिलाएँ बालों में कंघी कर उन्हें बीच में बाँटती हैं (कई पट्टियों में बाँध दिया जाता है) और लाल/काले रंग के सूती/रेशमी परांदा के साथ एक लंबी चोटी भी बाँधती हैं। विवाहित महिलाएँ अपनी माँग में सिंदूर, माथे पर लाल बिंदी तथा बालों को फूलों से सजाती हैं। किसी उत्सव आदि में मेहँदी का प्रयोग बहुत ही प्रचलित है (वर्मा, 1996)।

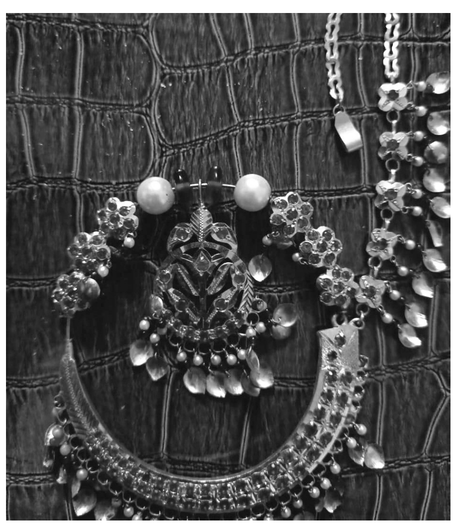

चित्र-2 नथ : नथ नाक में पहना जाता है जो सोने की होती है तथा आकार में भिन्न-भिन्न हो सकती है

चंद्रहार : यह चाँदी से बना एक बड़े आकार का हार है, जिसके ऊपर मीना (कढ़ाई) का काम किया गया होता है। इसे विभिन्न अवसरों जैसे विवाह, मेलों आदि में पहना जाता है। इसे चोला-डोरा के साथ पहना जाता है। इसे सलवार और कमीज के साथ भी पहना जा सकता है। गद्दी समुदाय में विवाह के अवसर पर दूल्हा भी चंद्रहार पहनता है।

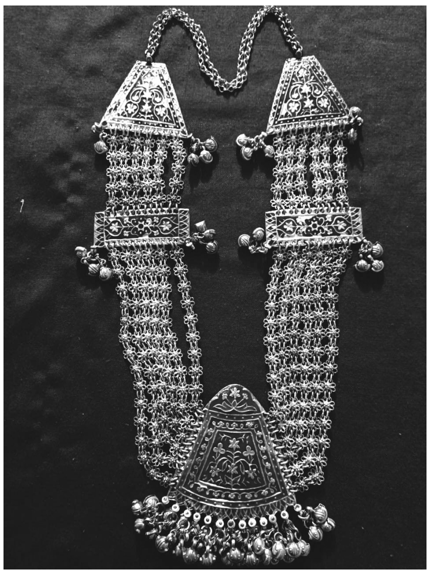

चित्र 3 चंद्रहार : चाँदी से बना एक बड़े आकार का हार

चक्क या चंक : इसे सिर के ऊपर/पीछे के हिस्से में लगाया जाता है। यह आकार में शंक्वाकार होता है। इसमें चाँदी के तारों से जुड़ी एक समान आकार की दो छोटी गोल संरचनाएँ हैं, जिन्हें 'चकड़ी' कहा जाता है। इन्हें सिर के ऊपर चढ़ाकर मुख्य भाग के दोनों ओर लगाया जाता है। इसे विवाहित महिला की निशानी भी माना जाता है।

चित्र-4 चक्क या चंक : चाँदी का बना यह आभूषण सिर के ऊपरी हिस्से में प्रायः बाल के जूड़े वाली जगह पहना जाता है

चिड़ी : चिड़ी को माथे पर पहना जाता है और तार की मदद से बाँधा जाता है। यह माँग टीका के समान है और एक विवाहित महिला का महत्त्वपूर्ण आभूषण है।

चित्र 5 चिड़ी : माथे पर पहनें जाने वाला चाँदी का आभूषण

गद्दी विषय पर शोध कार्य करने वाले भरत सिंह के अनुसार "गद्दी वेशभूषा केवल सांस्कृतिक धरोहर नहीं है, बल्कि यह एक संवाद का माध्यम भी है। पारंपरिक पोशाकें सामूहिकता और सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक हैं। वेशभूषा की डिजाइन और रंग ऐतिहासिक और धार्मिक संदेशों को दर्शाते हैं" (भरत, 2024)।

गद्दी वेशभूषा सामूहिकता और सांस्कृतिक जुड़ाव का प्रतीक है। इसे पहनने से समुदाय के भीतर एक पहचान और आपसी संबंध का अनुभव होता है। यह पोशाक उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं, जैसे धार्मिक विश्वास, सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक मूल्य को प्रकट करती है। वेशभूषा और आभूषण गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण और प्रचार करने का साधन हैं। इन्हें सांस्कृतिक कार्यक्रमों और जागरूकता अभियानों में उपयोग किया जा सकता है।

गद्दी समुदाय के मेले और त्योहार : संवाद और सामूहिकता का साधन

गद्दी समुदाय में मेले तथा त्योहार जन संवाद का एक माध्यम हैं। धार्मिक तथा सांस्कृतिक अवसर के साथ ये सामूहिक संवाद के माध्यम के रूप में भी कार्य करते हैं। गद्दी समुदाय के प्रमुख त्योहारों में आम जन एकजुट होकर पारंपरिक रीति-रिवाजों तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में शामिल होते हैं। इन आयोजनों में गीत-संगीत, नृत्य तथा लोकनाटक आदि का आयोजन एवं प्रदर्शन होता है, जो संवाद और सहभागिता को प्रोत्साहित करने के साथ सूचना संप्रेषण का भी कार्य करते हैं। पर्व एवं मेले न केवल गद्दी समाज के सामाजिक संबंधों को मजबूत करते हैं, बल्कि उनकी सांस्कृतिक धरोहर को भी सहेजने का कार्य करते हैं। गद्दी समुदाय के मेले और त्योहार उनके सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा हैं। ये आयोजन न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि सामूहिकता और सामाजिक संवाद को बढ़ावा देने के माध्यम भी हैं (शर्मा, 2015; कुमार, 2019)।

प्रमुख त्योहार और उनका महत्त्व

1. **शिवरात्रि :** पूरे भारतवर्ष की तरह शिवरात्रि गद्दी समुदाय का प्रमुख त्योहार है। गद्दी समुदाय भगवान् शिव का उपासक माना जाता है। ऐसे

में यह त्योहार उनके बहुत करीब माना जाता है। यह फाल्गुन (फरवरी-मार्च) में पड़ता है। इस दिन गद्दी लोग भगवान् शिव की उपासना के साथ व्रत भी रखते हैं।

2. **नुआला :** आराध्य शिव को समर्पित गद्दी समुदाय का यह धार्मिक आयोजन किसी विशेष मान्यता के पूर्ण होने या किसी भी उत्सव या खुशी के अवसर पर आयोजित किया जाता है। इसका आयोजन वर्षों से किया जा रहा है। नुआला को एक अनोखी लोक संचार की परंपरा माना जाता है। गद्दी समुदाय के मध्य यह लोकसांस्कृतिक उत्सव के प्रतीक रूप में भी मनाया जाता है। गद्दी समुदाय में विवाह के अवसर पर भी नुआला का आयोजन किया जाता है। विवाह के समय 'लाडे' (दूल्हे) को आराध्य शिव का रूप दिया जाता है। इसे स्थानीय भाषा में 'जोगनू' की संज्ञा दी जाती है। यह उत्सव गद्दी समुदाय में सूचना संप्रेषण, समुदायिक संचार एवं जनसंचार का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम माना जाता है (टर्नर, 1982)।
3. **बिसू (बैसाखी) :** नई फसल के आगमन का जश्न, जिसमें पारंपरिक भोजन और सामूहिक नृत्य शामिल हैं।
4. **सैर :** बरसात की समाप्ति का प्रतीक। इस दिन पारंपरिक व्यंजन और सामूहिक उत्सव आयोजित किए जाते हैं। इस दिन लोग एक-दूसरे से मिलने जाते हैं। विवाहित बेटियाँ इस दिन अपने मायके परिवार से मिलने आती हैं। यह सामुदायिक संचार का अहम पर्व है।
5. **पतरोड़ु :** यह त्योहार पारंपरिक व्यंजन और सांस्कृतिक प्रदर्शनों का आयोजन करता है।
6. **होली :** मार्च में मनाया जाने वाला यह त्योहार संपूर्ण भारत की तरह गद्दी समुदाय में भी प्रसिद्ध है। इस त्योहार के दिन गाँव में आग जलाई जाती है तथा 'हरणात्र' नामक लोक नाटक का मंचन किया जाता है। ठंड होने के बावजूद वर्तमान समय में गद्दी समुदाय होली भी खेलने लगा है।
7. **गुगैहळ :** गद्दी समुदाय में कृष्ण जन्माष्टमी के आठ दिन पहले गुगैहळ नामक त्योहार मनाया जाता है। गद्दी समुदाय विभिन्न लोकगीतों के माध्यम से इसे मनाते हैं।
8. **दीपावली :** कार्तिक महीने की अमावस्या को मनाया जाने वाला यह राष्ट्रीय पर्व गद्दी समुदाय भी मनाता है।
9. **मिंजर :** वर्षा ऋतु में मनाया जाने वाला यह त्योहार चंबा के आसपास मनाया जाता है। इसे विजय के रूप में मनाया जाता है। इस अवसर पर कई पकवान बनाए जाते हैं। मक्के के पुष्प को थाली में सजाकर नदी में जल देवता की पूजा की जाती है। प्रकृति को समर्पित यह त्योहार सामुदायिक संचार को भी बढ़ावा देने का कार्य करता है।

स्थानीय गद्दी युवती भावना के अनुसार, "मेले और त्योहार सामूहिक संवाद और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने के साधन हैं। ये आयोजन न केवल सामुदायिक एकता को बढ़ावा देते हैं, बल्कि सांस्कृतिक संदेशों के प्रसार में भी सहायक हैं" (भावना, 2024)। ये आयोजन सांस्कृतिक धरोहर को सजीव रखने और सामुदायिक जुड़ाव को मजबूत करने का कार्य करते हैं। कहानी, गीत और नृत्य के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक संदेशों का प्रसार होता है। मेले और त्योहार सामूहिक संवाद और सांस्कृतिक संरक्षण के साधन हैं। इन्हें जनसंचार नीति में शामिल कर जागरूकता अभियानों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से बढ़ावा दिया जा सकता है।

आधुनिक जनसंचार उपकरणों का प्रभाव

गद्दी समुदाय पर आधुनिक जनसंचार उपकरणों का प्रभाव मिश्रित रूप से दिखाई पड़ता है। जहाँ एक ओर इन उपकरणों ने शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आर्थिक दृष्टिकोण से गद्दी समुदाय को लाभान्वित किया है, वहीं दूसरी ओर इस समुदाय की संस्कृति तथा पारंपरिक रीति-रिवाजों पर इनकी वजह से सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभाव भी पड़े हैं। स्थानीय गद्दी निवासी कुसुम के अनुसार, "गद्दी समुदाय की पारंपरिक सांस्कृतिक प्रथाओं पर आधुनिक जनसंचार उपकरणों का प्रभाव स्पष्ट है। डिजिटल माध्यम पारंपरिक सांस्कृतिक तत्त्वों को संरक्षित करने और उन्हें व्यापक समुदाय तक पहुँचाने का एक साधन बन रहे हैं।"

डिजिटल प्लेटफॉर्म और सांस्कृतिक संरक्षण : सोशल मीडिया और डिजिटल उपकरण गद्दी संस्कृति को वैश्विक मंच पर लाने का कार्य कर रहे हैं।

1. **सांस्कृतिक पुनर्जीवन :** डिजिटल माध्यम पारंपरिक लोककथाओं और गीतों को पुनर्जीवित करने में मदद कर रहे हैं।
2. **वैश्विक पहुँच :** डिजिटल प्लेटफॉर्म सांस्कृतिक धरोहर को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाने का अवसर प्रदान कर रहे हैं।

स्थानीय गद्दी युवती कुसुम का मानना है, "डिजिटल प्लेटफॉर्म गद्दी संस्कृति को पुनर्जीवित करने और वैश्विक दर्शकों तक पहुँचाने में सहायक हैं। हालाँकि, पारंपरिक लोककथाओं के स्थानीय प्रसार में कमी आई है" (कुसुम, 2024)।

सांस्कृतिक संरक्षण के लिए नीतिगत सुधार

गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने के लिए समावेशी और प्रभावी जनसंचार नीति की आवश्यकता है। गद्दी लोकगीतकार अजय भरमौरी के शब्दों में, "गद्दी संस्कृति को संरक्षित रखने के लिए सांस्कृतिक महोत्सवों और शैक्षिक कार्यक्रमों का आयोजन आवश्यक है। डिजिटल मीडिया का उपयोग इन प्रथाओं को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाने में सहायक हो सकता है" (भरमौरी, 2024)। जनसंचार नीति में सुधार के लिए सांस्कृतिक महोत्सवों, शैक्षिक कार्यक्रमों और डिजिटल उपकरणों के उपयोग पर जोर देना आवश्यक है।

परिणाम

इस अध्ययन के परिणाम गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक धरोहर और जनसंचार नीति के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हैं। गद्दी समुदाय के लोकनृत्य जैसे 'डांगी,' 'चुराही' और 'नचणौध' केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं, बल्कि ये सामूहिकता और सांस्कृतिक संवाद के प्रभावी उपकरण हैं। इन नृत्यों के माध्यम से सामाजिक और धार्मिक संदेशों का प्रसार होता है, जो न केवल सामुदायिक एकता को मजबूत करते हैं, बल्कि सामाजिक जागरूकता को भी प्रोत्साहित करते हैं। लोकनृत्य पीढ़ीगत ज्ञान के स्थानांतरण का एक सशक्त माध्यम हैं, जो गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक धरोहर को सहेजने में सहायक होते हैं।

गद्दी समुदाय की पारंपरिक वेशभूषा, जैसे 'लुआंचडी,' 'चोला' और 'डोरा' उनकी सांस्कृतिक पहचान और धार्मिक विश्वासों का प्रतीक है।

पारंपरिक वेशभूषा न केवल सौंदर्य का प्रतीक है, बल्कि यह सामुदायिक संवाद और सांस्कृतिक संरक्षण का माध्यम भी है। आभूषण, जैसे 'चंद्रहार' और 'नथ', धार्मिक और सामाजिक महत्त्व को दर्शाते हैं, जो गद्दी समुदाय की परंपराओं और मूल्यों को संरक्षित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मेले और त्योहार, जैसे 'बिसू,' 'सैर' और 'पतरोडु' गद्दी समुदाय के सामाजिक जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। ये आयोजन सामूहिकता, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सामाजिक संवाद को प्रोत्साहित करते हैं। इन आयोजनों के दौरान कहानी, गीत और नृत्य जैसे तत्त्व सांस्कृतिक संदेशों के आदान-प्रदान का माध्यम बनते हैं। त्योहार सामुदायिक जुड़ाव को मजबूत करते हैं और सांस्कृतिक धरोहर को जीवंत बनाए रखते हैं।

आधुनिक जनसंचार उपकरण, जैसे सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म, गद्दी समुदाय की संस्कृति को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने में सहायक हैं। हालाँकि, पारंपरिक संवाद जैसे लोकगीत और कथाएँ धीरे-धीरे डिजिटल माध्यमों के प्रभाव से कम हो रही हैं। इन माध्यमों का संतुलित उपयोग गद्दी संस्कृति को संरक्षित करने के लिए महत्त्वपूर्ण है। अध्ययन यह दर्शाता है कि गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित रखने के लिए समावेशी जनसंचार नीति आवश्यक है। शैक्षिक कार्यक्रमों और सांस्कृतिक महोत्सवों के माध्यम से इन प्रथाओं को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इसके अलावा, डिजिटल उपकरणों का उपयोग इन पारंपरिक प्रथाओं को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाने के लिए किया जाना चाहिए। इससे न केवल सांस्कृतिक संरक्षण को बल मिलेगा, बल्कि यह गद्दी समुदाय की पहचान और धरोहर को सुदृढ़ करेगा।

निष्कर्ष

गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक प्रथाएँ उनकी पहचान का न केवल प्रतिनिधित्व करती हैं, बल्कि ये उनके सामुदायिक संवाद और जनसंचार नीति का एक अभिन्न हिस्सा भी हैं। इन प्रथाओं के माध्यम से गद्दी समुदाय अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करता है और सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर पर सामूहिकता को बढ़ावा देता है। लोकनृत्य और वेशभूषा जैसे सांस्कृतिक तत्त्व सामुदायिक एकता और सांस्कृतिक संरक्षण के सशक्त माध्यम हैं। इनसे न केवल परंपराओं को जीवंत बनाए रखने में सहायता मिलती है, बल्कि यह समुदाय के भीतर सहयोग और संवाद को भी मजबूत करते हैं। इसी प्रकार, मेले और त्योहार सामूहिकता और सांस्कृतिक संवाद को प्रोत्साहित करते हैं। इन आयोजनों के दौरान सांस्कृतिक संदेशों का आदान-प्रदान होता है, जो सामुदायिक जुड़ाव को सुदृढ़ करते हैं। आधुनिक जनसंचार उपकरण, जैसे सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म, गद्दी समुदाय की पारंपरिक सांस्कृतिक प्रथाओं को वैश्विक स्तर पर पहुँचाने का एक अवसर प्रदान करते हैं। हालाँकि, इन माध्यमों के प्रभाव को संतुलित करने की आवश्यकता है, ताकि पारंपरिक संवाद और सांस्कृतिक तत्त्वों की मौलिकता संरक्षित रह सके। गद्दी समुदाय की सांस्कृतिक प्रथाओं में निहित जनसंचार नीति सामाजिक जागरूकता, सांस्कृतिक संरक्षण और सामुदायिक जुड़ाव को बढ़ावा देने में सहायक है। यह न केवल गद्दी समुदाय की पहचान को मजबूत करता है, बल्कि उसकी सांस्कृतिक धरोहर को भविष्य की पीढ़ियों तक पहुँचाने में भी मददगार है।

संदर्भ

उपाध्याय, आर. & सिंह, बी. (2022). *गद्दी जनजाति के लोकगीत*. शिवालिक प्रकाशन : दिल्ली.

कुमार, एस. (2024). गद्दी समुदाय के प्रबुद्ध व्यक्ति एवं विशेषज्ञ, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश, में व्यक्तिगत साक्षात्कार.

कुसुम. (2024). काँगड़ा निवासी गद्दी युवती. कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश, में व्यक्तिगत साक्षात्कार.

गुप्ता, आर. (2021). *देवधरा* : हिमाचल प्रदेश. नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट.

टिक टिक टोके गद्दी. न्यू हिमाचली सॉन्ग. टीएम म्यूजिक. फॉक सॉङ्ग. www.youtube.com. मार्च 20, 2024, को https://youtu.be/WtTeY7Da1HY?feature=shared से पुनःप्राप्त.

टर्नर, वी. (1982). फॉर्म रिचुअल टू थिएटर : द ह्यूमन सीरियसनेस ऑफ प्ले. पीएजीपी.

ठाकुर, ए., सिंह, एस., पूरी, एस. (2020). एक्सप्लोरेशन ऑफ वाइल्ड एडिबल प्लांट्स यूज्ड एस फूड बाई गद्दीज- अ ट्राइबल कम्युनिटी ऑफ द वेस्टर्न हिमालया. द साइंटिफिक वर्ल्ड जर्नल.

ठाकुर, वी. (2023). सिचुएटिंग द गद्दी कम्युनिटी ऑफ हिमाचल प्रदेश, इंडिया इन अ वाइडर वर्ल्ड. हिमालया- द जर्नल ऑफ द एसोसिएशन फॉर नेपाल ऐंड हिमालयन स्टडीज, 42(2), 138-145। https://doi.org/10.2218/himalaya.2023.8919

ठाकुर, एस. (2017). वेलकम टू नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया. एनबीटी. https://www.nbtindia.gov.in/books_detail__5__folklore__1465__folk-musical-instruments-of-of-himachal-pradesh.nbt से पुन:प्राप्त.

ठाकुर, एस. (2024, सितंबर 26). प्राकृतिक सुंदरता और संस्कृति के लिए विदेशों तक मशहूर है हिमाचल के गद्दी जनजाति. न्यूज 18.

भरत. (2024). गद्दी विषय के शोधार्थी. धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश, में व्यक्तिगत साक्षात्कार.

भरमौरी, ए. (2024). गद्दी लोकगीतकार अजय भरमौरी. भरमौर, हिमाचल प्रदेश, में व्यक्तिगत साक्षात्कार.

भावना. (2024). चंबा निवासी गद्दी युवती. चंबा, हिमाचल प्रदेश, में व्यक्तिगत साक्षात्कार.

वर्मा, वी. (1996). *गद्दीज ऑफ धौलाधार : अ ट्रांसुमेंट ट्राइब ऑफ द हिमालयाज*. नई दिल्ली : इंडस पब्लिशिंग कंपनी.

वेगनर, ए. (2013). *द गद्दी बियांड पस्तोरलिज्म : मेकिंग प्लेस इन द इंडियन हिमालयाज*. न्यूयॉर्क : बेरगहन पब्लिकेशन.

शर्मा, एम. (2015). रिचुअल, परफॉर्मेंस एंड ट्रांसफॉर्मेशन : द गद्दी शेफर्ड्स ऑफ हिमाचल हिमालयाज. https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=2624534 से पुन:प्राप्त.

शर्मा, एम. (2015). रिचुअल, परफॉर्मेंस, एंड ट्रांसमिशन : द गद्दी शेफर्ड ऑफ हिमालयाज. ओरल ट्रेडिशन, 29(2).https://www.academia.edu/13412391/Ritual_Performance_and_Transmission_The_Gaddi_Shepherds_of_Himachal_Himalayas से पुन:प्राप्त.

शर्मा, एन. (2018). ऐन इंटरोस्पेक्शन ऑन द फॉल्कलोर ऑफ भरमाणी : द पैटर्न गोड्डेस ऑफ द गद्दी ट्राइब. इरोथनेटस, वॉल्यूम. 2, इशू 4, अक्टूबर 2018, पृष्ठ-1–8. https://www.erothanatos.com/_files/ugd/3e169b_f653f8d9ecd94d98a4ab3f3984fb0712.pdf?index=true से पुन:प्राप्त.

शर्मा, ए. (2015). एक्सप्लोरिंग हेरिटेज ऑफ हिल स्टेट- हिमाचल प्रदेश इन इंडिया. एलमाटूरिज्म- जर्नल ऑफ टूरिज्म, कल्चरल एंड टेरिटोरियल डेवलपमेंट, 6(12), 35–62. https://doi.org/10.6092/issn.2036-5195/4840 से पुन:प्राप्त.

श्रीधर, एस. (2016). अ जर्नी विद गद्दी पेस्टोरलिस्ट्स. फीचर आर्टिकल. मिंट. https://www.livemint.com/Leisure/Wzkj0Wad8pumyLNu5nkfGK/A-journey-with-Gaddi-pastoralists.html से पुन:प्राप्त.

सिंह, डी. (2022). विरासत और संस्कृति को सहेजे हैं गद्दी जनजाति के लोग, औरंगजेब के अत्याचारों से त्रस्त होकर हिमाचल की पहाड़ियों में ली थी शरण. https://www.tv9hindi.com/state/himachal-pradesh/the-gaddi-tribe-suffering-from-the-atrocities-of-aurangzeb-took-refuge-in-the-himanchal-hills-au235-1312543.html से पुन:प्राप्त.

सिंह, ए. आर. (1986). *हिमाचली लोक-साहित्य (गद्दी जनजाति के संदर्भ में)*. दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन.

सिंह, बी. (2021). हिमाचल प्रदेश की गद्दी जनजाति के त्योहार. अपनी माटी. https://www.apnimaati.com/2021/12/blog-post_68.html से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 18-23, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

गुज्जर बकरवाल जनजाति में सामाजिक-सांस्कृतिक संचरण : गोजरी लोक संस्कृति के संदर्भ में

प्रवीन कुमार[1] और प्रो. मलकीत सिंह[2]

सारांश

वर्तमान सदैव अतीत की कोख से जन्म लेता है। यह सार्वभौमिक सत्य है कि कोई ऐसा वर्तमान नहीं, जिसका कोई अतीत न हो। आज जो अतीत है, कल वह वर्तमान था। इसी प्रकार आज जो वर्तमान है, कल वह अतीत होगा। वर्तमान तथा अतीत का यह पारस्परिक संबंध सृष्टि के सबसे सूक्ष्म तत्त्व अणु से लेकर ब्रह्मांड के विशाल विस्तार तक व्याप्त है। मानव सभ्यता के प्रत्येक भाग में भी यह संबंध सदा-सर्वदा दृष्टिगोचर होता है, फिर चाहे वह किसी देश-प्रदेश, समाज-संस्कृति, कला-साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, रण-क्रीड़ा, वेश-भूषा या जाति-प्रजाति के संदर्भ में हो अथवा अन्य किसी तत्त्व के संदर्भ में। वर्तमान में जम्मू-कश्मीर की तीसरी सबसे बड़ी जनसंख्या वाले जन समुदाय के रूप में गुज्जर बकरवाल जनजाति का अपना एक भिन्न एवं विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक ताना-बाना है, जिसके पीछे एक गौरवशाली अतीत विमर्श की मुख्यधारा से दूर रहा है। इस जनजाति का सामाजिक-सांस्कृतिक ताना-बाना अध्ययन की दृष्टि से इसलिए भी अत्यधिक विशिष्ट हो जाता है, क्योंकि यह जनजाति इस्लामिक संक्रमण के कालखंड में बलपूर्वक इस्लामिक मान्यताओं की अनुयायी बनाए जाने के पश्चात् भी अपने सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में सनातन संस्कृति व मान्यताओं को किसी-न-किसी रूप में समाविष्ट किए हुए है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखंड में मुख्य रूप से निवास करने वाली बलात् इस्लामिक अनुयायी बनाई गई गुज्जर बकरवाल जनजाति तथा भारत के लगभग सोलह राज्यों में निवास करने वाले सनातनी गुर्जर समाज की संस्कृति में मूल सामाजिक-सांस्कृतिक तत्त्वों की समानता इनके साँझे अतीत का प्रमाण है।

संकेत शब्द : गुज्जर बकरवाल, गोजरी संस्कृति, मतांतरण, गोजरी लोकगीत, लोक कथाएँ, लोक संचार, सनातन संस्कृति, सामाजिक-सांस्कृतिक तत्त्व

प्रस्तावना

छठी शताब्दी में कश्मीर के महान् कवि कल्हण द्वारा विरचित 'राजतरंगिणी' में विशाल गुर्जर साम्राज्य तथा उस साम्राज्य के अधीन टक्क प्रदेश के अधिपति राजा अलखान गुर्जर तथा प्रतिहार अधिराज (राजाओं का अधिपति अथवा सम्राट्) भोज का वर्णन किया है (शास्त्री, 2019)।

स गुर्जरजयव्यग्र: स्वपराभव शङ्किनम्। त्रैगर्ते पृथिविचन्द्रम निनए तमसी हास्यताम् ॥ 144 ॥

उच्चखानालखानास्य सङ्ख्ये गुर्जरभुभुज:। बद्धमूलां क्षणालक्ष्मीं शुचं दीर्घामरोपयत् ॥ 149 ॥

तस्मै दत्वा टक्कदेशं विन्यादङ्गुलीमिव। स्वशरीरमिवापासीनमण्डलं गुर्जराधिप ॥ 150 ॥

हृतं भोजाधिराजेन स साम्राज्यमदापयत् । प्रतिहारतया भृत्यीभूते थक्कियकाअन्वये ॥ 151 ॥

ऐतिहासिक विश्लेषण से भी यह तथ्य स्पष्ट होता है कि जिस समय अरब में इस्लामिक मत अस्तित्व में नहीं आया था, उस समय भारत में गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य, सिंध के ब्राह्मणशाही राज्य से लेकर बंगाल के पाल साम्राज्य तथा दक्षिण के राष्ट्रकूट साम्राज्य तक विस्तारित होने के क्रम में था। सातवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में इस्लाम के प्रचार-प्रसार का रक्तरंजित अभियान आरंभ हुआ तथा आठवीं शताब्दी के दूसरे दशक में सिंध प्रांत तक अरब सेनाएँ पहुँच गई थीं (वर्मा, 1987)। राजा दाहिर की वीरगति के पश्चात् सिंध पर मुहम्मद बिन कासिम ने अरब साम्राज्य की नींव रख दी थी तथा इसी के साथ गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य तथा अरबों का संघर्ष भी आरंभ हो गया था। विश्लेषणात्मक अध्ययन अरबों तथा गुर्जर प्रतिहारों के मध्य चलने वाले शताब्दियों के संघर्ष के मूल में अरबों के द्वारा इस्लामिक मत के प्रसार के नाम पर लूटपाट, माल-ए-गनीमत प्राप्त करना (कुरान), साम्राज्य विस्तार करना तथा गुर्जर प्रतिहारों के द्वारा सनातन संस्कृति तथा भारत भूमि की विदेशी म्लेच्छ संस्कृति व आततायी आक्रांताओं से रक्षा करने के रूप में दो महत्त्वपूर्ण तथ्यों को स्पष्ट करता है (विद्यालंकार, 1971)। अनेक राष्ट्रवादी इतिहासकार अपने ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर शताब्दियों तक अरबों को भारत भूमि में प्रवेश न करने देने का श्रेय गुर्जर प्रतिहारों को देते हैं। सनातनी गुर्जर प्रतिहारों से बलपूर्वक इस्लामिक गुज्जर बकरवाल बनाए जाने की यात्रा ग्यारहवीं शताब्दी में उस समय आरंभ होती है जब भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध त्रिकोणीय संघर्ष में राष्ट्रकूटों तथा पाल साम्राज्य के साथ युद्धरत रहने के साथ ही अरबों से भी युद्ध करते हुए तीन तरफ से युद्ध मोर्चों पर लड़ने के कारण गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य क्षीण होकर विघटित होने लगा तथा अरबों ने शनै: शनै: गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के भू-भाग पर अधिकार करना आरंभ कर दिया। इस कालखंड में जिस क्षेत्र पर अरबों का आधिपत्य हो जाता था, उस स्थान पर अरबों द्वारा गुर्जरों को आवास तथा संपत्ति विहीन करके उन्हें आजीविका के लिए बकरियाँ दे दी जाती थीं। प्रताड़ना, दमन तथा शोषण के इसी क्रम में उनके स्वाभिमान को समाप्त करने के लिए उन्हें 'बकरी वाले' की संज्ञा प्रदान की गई, जो कालांतर में 'बकरवाल' के नाम से पहचाने जाने लगे। ऐतिहासिक विश्लेषण से जो एक सर्व स्वीकार्य तथ्य स्पष्ट होता है, वह यह है कि अरबों द्वारा अपने आधिपत्य में आने वाले क्षेत्रों में क्रूरतम यातनाएँ देकर गुर्जरों का निर्दयता से तथा बलपूर्वक इस्लामीकरण किया गया था तथा उन्हें गुर्जर स्वाभिमान से दूर करने के

[1]शोधार्थी, कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश. ईमेल : parveenkumarparvv@gmail.com
[2]आचार्य, कश्मीर अध्ययन केंद्र तथा निदेशक, जनजातीय अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला. ईमेल : malkitsaran@gmail.com

लिए बकरी वाले की संज्ञा आरोपित की गई थी।

बलात् मतांतरण तथा दमन, शोषण, प्रताड़ना के कालखंड से जूझते रहने के बाद भी अपनी मूल संस्कृति के तत्त्वों को शताब्दियों तक न केवल सुरक्षित रखना, अपितु पीढ़ी-दर-पीढ़ी उन्हें संचारित करना गुज्जर बकरवाल जनजाति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। अपनी प्राचीन सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा हुआ बलात् मतांतरित गुज्जर बकरवाल समुदाय अलग-अलग राज्यों में निवास करते हुए राज्यवार अलग नामों से जाना जाता है; जैसे–जम्मू-कश्मीर में गुज्जर बकरवाल, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखंड में वन गुज्जर। उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में गुज्जर या गुर्जर नाम से ही यह समुदाय विख्यात है। इन सभी राज्यों में निवास करने वाले गुज्जरों की सांस्कृतिक पहचान वर्तमान में भी इस्लामिक मान्यताओं से तथा इस्लामिक मान्यताओं का अनुसरण करने वाले अन्य समूहों से अधिकांश रूप से भिन्न है। स्पष्ट रूप से कहा जाए तो वर्तमान में भी गुज्जर बकरवालों की संस्कृति हिंदू गुर्जर समाज से विशेष रूप से समानता प्रकट करती है। सांस्कृतिक समानता के अंतर्गत जो तत्त्व विशिष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, वह कुल (दादा पौत्र) परंपरा, डेरा परंपरा तथा गोत्र परंपरा का प्रचलन होना है। यह वह सांस्कृतिक तत्त्व है, जिसका प्रचलन इस्लामिक संस्कृति में नहीं है। इसी प्रकार शादी-विवाह, जन्म इत्यादि के अन्य सामाजिक अवसरों पर भी अनेक रीति-परंपराओं में गुर्जर संस्कृति से समानता प्रकट होती है। विशिष्ट तथ्य यह है कि गुज्जर बकरवाल समुदाय अपने इन विशिष्ट सांस्कृतिक तत्त्वों को लेकर न केवल संवेदनशील है, अपितु इनका अनुसरण करने में यह जनजाति गौरवान्वित अनुभव करती है। सांस्कृतिक हस्तांतरण का यह क्रम संस्कृति के संचरण का एक अद्वितीय एवं अनुपम उदाहरण है कि एक समुदाय सांस्कृतिक संक्रमण से प्रभावित होने के पश्चात् भी अपनी मूल संस्कृति के विशिष्ट तत्त्वों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करते हुए शताब्दियों के कालखंड के पश्चात् भी उन्हें आत्मसात किए हुए है। गुज्जर बकरवाल जनजाति की संस्कृति में यह विशेष तथ्य दृष्टिगोचर होता है कि इनके नाम इस्लामिक संस्कृति से संबंधित होते हुए भी इनके उपनाम में गोत्र को प्रमुख रूप से स्थान दिया जाता है। अय्यूब खटाना, हसन पँवार, अली हसन चौहान, मोहम्मद दीन बटार, शाहनवाज चेची गुलामदीन पांमड, इस्तगफार भड़ाना, गुफरान भाटी, गुलजार परमार, रफीक अहमद पोसवाल, मेहरदीन तँवर, फरदीन तोमर जैसे नाम इस जनजाति की अपने पूर्वजों तथा मूल सांस्कृतिक तत्त्वों से संबद्धता को व्यक्त करते हैं। खटाना, पँवार, चौहान, बटार, चेची, पांमड, भड़ाना, भाटी, परमार, पोसवाल, तँवर व तोमर इत्यादि उपनाम इनके गोत्रों के नाम हैं, जो इन्हें वर्तमान में भी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान व हरियाणा राज्यों में बड़ी संख्या में निवास करने वाले गुर्जर समाज से मौलिक रूप से संबद्ध करते हैं। सदियों से पांथिक भिन्नता होने के पश्चात् भी सजातीय संस्कृति के मौलिक तत्त्वों का इस प्रकार का संचरण स्वयं में एक विशिष्ट अध्ययन विषय है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख में गुज्जर बकरवाल जनजाति की सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं का विश्लेषण उनके इतिहास से संबंधित लोकगीतों तथा लोक कथाओं के संदर्भ में तथ्य विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया है। वर्तमान में यूट्यूब सहित अनेक हाइब्रिड माध्यमों में प्रचलित गोजरी लोकगीतों में संचरित सांस्कृतिक तत्त्वों के विश्लेषण सहित देश भर के गुर्जर समुदाय में प्रचलित लोककथाओं का भी विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध का प्रमुख लक्ष्य गोजरी लोकगीतों तथा लोक कथाओं में संचरित समान सांस्कृतिक तत्त्वों के विश्लेषण के माध्यम से इस समाज की साँझी सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत को समझना है। यद्यपि गुर्जर समुदाय की जनसंख्या विभाजित रूप में सनातन धर्म सहित इस्लामिक तथा सिक्ख पंथ का भी अनुसरण करती है, तथापि इनका मूल सदैव से ही सनातन संस्कृति से संबद्ध रहा है। इसीलिए यह शोध पत्र गोजरी लोकगीतों तथा लोक कथाओं के माध्यम से संचारित इस समुदाय के साँझे सामाजिक-सांस्कृतिक तत्त्वों का विश्लेषण करता है।

शोध प्रश्न

1. क्या गुज्जर बकरवाल जनजाति के प्रचलित सामाजिक-सांस्कृतिक तत्त्वों में उनके मूल गुर्जर समुदाय तथा सनातन संस्कृति से संबद्धतत्त्वों का समावेश वर्तमान में भी दृष्टिगोचर होता है?
2. क्या गुज्जर बकरवाल जनजाति तथा गुर्जर समुदाय के लोकगीतों तथा लोक कथाओं में इनके साँझे अतीत के तत्त्व संरक्षित हैं?
3. गुज्जर बकरवाल जनजाति में कुल, वंश, गोत्र तथा वर्ण परंपरा के अस्तित्व की क्या संभावनाएँ हैं?

गुर्जर संस्कृति का मूल स्रोत

गुर्जर समुदाय तथा इनकी संस्कृति को केंद्र में रखते हुए अनेक इतिहासकारों तथा अध्येताओं ने अनेक अध्ययन किए हैं तथा अपने विश्लेषण के आधार पर इस समुदाय के संदर्भ में भिन्न तथ्य प्रस्तुत किए हैं। जेम्स कैंप बेल, जनरल क्रूक, कर्नल टाड, मिस्टर फोर्ब्स, डॉ. भंडारकर, डॉ. बुल्हर, जॉर्ज ग्रियर्सन, जैक्सन, डॉ. भगवान लाल इंद्र इत्यादि ऐसे इतिहसकार हैं, जिन्होंने गुर्जरों की विदेशी मूल से संबद्धता की अवधारणा को उसी प्रकार के मत के साथ स्वीकार किया है, जिसमें समस्त आर्य जातियों को मध्य एशिया से आने वाली जातियाँ बताया गया है। इसके अतिरिक्त इतिहासकारों के एक समूह, जिसमें डॉ. कृष्णा स्वामी आयंगर, डॉ. बैजनाथ पुरी, के. एम. मुंशी, डॉ. रतिभान सिंह, डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, डॉ. रतन लाल वर्मा, डॉ. जयसिंह इत्यादि सम्मिलित हैं, ने इस समुदाय के भारतीय मूल के होने के तथ्य के साथ ही भारतीय इतिहास में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट किया है। विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों, जैसे महाकवि राजशेखर की कृति 'बालभारत प्रचंड पांडव', कश्मीर के संस्कृत के महाकवि कल्हण द्वारा रचित ग्रंथ 'राजतरंगिणी', सम्राट् हर्षवर्धन के राजकवि बाणभट्ट की ऐतिहासिक कृति 'हर्ष चरित' तथा महाराज भोज परमार के ग्रंथ 'सरस्वती कंठाभरण' आदि इस समुदाय के विदेशी मूल को नकारते हुए इसके भारतीय मूल के होने के संकेत देते हैं। इसी प्रकार अनेक शिलालेख तथा ताम्रपत्रों में इस समुदाय के संदर्भ में जो तथ्य प्रदर्शित होते हैं, वे भी इसे मूल रूप से सनातन संस्कृति से संबद्ध करते दिखते हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन में ऐतिहासिक तथ्यों से इतर गुज्जर समुदाय की संस्कृति में प्रचलित लोकोक्तियों तथा लोकगीतों के विश्लेषण के माध्यम से इसके मूल तथा साँझी गोजरी संस्कृति को समझने का प्रयास करता है।

गोजरी लोकगीतों में सांस्कृतिक तत्त्वों का विश्लेषण

किसी भी समुदाय विशेष की सांस्कृतिक पहचान में जो सर्वप्रमुख तत्त्व होते हैं, उनमें भाषा के महत्त्व को किसी भी प्रकार से नकारा नहीं जा सकता। सांस्कृतिक संचार में भाषा का महत्त्व जिन तत्त्वों में दृष्टिगोचर होता है उनमें लोकगीत, लोककथाओं इत्यादि को वर्तमान में विश्लेषण की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है। भाषिक अथवा संचार माध्यम की दृष्टि से देखा जाए तो, गुर्जर समाज हो अथवा गुज्जर बकरवाल जनजाति या वन गुज्जर समुदाय, इन सभी की संयुक्त पहचान इनकी मातृभाषा गोजरी ही है। गोजरी भाषा का वर्णन किया जाए तो फिर चाहे वह सनातन संस्कृति के अनुयायी हिंदू गुर्जर हों अथवा शताब्दियों पूर्व बलात् इस्लामिक मतावलंबी बनाए गए गुज्जर बकरवाल या वन गुज्जर हों, सभी की एक ही मातृभाषा है, जिसे गोजरी कहा जाता है। गोजरी भाषी इस समुदाय की संस्कृति को भी संज्ञात्मक रूप से गोजरी संस्कृति के रूप में वर्णित किया जाता है। गोजरी संस्कृति की मूल जड़ को गोजरी भाषा के साथ संबद्ध करके देखना किसी भी प्रकार से अनुचित नहीं होगा, जिसमें गोजरी भाषा में गाए जाने वाले लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। गोजरी लोकगीत इस समुदाय की संस्कृति के उस वास्तविक साँझे स्वरूप को प्रत्यक्ष करते हैं, जिसे अनेक शताब्दियों तक विभक्त रूप में देखा, समझा व वर्णन किया गया (जावेद, 2012)। गोजरी गीतों में सनातन संस्कृति का स्पष्ट चित्र दृष्टिगोचर होता है। यहाँ पर एक प्रसिद्ध गोजरी गीत का वर्णन किया गया है, जिसमें श्रीकृष्ण के साथ होली खेलने के लिए गुर्जरी उत्साह का स्पष्ट चित्रण दिखाई देता है।

होली खेलण आया श्याम, आज याहै रंग मैं डोरो री। - 2
कोरे कोरे कलश मँगाओ, केसर घोलो री। - 2
रंग-बिरंगा करो, आज याहै कालस पोरो री। - 2
होली खेलण आया श्याम, आज याहै रंग मै डोरो री। - 2
आस-पड़ोसन बोली याहै अंगना मैं गेरो री। - 2
पीतांबर लेओ छीने, याहै पहरा देओ घघरो री। - 2
होली खेलण आया श्याम, आज याहै रंग मैं डोरो री। - 2
हरे बाँस की डास लाया है, तोड़ मरोड़ो री। - 2
गाली दे दे याहै नचाओ अपणी गेलो री। - 2
होली खेलण आया श्याम, आज याहै रंग मैं डोरो री। - 2
(गूजरी, 2024)

उपर्युक्त गोजरी गीत में होली उत्सव को लेकर होने वाले हर्ष और उल्लास के साथ ही श्रीकृष्ण के प्रति स्नेह, प्रेम व भक्ति का जो भाव प्रकट होता है, उससे गुर्जर समुदाय का सनातन संस्कृति से पुरातन संबंध स्पष्ट होता है। गोजरी गीतों में अधिकांशतः भक्ति भाव का समावेशन धार्मिक आधार को समक्ष लाता है। इसी प्रकार के एक अन्य गोजरी गीत में प्रत्येक जन्म में श्रीकृष्ण से संबंध बनाए रखने की भावना के साथ अपने भावों को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया गया है :

कान्हा मोए ना चाहिए बैकुंठ, जनम मोये धरती पै दीजो। - 2
एक जनम मोए जल को दीजो, कान्हा मोए जमना दीजो बनाए, कन्हैया मल-मल नहावै रे।
कान्हा मोए ना चाहिए बैकुंठ, जन्म मोये धरती पै दीजो। - 2
एक जनम मोए पशु को दीजो, कान्हा मोए गैय्या दीजो बनाए, कन्हैया रोज चरावै रे।
कान्हा मोये ना चाहिए बैकुंठ, जन्म मोये धरती पै दीजो। - 2
एक जनम मोहे पेड़ का दीजो, कान्हा मोहे चंदन दीजो बनाए, कन्हैया तिलक लगाए रे।
कान्हा मोये ना चाहिए बैकुंठ, जन्म मोये धरती पै दीजो। - 2
(गूजरी, 2023)

उपर्युक्त गोजरी गीत में श्रीकृष्ण से मोक्ष की माँग न रखते हुए अलग-अलग जन्म में यमुना, गाय, चंदन बनाने की विनती इस भाव के साथ की गई है कि इन सभी रूपों में श्रीकृष्ण का साथ मिलेगा। गोजरी गीतों में भक्ति भाव से इतर सामाजिक विषयों पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। यहाँ पर एक गोजरी लोकगीत में पारिवारिक रिश्तों को एक सूत्र में बाँधने के सूत्र का वर्णन किस प्रकार से सुंदर एवं रचनात्मक ढंग से किया गया है, वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस लोकगीत में राम भजन की माला को पारिवारिक व्यवस्था के आधार के रूप में देखा गया है तथा इस माला के टूटने को बारंबार पारिवारिक व्यवस्था में होने वाली उथल-पुथल के रूप में वर्णित किया गया है, साथ ही परिवार के सदस्यों के मध्य आपसी संवाद के माध्यम से इसके सुधार के विषय पर चर्चा की गई है।

मेरी राम भजन की माला, बहुओं नै तोड़ बगाई। - 2
मन्नै बाहर सै बुड्ढा बुलवाया, मन्नै धौरै बैठ समझाया। - 2
बुड्ढे रुक्खी सुक्खी खइयो, पर बाहर हलवा बतैइयो। - 2
मेरी राम भजन की माला, बहुओं नै तोड़ बगाई। - 2
मन्नै बाहर सै बेट्टी बुलवाई, मन्नै धौरै बैठ समझाई। - 2
बेट्टी फटे गुदड़े पहरियो, पर बिना बुलाए मत आइयो। - 2
मेरी राम भजन की माला, बहुओं नै तोड़ बगाई। - 2
मन्नै बाहर सै पोत्ते बुलवाये, मन्नै धौरै बैठ समझाए। - 2
पोत्ते इंजीनियर बन जाइयो, बाबा का नाम बढ़ाइयो। - 2
मेरी राम भजन की माला, बहुओं नै तोड़ बगाई। - 2
(गूजरी, 2022)।

गोजरी लोकगीतों में बहुतायत रूप में श्रीराम-सीता, हनुमान, बाबा मोहनराम, कृष्ण-राधा, शिव-पार्वती इत्यादि हिंदू देवी-देवताओं को केंद्र में रखते हुए पारिवारिक व सामाजिक जीवन के स्वरूप को बड़े सुंदर ढंग से वर्णित किया जाता है। उपर्युक्त गीत में श्रीराम की भजन माला को जिस प्रकार केंद्रित करते हुए पारिवारिक ढाँचे को सशक्त रखने का मार्ग बताया गया है, उसी प्रकार निम्नलिखित गीत में कृष्ण की मथुरा नगरी के वैद्य को केंद्र में रखकर पारिवारिक मनोविज्ञान को परिहास के रूप में समक्ष रखा गया है।

मथुरा नगरी मैं, कान्हा वैद्य बड़े सरकारी,
सास म्हारी नै नब्ज दिखाई, या कै कुछ नो है, या कै सत्संग की बीमारी।
मथुरा नगरी मैं, कान्हा वैद्य बड़े सरकारी,
जीठणी म्हारी नै नब्ज दिखाई, या कै कुछ नो है, या कै लोटन की बीमारी।
मथुरा नगरी मैं, कान्हा वैद्य बड़े सरकारी,
दीरणी म्हारी नै नब्ज दिखाई, या कै कुछ नो है, या कै न्यारे की बीमारी।
मथुरा नगरी मैं, कान्हा वैद्य बड़े सरकारी,
नणदी म्हारी नै नब्ज दिखाई, या कै कुछ नो है, या कै सुटन की बीमारी।
मथुरा नगरी मै कान्हा वैद्य बड़े सरकारी,
हमनै म्हारी नै नब्ज दिखाई, इनकै कुछ नो है, इनकै भजनन की बीमारी।
(गूजरी, 2022)

इस गीत में परिवार की महिलाएँ आपसी हास-परिहास करते हुए सास, जेठानी, देवरानी, ननद के साथ ही स्वयं के मानसिक भावों को शाब्दिक रूप में समक्ष रखती हैं। इसी प्रकार श्रीराम एवं श्रीकृष्ण को अपने गीतों में केंद्रीय स्थान पर भाव प्रकट करना गोजरी गीतों की एक विशिष्टता रही है, तो इसी क्रम में महादेव शिव को भी गोजरी गीतों में भक्ति भाव के साथ स्मरण किया जाता है। निम्नलिखित गोजरी गीत गुर्जर समाज में विवाहोत्सव के समय गाया जाता है :

ओ री गोरा-पार्वती तेरा दूल्हा कैसा आया है। - 2
सबके दूल्हे हमनै देक्हे, बाल काढ़ कै आते हैं,
तेरा दूल्हा हमनै देक्हा जटा खोल कै आया है।
ओ री गोरा-पार्वती तेरा दूल्हा कैसा आया है। - 2
सबके दूल्हे हमनै देक्हे, हल्दी लगा कै आते हैं,
तेरा दूल्हा हमनै देक्हा भभूत लपेट कै आया है।

(गूजरी, 2023)

इस गोजरी लोकगीत में शिव-पार्वती विवाह को आधार में रखते हुए दूल्हे के विषय में परिहास करते हुए दुल्हन से हँसी-ठिठोली की जाती है। गोजरी लोकगीतों में भक्ति भाव के साथ विभिन्न सांस्कृतिक तत्त्वों का उल्लेख भी मिलता है, जैसे निम्नलिखित गीत में सनातन संस्कृति में एक विशेष परंपरा के रूप में मान्य भात भरने की परंपरा का वर्णन मिलता है :

मेरे दिल्ली के दिलदार, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2
भातईया की बड़ी उम्मीद, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2
भईया कपड़े-कपड़े क्या करो, मेरे घर मै बसै जुलाह, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2
मेरे दिल्ली के दिलदार, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2
भातईया की बड़ी उम्मीद, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2
भईया बर्तन-बर्तन क्या करो, मेरे घर मै बसै ठठेरा, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2
मेरे दिल्ली के दिलदार, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2
भातईया की बड़ी उम्मीद, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2
भईया गहने-वहने क्या करो, मेरे घर मै बसै सुनार, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2
भातईया की बड़ी उम्मीद, मेरे घर आजाइयो भातईया। - 2

(भाटी, 2022)

उपर्युक्त गीत में भात की सनातनी परंपरा का वर्णन बड़े ही मार्मिक रूप से किया गया है। भात के अवसर पर गाए जाने वाले इस गीत को गाते समय अनेक बार भावुक वातावरण देखा जाता है। गोजरी लोकगीतों में सामाजिक व्यवस्था के चित्रण के साथ ही हिंदू संवत् से संबंधित तत्त्वों का वर्णन सामान्य रूप से देखा जाता है। विशेष बात यह है कि शताब्दियों पूर्व इस्लामिक मत के अनुयायी बनाए गए गुज्जर बकरवालों में गाए जाने वाले गोजरी लोकगीतों में भी हिंदू संवत् के महीनों का ही नाम आता है। निम्नलिखित दो गीतों का विश्लेषण इस तथ्य को स्पष्टता प्रदान करता है :

ए जी आया है सावण मास, हम बी तो जाइँगे बाप कै जी महाराज।
ए जी इबकै तो भेज्जी ना जाए, इबकै तो झुल्लो सास रै जी महाराज।
ए जी बट दो न रेशम डोर, पटड़ा तो गेरो साल को जी महाराज।
ए जी बट दी है रेशम की डोर, पटड़ा तो गेरो साल का जी महाराज।

(गूजरी, 2022)

उपर्युक्त गीत उत्तरप्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली इत्यादि राज्यों में गुर्जर समाज में सावन के महीने में गाया जाता है, जिसमें सावन के महीने में आने वाले तीज के त्योहार को केंद्र में रखते हुए भाव प्रकटीकरण हुआ है। इसी प्रकार जम्मू-कश्मीर की गुज्जर बकरवाल जनजाति में भी सावन के महीने का वर्णन गोजरी लोकगीतों में मिलता है :

सामण दी दुँदली रात्ता मा, इक थारी याद सतावै मिना।
तम बेस रे आज ओ काम्मा, इक थारो दूरी तड़पावै मिना।।
हम कैइँ जनमा गा संगी हाँ, हम मरगे बी ना बिछडागाँ।
जद कूके कोयल उ संगजू, कोई अपणो कैह गै बुलाए बी ना।
तम बेस रे आज ओ काम्मा, इक थारो दूरी तड़पावै मिना।
सामण दी दुंदली रात्ता मा, इक थारी याद सतावै मिना।

(एजाज, 2022)

उपर्युक्त गोजरी लोकगीत जम्मू-कश्मीर की गुज्जर बकरवाल जनजाति में प्रचलित एक प्रसिद्ध लोकगीत है, जिसमें सावन के महीने में विरह के भाव को व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार के अनेक गोजरी लोकगीतों में हिंदू संवत् के महीनों का वर्णन विशेष रूप से मिलता है। पुंछ के गुज्जर बकरवालों में प्रसिद्ध एक गोजरी बैत लोकगीत में हिंदू संवत् के महीनों का वर्णन आता है :

चढ़यो चैत चेतो तेरो नइ भुलतो, तेरी कसम बेसाख बिसारियो नी।
जेठ आडदी धुपा मा खड़ी देखूँ, सावण भादरे री बुवो मारियो नी।।
असो अक्ख फरकै, कतक कद आवै, केडी घड़ी मै काग उड़ारियो नी।
मंगर पौ दै मा, मै रात जागूँ, फगण जारिया ओ फेरो मारियो नी।।
चढ़ियो माघ साख तै संगणा ने, लाया रंग केजरी ले बास टोला।
मेरे दिल हसरत विचु या कसरत, कदे आजियो तो मेरै पास टोला।।

(राही, 2022)

उपर्युक्त गोजरी बैत लोकगीत में चैत्र मास से आरंभ करते हुए वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, सावन, भाद्रपद, असोज (आश्विन), कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ व फाल्गुन मास तक का वर्णन हिंदू संवत् के क्रम में आता है। इस गीत में वर्ष के बारह महीने अपने प्रियतम को स्मरण रखने के संदर्भ में बताते हुए गीत गाया जाता है। इस गीत में एक मुख्य ध्यानाकर्षण करने वाला तथ्य यह है कि माघ माह के चढ़ जाने पर केसरी रंग लेकर आने की इच्छा प्रकट की गई है, जो माघ मास के बाद आने वाले माह फाल्गुन में मनाए जाने वाले होली उत्सव के संदर्भ में संकेत करती है। इसी प्रकार के अनेक सनातन संस्कृति से संबंधित सांस्कृतिक तत्त्व शताब्दियों पूर्व बलात् इस्लामिक मत में मतांतरित किए गए गुज्जर बकरवाल जनजातीय समुदाय में वर्तमान में भी प्रचलित हैं, जो इस जनजातीय समुदाय के अंतर्गत शताब्दियों से होने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक संचरण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गोजरी लोकगीतों में भक्ति व सामाजिक भावों के साथ ही नैतिकता का भाव भी समाहित रहता है, जैसा कि निम्न वर्णित गोजरी लोकगीत के विश्लेषण से दिखता है :

कश्मीर पहाड़ पै चढ़ेंगे, आवैंगे बारै साल मैं। - 2
गोरी सोच समझ कै रहिए, तेरे घर मैं जेठ जवान सै।।
राजा बेशक चले जाइए, चाहे आइए सोलह साल मैं।
कश्मीर पहाड़ पै चढ़गे, आवैंगे बारै साल मैं। - 2
शाबास गूजरी की जायी रै, तनै म्हारी लाज बचाई सै।

(गूजरी, 2024)

इस लोकगीत में सैन्य अभियान पर जाने वाले पति की उसकी पत्नी से होने वाली वार्तालाप को गीत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस गीत में पति अपनी पत्नी से बारह वर्ष के सैन्य अभियान पर कश्मीर जाने की बात करते हुए नैतिक रूप से सजग रहने का निवेदन करता है, जिसके प्रत्युत्तर में पत्नी अपने पति को निश्चिंत रहने का आश्वासन देती है। जिस पर पति अपनी पत्नी की प्रशंसा करता है। जम्मू-कश्मीर के गुज्जर बकरवाल जनजातीय समुदाय में अनेक अवसरों पर गाए जाने वाले गोजरी लोकगीतों में इनकी मूल सनातन संस्कृति के तत्त्व शताब्दियों बाद भी समाहित दिखाई देते हैं और इन्हीं लोकगीतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन इनके मूल को स्पष्ट करता है। निम्नलिखित गीत में भी इसी प्रकार के तथ्य उपस्थित हैं :

कै कै लैये बैहणे, मै ते सारै जाणु।
मैंहदी ला लै बीरा, जे घर सावरे जाणो।।
गोजे भर लै बीरा, लोंग लाची दाणो।
वो के करणो बैहणे, लोंग लाची दाणो।।
साली माँगै बीरा, लोंग लाची दाणो।

(राही, 2010)

उपर्युक्त गोजरी लोकगीत जम्मू-कश्मीर के गुज्जर बकरवाल समुदाय में विवाह के अवसर पर दूल्हे तथा उसकी बहन के द्वारा उस समय गाया जाता है, जब दूल्हा बरात लेकर चलने लगता है। इस गीत में दूल्हा अपनी बहन से, बरात ले जाने से पूर्व क्या करना है, इस संदर्भ में पूछता है। उत्तर में उसकी बहन उसे ससुर के घर जाने से पहले मेंहदी लगाने तथा जेब में अपनी सालियों (दुल्हन की बहनों) के लिए लौंग तथा इलायची के दाने भरने के लिए कहती है। इस गीत में प्राचीन समय में गुर्जर समाज में प्रचलित प्रथा का वर्णन देखने को मिलता है, जिसमें दूल्हा अपनी सालियों के लिए उपहारस्वरूप लौंग तथा इलायची की भेंट ले जाया करता था।

जम्मू-कश्मीर के गोजरी लोकगीतों में अनेक स्थानों पर ऐतिहासिक संदर्भों से संबंधित कथाओं का लोकगीत में प्रयोग देखने को मिलता है। निम्नलिखित गोजरी लोकगीत में इसी प्रकार का एक उदाहरण दृष्टिगोचर होता है :

बोद्दा यार बणावण वाले रैह जाँदे नै केल्ले।
असाँ तै लुक लुक रोंदे वेक्हे, कुज नी रैंदा पल्ले।।
बेशर्म दे हलवे नालो, साग सरो दा चंगा।
बेगैरत दी यारी कोलों, साथ कुते दा चंगा।।

(एस.एन. विडीयोज, 2020)

जम्मू-कश्मीर के इस गोजरी लोकगीत में सामाजिक व्यवहार से संबंधित शिक्षा देते हुए ऐतिहासिक उदाहरण को सम्मिलित किया गया है। यहाँ जिस 'बेशर्म के हलवे' तथा 'सरसों के साग' का वर्णन किया गया है, वह महाभारत कालीन प्रसंग से प्रेरित है, जिसमें श्रीकृष्ण ने 'दुर्योधन के विभिन्न प्रकार के राजसी पकवानों को अस्वीकार करते हुए धर्मात्मा विदुर के घर के 'सरसों के साग' को सहर्ष स्वीकार किया था। वर्तमान में गुर्जर समुदाय का संबंध विभिन्न पांथिक मान्यताओं से है, परंतु इन सभी की सामान्य भाषा गोजरी के लोकगीतों में धर्म, संस्कृति, समाज के प्रति संवेदनशीलता तथा राष्ट्रप्रेम सर्वोपरि रूप से सदैव विद्यमान रहा है। देश, धर्म तथा नैतिकता से परिपूर्ण भाव युक्त एक गोजरी लोकगीत की पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं :

देश धरम पै अर्पण कर दी, हस कै जान गूजरो नै।
फरज निभाया सच्चा, दे कै बलिदान गूजरो नै।।
जान तै प्यारा समझा अपणा, हिंदुस्थान गूजरो नै।।
देश धरम पै अर्पण कर दी, हस कै जान गूजरो नै।
फरज निभाया सच्चा, दे कै बलिदान गूजरो नै।

(शक्ति, 2018)

उपर्युक्त गोजरी गीत गुर्जर इतिहास, विदेशी आक्रांताओं से उनके शताब्दियों के संघर्ष, ईमानदारी राष्ट्रप्रेम तथा बलिदान का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस लोकगीत में विधर्मियों से सैकड़ों वर्षों तक लड़ने वाला वक्तव्य अरबों, तुर्कों तथा मुगलों से लड़ने के संदर्भ में व्यक्त किया गया है, जिसे शताब्दियों पूर्व बलपूर्वक इस्लाम मत में मतांतरित किए गए जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड के गुज्जर बकरवाल व वन गुज्जर भी स्वीकार करते हैं।

लोकगीत, लोकोक्तियाँ अथवा लोककथाएँ सदैव समाज एवं संस्कृति के प्रस्तोता रहे हैं, अर्थात्, सामाजिक संस्कृति के प्रचलित तत्त्व उस समाज के लोकसाहित्य अथवा लोकगीतों में दृष्टिगोचर होते हैं। शताब्दियों पूर्व विदेशी तथा विधर्मी आक्रांताओं से सैंकड़ों वर्षों तक संघर्ष करने तथा भारत भूमि व सनातन संस्कृति की रक्षा करने के क्रम में जब एक विस्तृत क्षेत्र अरबों, तुर्कों तथा मुगलों के अधीन गया तो उस क्षेत्र में निवास करने वाले गुर्जरों का निर्दयता से दमन शोषण करते हुए उन्हें संपत्तिविहीन करके बलपूर्वक इस्लाम मत में मतांतरित किया गया (राणा, 2017)। इस्लाम मत में मतांतरित किए जाने के पश्चात् भी सांस्कृतिक रूप से यह समुदाय अपने मूल समुदाय तथा मूल संस्कृति से सदैव संबद्ध रहा। इस समुदाय ने अपनी मूल संस्कृति के सांस्कृतिक तत्त्वों को न केवल अपने जीवन, अपने सामाजिक ढाँचे व गोजरी लोकगीतों व कथाओं में संरक्षित रखा, अपितु इन्हीं लोकगीतों के माध्यम से इन तत्त्वों को ये लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित भी करते रहे।

निष्कर्ष

इस शोध अध्ययन के अंतर्गत गुर्जर समाज तथा गुज्जर बकरवाल जनजाति में प्रचलित गोजरी लोकगीतों के विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि गुज्जर बकरवाल जनजाति में इन लोकगीतों के माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक संचरण शताब्दियों से होता रहा है तथा यह जनजाति अपने मौलिक सांस्कृतिक तत्त्वों को वर्तमान समय में भी अपनी मातृभाषा गोजरी तथा गोजरी लोकगीतों के माध्यम से न केवल संरक्षित रखे हुए है, अपितु प्रसारित भी कर रही है। गुज्जर बकरवाल जनजाति के लोकगीतों में सनातन संस्कृति के विभिन्न तत्त्व आज भी समाहित हैं, जो इस जनजाति के वास्तविक इतिहास को प्रामाणिक रूप से व्यक्त करते हुए इनके मूल समुदाय से इन्हें संबद्ध करते हैं। इस जनजाति में प्रचलित लोकगीतों में प्रयुक्त शब्दावली, उदाहरण, लोकोक्तियों इत्यादि में सनातन संस्कृति के तत्त्वों की अधिकता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ, संवत् वर्ष के महीनों का प्रयोग जिस प्रकार गोजरी बैत लोकगीत में किया गया है, वर्तमान में उस प्रकार का प्रयोग संभवतः अन्य किसी स्थान पर सरलता से दिखाई नहीं देता है। इसी प्रकार परंपराओं का वर्णन भी लोकगीतों में मिलता है, जो इस समाज की प्राचीन मान्यताओं का प्रमाण प्रस्तुत करता है। लोकगीतों में प्रयुक्त मुहावरे जब ऐतिहासिक प्रसंगों से संबंधित

होते दिखते हैं, तो वे भी सांस्कृतिक तत्त्वों की समानता प्रकट करते हुए एक साँझे अतीत को प्रमाणित करते हैं। इस अध्ययन से गुर्जर समाज एवं गुज्जर बकरवाल जनजाति के साँझे इतिहास का स्पष्टीकरण होता है, जिसमें सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से संबद्ध अनेक तत्त्व वर्तमान में भी समानता प्रकट करते हैं तथा अतीत में इनके ऊपर बलपूर्वक थोपी गई विदेशी मान्यताओं से इनकी भिन्नता को भी यह अध्ययन स्पष्ट रूप से समक्ष रखता है।

संदर्भ

एजाज भट ऑफिशियल. (22 जून, 2022). सावण दी धुँदली रात्ता मा. https://www.youtube.com/watch?v=qzoZz98Neo0 से पुनःप्राप्त.

एस.एन. विडीयोज. (04 मई, 2020). बोद्दा यार बनावण आले रह जाँदे. https://www.youtube.com/watch?v=M5soN79c8ic से पुनःप्राप्त.

राही, जावेद. (21 जनवरी, 2010). लौंग लाची दाणो. https://www.youtube.com/watch?v=4fvYp87K6CE से पुनःप्राप्त.

राही, जावेद. (21 अप्रैल 2022). चढ़यो चैत चेतो तेरो नइ भुलतो. https://www.youtube.com/watch?v=Ox_0JAWFQu4 से पुनःप्राप्त.

जैदी, राणा. (2017). हिस्ट्री एंड रोल ऑफ वर्नाकुलर लैंग्वेजेस इन जम्मू एंड कश्मीर : ए केस स्टडी ऑफ गोजरी लैंग्वेज. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज, लिटरेचर इन ह्यूमैनिटीज. वॉल्यूम-5.

पांडेय, आर. एस. (2019). व्याख्या, महाकवि कल्हण विरचित राजतरंगिणी, नई दिल्ली : चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान.

बिंदास गूजरी. (26 अप्रैल, 2022). मेरी राम भजन की माला. https://www.youtube.com/watch?v=qyfmvTEO7PA से पुनःप्राप्त.

बिंदास गूजरी. (19 अगस्त, 2022). मथुरा नगरी मै कान्हा. https://www.youtube.com/watch?v=niPAQTjcKFM से पुनःप्राप्त.

बिंदास गूजरी. (24 मार्च, 2024). होली खेलण आयो श्याम. https://www.youtube.com/watch?v=iRwRJLbFuzU से पुनःप्राप्त.

बिंदास गूजरी. (14 जून, 2023). कान्हा मोहे ना चहियै बैकुंठ. https://www.youtube.com/watch?v=5v6ld2CT8Fc से पुनःप्राप्त.

बिंदास गूजरी. (23 अगस्त, 2023). ओ री गोरा पार्वती तेरा दूल्हा कैसा आया है. https://www.youtube.com/watch?v=N12PYeZHAK4 से पुनःप्राप्त.

बिंदास गूजरी. (14 जून, 2024). कश्मीर पहाड़ पै चढ़ेंगे. https://www.youtube.com/watch?v=Cwj8wr6OkdA से पुनःप्राप्त.

बिंदास गूजरी. (31 जुलाई, 2022). ए जी आया है सावण मास. https://www.youtube.com/watch?v=sMKjx9zxkPE से पुनःप्राप्त.

भाटी, रामवीर. (30 अगस्त, 2022). मेरे दिल्ली के दिलदार. https://www.youtube.com/watch?v=GCXlEMZKIW8 से पुनःप्राप्त.

राही, जे. (2012). द गुज्जर्स. जे एंड के अकैडमी ऑफ आर्ट, श्रीनगर : कलचर्स एंड लैंग्वेजेज.

वर्मा, आर.एल. (1987). 'भारतीय संस्कृति के रक्षक' संपादक अजरा चौधरी. सहारनपुर : भारतीय गुर्जर परिषद सहारनपुर, उ.प्र, गुज्जर विशेषांक.

विद्यालंकार, एस.के. (1971). भारत का इतिहास' नई दिल्ली : श्री सरस्वती सदन.

सूरह अनफाल, आयात 40 व 69, कुरान.

शक्ति म्यूजिक. (4 जुलाई, 2018). देश धर्म पै अर्पण कर दी. https://www.youtube.com/watch?v=U8wQm__aJGE से पुनःप्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 24-28, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

संचार की भारतीय वाचिक परंपरा : एक अध्ययन

मृत्युंजय कुमार[1]

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा हजारों वर्षों से अनवरत है। यह परंपरा मुख्यतः वाचिक रही है। वर्तमान में किसी भी समकालीन सभ्यता के मुकाबले वैदिक सिंधु-सरस्वती सभ्यता के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध है। साथ ही आज तक वैदिककालीन संस्कृति का प्रभाव बृहद् भारत पर दिखता है। भारतभूमि के लोग आज भी उस प्राचीन सभ्यता-संस्कृति से जोड़कर स्वयं को उसके वंशज के रूप में देखते हैं और उस ज्ञान परंपरा का युगानुकूल अनुसरण भी करते हैं। यह संचार की वाचिक परंपरा के चलते ही संभव हो पाया है। भारतीय संचार की वाचिक परंपरा ने संस्कृति के गूढ़ रहस्यों को समय के थपेड़ों से अक्षुण्ण रखा। संचार की वाचिक परंपरा का अर्थ है, किसी समाज की संस्कृति को मौखिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करने का उपक्रम। जिन संस्कृतियों में वाचिक परंपरा का प्रभाव रहा है, वहाँ कथा, भजन, कविता, गाथागीत, मंत्र, कहावत, लोकोक्ति आदि के माध्यम से सांस्कृतिक तत्त्व एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से पहुँच जाते हैं। ऐसी संस्कृतियों में लिखे हुए शब्द की जगह बोले और सुने गए शब्दों को महत्त्व दिया जाता है। परिणामस्वरूप ऐसी संस्कृतियाँ स्वतः ही सहिष्णु और सतत परिवर्तनशील होती हैं। यहाँ व्यक्तिवाद एवं मत कट्टरता का स्थान न्यून होता जाता है, किसी एक किताब को अंतिम सत्य मानने की सोच कमजोर होती है—एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। संचार की वाचिक परंपरा ज्ञान के संरक्षण और युगानुकूल परिवर्तन यानी संवर्धन के सहज साधन के रूप में दिखाई देती है। सिंधु-सरस्वती सभ्यता की समकालीन सभ्यताओं में मिस्र और मेसोपोटेमिया की सभ्यताएँ प्रमुख हैं। ऊँचे पिरामिड व भौतिक अवशेषों के रूप में मिस्र की सभ्यता के सर्वाधिक भौतिक प्रमाण मिलते हैं, जो दुनिया के आकर्षण का केंद्र भी हैं, किंतु वर्तमान में गिनती मात्र लोग भी ऐसे नहीं हैं, जो इस सभ्यता के वंशज होने का सगर्व दावा करते हों। नतीजतन, मिस्र के देवता संग्रहालयों की शोभामात्र बनकर रह गए, जबकि वहाँ की ज्ञान परंपरा समय के साथ ओझल हो गई। कालांतर में मिस्रवासी अपनी पूरी संस्कृति से अनजान हो गए। मिस्र की संस्कृति केवल इतिहास की किताबों का हिस्सा बनकर रह गई। मेसोपोटेमिया की संस्कृति का भी यही हाल हुआ। वह विश्व के सांस्कृतिक मानचित्र से लुप्तप्राय हो गई। दूसरी ओर, विदेशी आक्रमणकारियों के निरंतर हमले झेलते हुए भी भारतभूमि में वैदिक संस्कृति व ज्ञान परंपरा अक्षुण्ण रही। संचार की भारतीय वाचिक परंपरा ने वैदिक संस्कृति को कालजयी बनाया। भारत के हजारों वर्षों के सांस्कृतिक इतिहास को हमारे वर्तमान से जोड़ने का बृहद् कार्य संचार की वाचिक परंपरा ने किया। यह बात अवश्य है कि यूरोपीय पराधीनता और मिशनरी प्रेस के प्रभाव के चलते भारत में संचार की वाचिक परंपरा धूमिल हुई। एक समय ऐसा भी आया जब बोले हुए शब्द का महत्त्व न्यूनतम हो गया। कानूनी प्रक्रिया और समाज जीवन में लिखे हुए, विशेष तौर से किसी अधिकारी द्वारा सत्यापित लिखित शब्द को ही प्रमाण मानने का चलन आया। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय ज्ञान परंपरा व संस्कृति के वाहक व संरक्षक के रूप में भारतीय संचार की वाचिक परंपरा का अध्ययन किया गया है। शोध हेतु तथ्य द्वितीयक स्रोतों से एकत्र किए गए हैं।

संकेत शब्द : वाचिक परंपरा, भारतीय संस्कृति, भारतीय ज्ञान परंपरा, भारतीय संचार सिद्धांत, ऋग्वेद, शब्द, वाक्, मंत्रोच्चार, शब्दब्रह्म

प्रस्तावना

हजारों वर्ष पूर्व सिंधु-सरस्वती के तट पर हमारे वैदिक पूर्वजों ने जिस सभ्यता की निर्मिति की, 'ज्ञान' उसकी आधारशिला था। "आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः" (ऋग्वेद 1-89-1) मंत्र से वैदिक पूर्वजों की ज्ञान जिजीविषा का अनुमान होता है, जिसका अर्थ है कि हमें सर्वत्र सभी ओर से कल्याणकारी विचार मिलें। ऋग्वैदिक ज्ञान परंपरा की एक विशेषता उसकी वाचिक संरचना भी है, जिसमें लिखने की अपेक्षा स्मरण करने, देखने (मंत्रद्रष्टा), समझने और आत्मसात् करने पर बल दिया गया। हमारे वैदिक पूर्वजों ने अपने ज्ञानकोष को संहिता का रूप देते हुए उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करने का वाचिक उपक्रम विकसित किया। इस क्रम में मंत्रोच्चार की प्रकृति-विकृति शैली, श्रोत्रिय परंपरा, गुरु-शिष्य परंपरा, शब्दब्रह्म और श्रुति-स्मृति आदि का विकास हुआ। संचार की वाचिक परंपरा के संदर्भ में 'श्रुति और स्मृति' का उल्लेख अनिवार्य हो जाता है। श्रुति, यानी जिसे ऋषियों ने सुना, जो देवताओं द्वारा मंत्रद्रष्टा ऋषियों पर प्रकट हुई; जबकि स्मृति का अर्थ है, मनुष्यों के स्मरण और बुद्धि से बने स्मरण ग्रंथ। ये वास्तव में श्रुति के मानवीय विवरण होते हैं। वैदिक साहित्य को श्रुति कहा जाता है, क्योंकि पुराने ऋषियों ने इसे श्रवण परंपरा से ग्रहण किया था। बाद में इस ज्ञान को स्मरण करके जो ग्रंथ लिखे गए, वे स्मृति कहलाए (सिंह, 2020, पृष्ठ 88-89)। श्रुति-स्मृति दोनों यानी पूरा भारतीय वाङ्मय वाचिक परंपरा से संबंधित है। शब्द और वाक् इसके मूल में हैं। कालांतर में शास्त्रों के कठिन रहस्यों को लोक ने सरलता के साथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया। यहाँ भी माध्यम के रूप में वाचिक परंपरा दिखाई देती है। भारतीय संचार की वाचिक परंपरा विश्व में अद्वितीय रही है। किसी भी प्राचीन संस्कृति में वाचिक परंपरा इतनी सुदीर्घ नहीं रही।

भारतीय दर्शन में मुख्य रूप से छह प्रमाणों का उल्लेख मिलता है—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि; जबकि आधुनिक पाश्चात्य दर्शन मुख्यतः 'प्रत्यक्ष प्रमाण' को ही आधार मानता है। यानी, जो सामने है केवल उसे ही तर्क के आधार पर सच मानते हैं। दूसरी ओर, भारतीय संचार की परंपरा मुख्यतः वाचिक रही है, जिसे 'प्रत्यक्ष' के पैमाने पर साबित करना कठिन हो जाता है। भारतीय परंपरा में मानव मात्र को ईश्वर के एक अंश के रूप देखा गया है (जीवो ब्रह्मैव नापरः), जिसकी कही बातों को 'शब्द प्रमाण' के रूप में सत्य माना जा सकता है।

[1]अकादमिक एवं शैक्षणिक सहयोगी, भारतीय जन संचार संस्थान सम विश्वविद्यालय, नई दिल्ली. ईमेल : mritunjaykumarprince@gmail.com

दूसरी ओर, पाश्चात्य दर्शन का मत है कि इनसान अपने शाश्वत पाप को लेकर इस धरती पर जन्म लेता है और चारों ओर पाप से घिरा रहता है। यहाँ उसकी कही बातों को न्यूनतम महत्त्व देते हुए लिखित रूप में मौजूद धार्मिक ग्रंथों, अधिकारियों द्वारा सत्यापित प्रमाणपत्रों को अंतिम सत्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। ब्रिटिश शासन काल में मिशनरी प्रेस के प्रभाव के चलते भारतीय जनमानस में भी केवल लिखे हुए शब्दों को प्रमाण मान लेने का चलन आया। आम बहस में ये प्रश्न अक्सर पूछे जाते हैं कि 'ऐसा कहाँ लिखा है, दिखाओ या साबित करो'! जबकि, भारतीय संचार परंपरा में लिखने से अधिक जोर स्मरण करने और आत्मसात् करने पर दिया गया। ऐसी स्थिति में केवल लिखे हुए को प्रमाण मानते रहें तो हम अपने अधिकतर ग्रंथों को 'झूठ', 'मिथ्या' या 'दंतकथा' मानने के लिए अभिशप्त होंगे। ऐसी स्थिति में भारतीय संचार की वाचिक परंपरा का अध्ययन इस दिशा में अन्य प्रमाणों की उपयोगिता सिद्ध कर सकता है। इसके माध्यम से संचार की वाचिक परंपरा का ऐतिहासिक मूल्यांकन भी संभव हो सकता है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य भारत की वाचिक यानी श्रुति परंपरा का संचार की दृष्टि से अध्ययन करना है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध चूँकि गुणात्मक प्रकृति का है, इसलिए तथ्य द्वितीयक स्रोतों से एकत्र किए गए हैं। इसमें भारतीय ज्ञान एवं संचार परंपरा की विभिन्न पुस्तकों, शोध आलेखों, समाचार पत्रों आदि से तथ्य संकलित किए गए हैं। वाचिक परंपरा के ऐतिहासिक मूल्यांकन और वर्तमान में इसके महत्त्व को समझने का प्रयास किया गया है।

लोक प्रबोधन के सशक्त माध्यम के रूप में वाचिक परंपरा

भारतीय ज्ञान परंपरा मुख्यतः वाचिक रही है। हजारों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियों ने जिन मंत्रों को देखा, अनुभूत किया, औपनिषदिक काल में मैत्रेयी, याज्ञवल्क्य, नचिकेता, जनक आदि विद्वानों ने जिन विषयों पर चिंतन-मनन किया, पौराणिक काल में जिस ज्ञान निधि को आख्यान का रूप दिया गया, जिसे भक्तिकाल में कवियों ने अपना स्वर दिया; हमारी वह ज्ञान परंपरा कुछ अंश विलुप्त होने के बाद भी आज हमारा मार्गदर्शन कर रही है। अब प्रश्न उठता है कि यह किस प्रकार संभव हुआ? प्रख्यात कला समीक्षक विनय उपाध्याय का मत है कि लोक प्रबोधन (यानी मास कम्युनिकेशन) का सबसे सशक्त माध्यम हमारी वाचिक परंपरा रही है। हम श्रुति और स्मृति के देश के वासी हैं। सुंदर भूगोल ही नहीं, ऋषि-साधकों के महान् तप और जनजातीय तथा लोक समुदाय के नैसर्गिक और सहज अनुभव सिद्ध निष्कर्षों से समृद्ध सभ्यता को चरितार्थ करता भारत यहाँ युगों तक आलोकित होता दिखाई देता है। बोले हुए शब्द की सांस्कृतिक यात्रा में अनेक ऐसी लोक शैलियाँ परंपरा का परचम थामे जन-जागृति का पैगाम बन जाती हैं। वेद हमारे आदिग्रंथ हैं तो उनके मंत्र लगभग दो हजार वर्षों तक हमारी मानवीय सभ्यता के पास मौखिक परंपरा में ही रहे। स्मृति और कंठ ने इन्हें कई पीढ़ियों तक जीवित रखा। जब लिपि का आविष्कार हुआ तब वे ग्रंथ में यानी पृष्ठों पर अंकित हुए। सामवेद से जन्मे संगीत का ही कमाल है कि आज भी वे स्वर और लय की निश्चित गतियों और आरोह-अवरोह में गाए जाते हैं। रामायण और महाभारत की कथाएँ आख्यान की रोचक-रम्य शैली में आज तक जन मानस को आंदोलित करती हैं (उपाध्याय, 2021)।

प्रख्यात साहित्यकार एवं 'नवभारत टाइम्स' के पूर्व संपादक विद्यानिवास मिश्र वाक् परंपरा को भारतीय परंपरा के विशिष्ट अभिलक्षणों में एक मानते हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी माता-पिता से संतान को या गुरु से शिष्य को सौंपी जानेवाली थाती परंपरा कहलाती है, पर यह सौंपना और ग्रहण करना निर्जीव व्यापार नहीं है। सौंपने वाले को सौंपने की क्षमता प्राप्त करनी होती है, ग्रहण करने वाले को ग्रहण करने की। वाचिक परंपरा में केवल वाक्य नहीं सौंपे जाते, वाक्यार्थ को ग्रहण करने वाला ध्यानयोग और समर्पण भाव भी सौंपा जाता है। भारतीय परंपरा केवल शब्द नहीं ढोती और जब ढोती है तो शब्द के साथ चेतना भी (मिश्र, 2017, पृष्ठ 30-31)। भारत में लिखित भाषा का इतिहास भी लगभग 5-6 हजार वर्ष पुराना है, परंतु जो लिखा गया है उसके पीछे भी वाचिक ही है। सभी पुराण, सभी कथाएँ, समस्त आगमशास्त्र, समस्त शिल्पशास्त्र, कलाशास्त्र, समस्त स्मृतियाँ, समस्त धार्मिक वाङ्मय (ब्राह्मण, बौद्ध या जैन जो भी हों) संवाद के रूप में यदि बोले गए हैं तो निश्चित ही संवादों की एक शृंखला ने इनकी रचना को प्रेरित किया होगा। साथ ही जो लिखा गया, वह संप्रेषित वाचिक के द्वारा ही अधिक होता है (मिश्र, 2017, पृष्ठ 132)।

जीवित पुस्तकालय

जर्मन भाषाविद्, वेद तथा प्राच्य विद्या विशारद मैक्समूलर ने वेद एवं उपनिषदों के ज्ञान से पश्चिमी दुनिया का परिचय कराया। उन्होंने 27 वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद ऋग्वेद का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। इसके साथ ही कठोपनिषद्, केनोपनिषद्, हितोपदेश, मेघदूत जैसे अहम संस्कृत ग्रंथों का भी मूल संस्कृत से जर्मन में अनुवाद किया, जिसके बाद ये ग्रंथ विभिन्न यूरोपीय भाषाओं में अनूदित होकर दुनिया भर में प्रसारित हुए। भारतीय साहित्य और संस्कृति पर मैक्समूलर के अगाध ज्ञान को देखते हुए इंग्लैंड की सरकार ने उन्हें 1882 में आई.सी.एस. पास हुए प्रशिक्षु अधिकारियों के प्रशिक्षण के दौरान भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृति पर व्याख्यान देने के लिए बुलाया था। इस दौरान प्रशिक्षु अँग्रेज अधिकारियों के सामने मैक्समूलर के कुल सात व्याख्यान हुए, जिसे 1882 में 'इंडिया : व्हाट कैन इट टीच अस' नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। इसका हिंदी अनुवाद 2019 में 'भारत हमें क्या सिखा सकता है' के नाम से डॉ. सुरेश मिश्र ने किया। अपने सातवें और समापन व्याख्यान में मैक्समूलर ने भारत की वाचिक ज्ञान परंपरा की विशेषताओं का वर्णन किया है। इस दौरान एक प्रशिक्षु आई.सी.एस. अधिकारी के सवाल का जवाब देते हुए मैक्समूलर कहते हैं, मेरे कुछ श्रोताओं ने इस प्रश्न का जवाब चाहा है कि यदि भारत में ई. पू. 5वीं सदी से पहले लेखन का प्रचलन नहीं था तो वैदिक साहित्य इतने वर्षों तक कैसे सुरक्षित रह पाया, जबकि ऋग्वेद की ऋचाएँ 15वीं सदी ईस्वी पूर्व की हैं (मिश्र, 2019, पृष्ठ 143)? आगे मैक्समूलर बताते हैं, इसका उत्तर यह है कि ये पूरी तरह स्मरणशक्ति से सुरक्षित रहे। यह आश्चर्यजनक लग सकता है, किंतु इससे भी ज्यादा आश्चर्यजनक यह लगेगा कि यह एक ऐसा तथ्य है कि संदेह करने वाले किसी भी व्यक्ति के द्वारा इसी क्षण आसानी से सुनिश्चित किया जा सकता

है कि यदि ऋग्वेद की हर पांडुलिपि खत्म हो जाए तो भी उसे संपूर्ण रूप में भारत में श्रोत्रियों की स्मरण शक्ति से प्राप्त कर सकते हैं (मिश्र, 2019, पृष्ठ 146-147)। इसी व्याख्यान में मैक्समूलर वाचिक परंपरा के समक्ष अपनी अनूदित रचनाओं की कमियों को स्वयं एक उदाहरण के साथ स्वीकार करते हैं, "भारत के देशी छात्र वेद को कंठस्थ कर लेते हैं और वे इसे अपने गुरु से सीखते हैं, किसी पांडुलिपि से नहीं और मेरे छपे संस्करण (अनूदित ऋग्वेद) से तो कतई नहीं! ऑक्सफोर्ड में मेरे कमरे में मेरी ऐसे छात्रों से भेंट हुई जो न केवल इन ऋचाओं को दोहरा सकते थे, बल्कि उन्होंने इसे उचित उच्चारण के साथ दोहराया। उन्होंने ऋग्वेद के मेरे छपे संस्करण को जब देखा तो उन्होंने किंचित् हिचक के बिना उसकी एक गलती की ओर मेरा ध्यान दिलाया" (मिश्र, 2019, पृष्ठ 147)। अपने इस व्याख्यान में मैक्समूलर भारत की वाचिक परंपरा के संरक्षण को लेकर इन शब्दों में चिंता प्रकट करते हैं, "मुझे संदेह होने लगा है कि क्या यह परंपरा आगे भी सुरक्षित रह पाएगी? इसलिए मैं भारत स्थित मित्रों तथा आई.सी.एस. के पद पर नियुक्त होकर भारत जाने वाले अपने शिष्यों से सदा आग्रह करता रहता हूँ कि यह उनका परम पुनीत कर्तव्य है कि वे इन जीवित पुस्तकालयों से जो कुछ सीख सकते हैं, अवश्य सीख लें। यदि यह श्रोत्रिय समुदाय समाप्त हो गया तो इस प्राचीन साहित्य का बहुत बड़ा अंश उन्हीं के साथ समाप्त हो जाएगा।"

मंत्रोच्चार की प्रकृति व विकृति शैलियाँ

हजारों वर्षों के इतिहास में भारतभूमि में कई नई भाषाएँ बनीं और विलुप्त भी हुईं। विदेशी आक्रमणों के पश्चात् संस्कृत को राजाश्रय मिलना भी प्रायः बंद हो गया। कई बार तो इसे मिटाने की पुरजोर कोशिश भी की गई। बावजूद इसके, वाचिक परंपरा के माध्यम से संपूर्ण वैदिक साहित्य अपने मूल स्वरूप में आज हमारे सामने है। हजारों साल मौखिक रहने के बाद भी वेदों के कथ्य में थोड़ा भी परिवर्तन नहीं आया। वाचिक रूप में वेदों ने अपनी प्राचीन भाषा को भी अपरिवर्तित रखा, जिसे आज वैदिक संस्कृत कहा जाता है, जबकि लिखित रूप में आते-आते आधुनिक संस्कृत में कई बदलाव भी देखने को मिलते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता में चित्रात्मक लिखित शब्दों के अवशेष मिले हैं। ऐसे में यह मानना कठिन है कि वैदिकजन लेखन पद्धति से अनभिज्ञ थे। दूसरी ओर, वैदिककाल में संस्कृत जैसी विराट् साहित्यिक भाषा का लिखित रूप मौजूद न हो, यह मानना भी कठिन है। लेखन माध्यम उपलब्ध होते हुए भी वैदिकजनों ने वाचन के महत्त्व को जान लिया था। उन्होंने अपनी अमूल्य ज्ञान निधि को सिंचित करने और आगे की पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए वाचिक संचार की सुदृढ़ परंपरा विकसित की। वैदिक साहित्य को कंठस्थ करने के लिए एक पूरी वाचिक परंपरा विकसित हुई। मैक्समूलर का मत है कि कंठस्थ करने का यह काम अत्यंत अनुशासन के अंतर्गत होता था। मैक्समूलर ने अनुमान लगाया है कि अपने 8 वर्ष के विद्यार्थी जीवन में वेदपाठी बटुक ऋचाएँ, ब्राह्मण, अरण्यक, घरु समारोहों के नियम, शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, छंद और ज्योतिष ये 10 ग्रंथ कंठस्थ करने के लिए प्रतिदिन 12 पंक्तियों के हिसाब से 2496 कार्यदिवसों (चंद्रमास के अनुसार त्योहार एवं उत्सवों को छोड़कर) में कुल 30000 पंक्तियाँ याद करते थे। गुरुकुल मर्यादा के अनुसार याद करने की इस प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की लिखित सामग्री का उपयोग अनुचित माना जाता था (तत्वम्, 2023)।

वैदिक साहित्य को वाचिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए मंत्रोच्चार की कई विशेष शैलियाँ विकसित हुईं। प्रकृति और विकृति शैली के अंतर्गत मूल मंत्र को कुल 11 अलग-अलग तरह से उच्चारित किया जाता है, ताकि उसका मूल स्वरूप आसानी से याद हो जाए।

1. प्रकृति

प्रकृति शैली मंत्रोच्चार की अपेक्षाकृत सरल शैली है। प्रारंभिक दौर में मंत्रों को कंठस्थ करने के लिए इस शैली को उपयोग में लाया जाता है। श्रोत्रिय परंपरा में प्रकृति शैली को पुनः तीन भागों में बाँटा गया है।

अ.) वाक् पाठ या संहितापाठ : मंत्र को उसके प्राकृतिक क्रम में पढ़ा जाता है। आसान भाषा में कहें तो जैसा लिखा है, बिल्कुल वैसा ही पढ़ा जाता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद के पहले मंत्र को देखिए—

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्युजम् ।

ब.) पदपाठ : प्रकृति शैली में ही स्मरण की दृष्टि से पदपाठ का चलन आया। इस शैली में मंत्र के सभी शब्दों को तोड़-तोड़कर प्राकृतिक क्रम में ही उच्चारित करते हैं। इस शैली में मंत्रोच्चार से मंत्र के हरेक शब्द का अर्थ समझने और उन्हें स्मरण करने में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद के पहले मंत्र को पुनः देखिए—

अग्निम् । ईळे । पुरः । हितं । यज्ञस्य । देवम् । ऋत्विजम् ।

स.) क्रमपाठ : इस प्रकृति शैली में मंत्रों के शब्दों का समायोजन इस क्रम में होता है—

शब्द 1 + शब्द 2 । शब्द 2 + शब्द 3 । शब्द 3 + शब्द 4…यही क्रम मंत्र के अंतिम शब्द तक चलता रहता है।

उदाहरण के लिए ऋग्वेद के प्रथम मंत्र को पुनः देखिए—

अग्निमीळे । ईळे पुरोहितं । पुरोहितं यज्ञस्य । पुरोहितम् इति पुरः
हितम् । यज्ञस्य देवमृत्युजम् ।

2. विकृति

मंत्रोच्चार की विकृति शैलियों के विषय में 400 ई. पू. के संस्कृत वैयाकरण व्याडि मुनि के ग्रंथ 'जटापटलाख्य' में यह श्लोक मिलता है, जिसमें 8 विकृति शैलियों का उल्लेख है—

जटा माला शिखा रेखा धवजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वाः महर्षिभिः॥

जटापाठ : इसमें मंत्र के शब्दों का क्रम कुछ इस प्रकार होता है—

1, 2, 2, 1, 1, 2
2, 3, 3, 2, 2, 3
3, 4, 4, 3, 3, 4
4, 5, 5, 4, 4, 5
5, 6, 6, 5, 5, 6

उदाहरण के लिए ऋग्वेद के प्रथम मंत्र को एक बार पुनः जटापाठ में देखिए—

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे।
ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् ईळे ईळे पुरोहितम्।
पुरोहितम् यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम् पुरोहितम् यज्ञस्य।
यज्ञस्य देवम् देवम् यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्----------।।इत्यादिवत्।।

इसी प्रकार कुल 8 विकृति पाठ शैलियाँ हैं (जटापाठ, मालापाठ, शिखापाठ, रेखापाठ, ध्वजपाठ, दण्डपाठ, रथपाठ और घनपाठ)। सभी

में एक ही मंत्र को अलग-अलग क्रम में पढ़ा जाता है, जिसमें घनपाठ को सबसे कठिन माना गया है। इसमें मंत्र के शब्दों का क्रम कुछ इस प्रकार होता है—1-2, 2-1, 1-2-3, 3-2-1, 1-2-3 (यह क्रम आगे मंत्र के शब्दों की संख्या के अनुसार बढ़ता जाता है, इस वजह से घनपाठ का स्वरूप मूल मंत्र के मुकाबले काफी बड़ा हो जाता है।)

जब संस्कृत साहित्य का अध्ययन कर रहा कोई बालक मूल मंत्र को 11 अलग-अलग शैलियों में उच्चारित और स्मरण करता है तो उसके लिए मूल मंत्र अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। यह बिल्कुल ऐसा ही है, जैसे कमर में टायर बाँधकर दौड़ने का अभ्यास करने से असल दौड़ में बिना वजन दौड़ना आसान लगता है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि वैदिककाल में साहित्य स्मरण का कार्य पूरे मनोयोग से किया जाता था। यह एक प्रकार का 'फुल टाइम वर्क' था। वेदपाठी सदैव खुले जल को ही ग्रहण करते थे और सूर्योदय से पूर्व उठते थे। उनका ऐसा मत था कि ऐसे जल प्राणवायु से परिपूर्ण होते हैं, जो स्मरण शक्ति को बढ़ाते हैं। इसी प्रकार वेदपाठियों में कई कठिन आचार-विचार और नियमों का प्रचलन हुआ। वैदिक साहित्य को याद करना एक प्रकार का विशेषीकृत कार्य बन गया, जिसके लिए निश्चित लोग, आधुनिक भाषा में कहें तो 'प्रोफेशनल' होते थे। कालांतर में इस तथ्य को गलत ढंग से प्रस्तुत किया गया। प्रचारित किया गया कि महिलाओं और कथित निम्न वर्ग के लोगों को वेदपाठ का अधिकार नहीं था, जबकि वैदिककाल में सार्पराज्ञी, लोपामुद्रा, सरस्वती, गायत्री, आपालात्रेयी, यमी वैवस्वती, इन्द्राणी, श्रद्धा-कामायनी, घोषा, गोधा, विश्ववारा आदि अनेक ब्रह्मवादिनी हुई हैं, जो स्वयं मंत्रद्रष्टा थीं। अथर्ववेद में भी महिलाओं के वेदपाठी होने का उल्लेख मिलता है। "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" (अथर्व. 11.5.18) अर्थात्, जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके अपने सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं, ठीक वैसे ही लड़कियाँ भी वेदादि शास्त्रों को पढ़, पूर्णविद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके पूर्ण होवें। दूसरी ओर, महर्षि वेदव्यास व महर्षि वाल्मीकि जैसे कथित निम्न वर्ग से संबंध रखने वाले ऋषियों ने सनातन धर्म के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। ऐसे में महिलाओं व कथित निम्न वर्ग को वेदपाठ का अधिकार न होने की बात मिथ्या साबित होती है। जे. एस. यादव ने इसे संवाद के दो पक्षों में असमानता से जोड़ा है। उनका मत है कि साधारणीकरण की प्रक्रिया में विशेषज्ञता की आवश्यकता के कारण शुरुआती दौर में श्रम विभाजन का चलन हुआ होगा, जो कालांतर में विद्रूप होकर ऊँच-नीच के सामाजिक विभाजन के रूप में सामने आया (यादव, 1984)।

शब्द ब्रह्म एवं वाक् देवी

भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति वाचिक रही हैं। वाक् के माध्यम से भारतीय ज्ञान निधि ने हजारों वर्ष पूरे भूगोल की यात्रा की। वाक्-रूपी नाव पर सवार भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति ने तमाम झंझावातों को पार किया, किंतु यह सब कैसे संभव हो पाया? इसका उत्तर जानने के लिए वैदिक पूर्वजों के 'शब्द' और 'वाक्' के प्रति अनुराग को जानना उपयोगी होगा। उन्होंने शब्द को साक्षात् ब्रह्म का रूप दिया, इस प्रकार 'शब्दब्रह्म' और 'नादब्रह्म' का उल्लेख आया। शब्दाद्वैतवाद मत के अनुसार शब्द ही ब्रह्म है। शब्द से ही पूरी सृष्टि की निर्मित्ति हुई है। यह पूरा जगत् शब्दमय है और यह शब्द की ही प्रेरणा से गतिशील है। महती स्फोट प्रक्रिया से ही इस जगत् की उत्पत्ति हुई तथा इसका विनाश भी शब्द के साथ होगा (शर्मा, 2015)।

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतवायदक्षरम् ।
विवर्तते अर्थभावेन प्रक्रिया जगतोयतः।।

अर्थात् शब्द रूपी ब्रह्म अनादि, विनाश रहित और अक्षर (नष्ट न होने वाला) है तथा उसकी विवर्त प्रक्रिया से ही यह जगत् भासित होता है। उसी प्रकार भर्तृहरि कृत 'वाक्यपदीय' की प्रथम कारिका में शब्दतत्त्व को अनादि और अनंत तथा अक्षर ब्रह्म कहा गया है। इसी परारूप ब्रह्म से संसार के पदार्थों की उत्पत्ति तथा व्यवहार विवर्तरूप में माना गया है। दूसरी ओर, वैदिक साहित्य में वाक् देवी का उल्लेख मिलता है, जो दिव्य वाणी का साकार रूप हैं। ये वाक् देवी कवियों और दूरदर्शी लोगों में प्रवेश करती हैं। जिन पर वे कृपा करती हैं, उन्हें अभिव्यक्ति और ऊर्जा देती हैं (शर्मा, 2015)।

वाचिक परंपरा का क्षय और मिशनरी गतिविधियाँ

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित लेखक और साहित्य अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. चंद्रशेखर कंबार 'योजना' के फरवरी, 2021 अंक में 'मौखिक परंपरा और भारतीय साहित्य' शीर्षक के अपने लेख में लिखते हैं कि प्राचीन भारतीय साहित्य का वृहत् अंश मौखिक अर्थात् बोले गए शब्द का अभिव्यक्त स्वरूप है और जहाँ तक उसके संरक्षण का प्रश्न है, वह भी मौखिक परंपरा से संबंध रखता है। सदियों तक चलते आए कठिन और गूढ़ वाचन के आधार पर एक भी अक्षर खोए बिना वेदों को संरक्षित रखा गया था। हमें यह तथ्य समझना होगा कि लेखन की आवश्यकताओं को ब्रिटिश अदालतों ने सशक्तता प्रदान की, क्योंकि अँग्रेज स्थानीय गवाहों के बयानों पर विश्वास नहीं कर सकते थे। साथ ही, हमें यह भी मानना होगा कि पश्चिमी सभ्यता पुस्तक केंद्रित है, परंतु भारतीय संस्कृति के संदर्भ में पुस्तक वैसा अधिकार एवं प्रभाव नहीं रखता। ऐसा समाज, जहाँ बोला गया शब्द सर्वोपरि और नैतिक प्रभुत्व रखती है, उस समाज से भिन्न होता है जहाँ लिखित शब्द को सत्य का दस्तावेज माना जाता है। ऐसे समाज में विवादों एवं झगड़ों के समय बड़े-बूढ़ों के संदर्भ दिए जाते हैं (कंबार, 2021, पृष्ठ 6-9)।

शब्द को प्रमाण मानने और उसे साक्षात् ब्रह्म मानने वाले देश में समय के साथ इसका महत्त्व कम होता गया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय वाचिक परंपरा का क्षय हुआ। इस संदर्भ में ब्रिटिश अदालतों एवं मिशनरी प्रेस की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मैक्समूलर लिखते हैं कि भारत में काम करने वाले अँग्रेज सिविल सर्वेंट के मन में यह बात दृढ़ता से बैठी है कि सभी भारतीय झूठे होते हैं और उनकी बातों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। मैक्समूलर अपनी किताब 'इंडिया : व्हाट कैन इट टीच अस' में भारतीयों के बारे में तत्कालीन ब्रिटिश शासकों की सोच को 1817 में प्रकाशित जेम्स मिल की 'हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया' के माध्यम से उद्धृत करते हैं। श्वेत श्रेष्ठताबोध से ग्रस्त ब्रिटिश अधिकारियों और बौद्धिकों का मानना था कि भारतीय कमतर नस्ल से संबंधित हैं और उनमें नैतिकता का सर्वथा अभाव होता है। वे स्वभाव से मुकदमेबाज होते हैं और छोटे-छोटे मामलों को भी अदालत में ले आते हैं। ऐसे में उनकी बातों पर भरोसा नहीं किया जा सकता (मिश्र पृष्ठ 44-45)। दूसरी ओर, इन्हीं दिनों विलियम कैरी, जोशुआ मार्शमैन और विलियम वार्ड के नेतृत्व में स्थापित सेरामपुर

मिशनरी का काम भी जोरों पर था। देश भर में फैले मिशनरी प्रेस संस्कृत को दोयम दर्जे की भाषा और प्राचीन भारतीय वाङ्मय को मिथ्या साबित करने की मुहिम में लगे थे। वाचिक रूप से चली आ रही परंपरा के सामने उन्होंने सुंदर अक्षरों में छपे (कई बार सचित्र भी) बाइबल को पेश किया। ब्रिटिश अदालतों का भारतीयों की गवाही पर संदेह और मिशनरी प्रेस के लिखित प्रचार का भारतीय जनमानस पर व्यापक प्रभाव हुआ। कालांतर में भारतीय भी इसी सोच से ग्रस्त हो गए और वाचिक इतिहास को मिथ्या, दंतकथा आदि की संज्ञा दी गई। यह आरोप भी लगाया गया कि भारत में इतिहास संग्रह की परंपरा का अभाव है।

वाचिक परंपरा : वर्तमान एवं भविष्य

स्वतंत्र भारत में पिछले कुछ दशकों में संचार की वाचिक परंपरा को लेकर एक सकारात्मक बदलाव देखने को मिला है। विद्यानिवास मिश्र, जगराम सिंह आदि विद्वानों ने इस विषय पर महती लेखन कार्य किया है, जिसके परिणामस्वरूप स्वयं की वाणी पर संदेह करने वाली मिशनरी औपनिवेशिक सोच में भी बदलाव आया है। किंतु, अकादमिक जगत् और इतिहास लेखन में आज भी 'ऐसा कहाँ लिखा है, दिखाओ!' की सोच विद्यमान है। दूसरी ओर, 7 नवंबर, 2003 को यूनेस्को ने वैदिक मंत्रोच्चार की मौखिक परंपरा को मानवता की अमूर्त विरासत घोषित किया। पेरिस में हुई निर्णायक मंडल की एक बैठक में यूनेस्को के तत्कालीन महानिदेशक श्री कोइचिरो मत्सूरा ने भारत में वेदों के मंत्रोच्चार को विरासत का उत्कृष्ट उदाहरण और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का रूप घोषित किया। इस संबंध में यूनेस्को की आधिकारिक वेबसाइट पर उल्लेख मिलता है कि इस परंपरा का मूल्य न केवल इसके मौखिक साहित्य की समृद्ध सामग्री में निहित है, बल्कि हजारों वर्षों से ग्रंथों को अक्षुण्ण बनाए रखने में ऋषियों द्वारा अपनाई गई सरल तकनीकों में भी निहित है। इस परंपरा में मंत्रों के उच्चारण और अर्थ को अपरिवर्तित रखने के लिए वेदपाठियों को बचपन से कठिन अभ्यास कराया जाता है, जिसके चलते संपूर्ण वैदिक साहित्य हजारों वर्षों से अनवरत रही (यूनेस्को, *n.d.*)।

निष्कर्ष

तथ्यों से स्पष्ट है कि संचार की वाचिक परंपरा भारतीय संस्कृति की वाहिका रही है। भारतीय संचार की वाचिक परंपरा विश्व में अद्वितीय है। वाचिक परंपरा ही भारतवंशियों को उनके हजारों सालों के इतिहास से जोड़कर रखे हुए है। नालंदा के महान् पुस्तकालय के जलने के बाद भी यदि भारतीय ज्ञानकोष हमारे पूर्वजों के मन में सुरक्षित रहे और हम तक पहुँचे तो इसका श्रेय वाचिक परंपरा को जाता है। वैदिक ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व संचार की जिस सतत वाचिक परंपरा का विकास किया, वह आज भी कई रूप में हमारे काम आ सकती है। सर्वविदित है कि बोले गए हजारों शब्दों में गिने-चुने ही शब्द लिखित रूप ले पाते हैं। ऐसे में यदि आधुनिक संचार में लेखन के साथ-साथ वाचिक परंपरा का सहारा लिया जाए तो एक संचारक के रूप में ज्ञान के स्रोत कई गुना बढ़ जाएँगे। इसके लिए आवश्यक है कि संचार की वाचिक परंपरा में व्याप्त ज्ञानकोष का संरक्षण तथा इसे आगे की पीढ़ी तक पहुँचाने के प्रयत्न किए जाएँ। इस दिशा में मीडिया शिक्षण एवं शोध संस्थानों में भारतीय ज्ञान परंपरा (विशेष रूप से भारतीय संचार परंपरा के संबंध में) का अध्ययन-अध्यापन व शोध अत्यंत आवश्यक है, ताकि नई पीढ़ी के संचारकों के पास ज्ञान के अधिक स्रोत हों, वे वाचिक परंपरा में व्याप्त विपुल ज्ञान भंडार को संदर्भ के रूप में संप्रेषित कर सकें। ऐसा होने से भारत के वाचिक इतिहास व संस्कृति को बल मिलेगा। ऐसी स्थिति में वाचिक परंपरा में व्याप्त तथ्यों को मिथ्या मानने के अभिशाप से भी मुक्ति मिलेगी। पिछले दिनों इस दिशा में काफी प्रयत्न हुए हैं। नई शिक्षा नीति-2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा को विभिन्न पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करने की बात कही गई है। इस दिशा में और भी प्रयास अपेक्षित हैं।

संदर्भ

उपाध्याय, वी. (15 जुलाई, 2021). लोक संचार का सांस्कृतिक पक्ष. न्यूज 18: https://hindi.news18.com/blogs/vinay-upadhyay/public-communication-revolution-media-new-education-policy-rabindranath-tagore-university-indian-culture-nodakm-3657657.html से दिनांक 16 नवंबर, 2024 को पुन:प्राप्त.

कंबार, सी. (2021, फरवरी). मौखिक परंपरा और भारतीय साहित्य. योजना, नई दिल्ली, पृष्ठ 6-9.

तत्त्वम्. (1 फरवरी, 2023). वैदिक ओरल ट्रेडिशन—वेदाज, वेदांगाज एंड उपनिषद [वीडियो]. यूट्यूब. https://www.youtube.com/watch?v=v15G6SZay6w से दिनांक 15 नवंबर, 2024 को पुन:प्राप्त.

दीपक, जे. एस. (10 जून, 2023). जे साई दीपक एक्प्लेंड वैल्यू ऑफ ओरल ट्रैडिशन [वीडियो]. यूट्यूब. https://www.youtube.com/watch?v=jvjQqBcuo2M से दिनांक 20 नवंबर, 2024 को पुन:प्राप्त.

मिश्र, एस. के. *(n.d.)*. वैदिक हेरिटेज. https://vedicheritage.gov.in/pdf/ved_vedang_gp_23.pdf से पुन:प्राप्त.

मिश्र, वी. (2017). *भारतीयता की पहचान*. दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

सिंह, जे. (2020). *भारत दर्शन*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

मिश्र, एम. (अनुवादक). (2019). *भारत हमें क्या सिखा सकता है*. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन (मूल कृति मैक्समूलर)

यूनेस्को. *(n.d.)*. ट्रैडिशन ऑफ वैदिक चांटिंग. यूनेस्को : https://ich.unesco.org/en/RL/tradition-of-vedic-chanting-00062 से पुन:प्राप्त.

वर्मा, पी.के. (2010). *बिकमिंग इंडियन : द अनफिनिश्ड रिवोल्यूशन ऑफ कल्चर एंड आइडेंटिटी*. दिल्ली : पेंगुइन

शर्मा, पी. (2015). भृतहरि द्वारा प्रतिपादित शब्दब्रह्म का स्वरूप. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 556, 557.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 29-37, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

'मत्स्य पुराण' में वर्णित जंबूद्वीप का अध्ययन

डॉ. विक्रांत शर्मा[1]

सारांश

पुराण भारतीय संस्कृति, जीवन मूल्यों और मनुष्यों के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। ये हमें अपनी गौरवशाली विरासत से परिचित कराते हैं। यह भी कह सकते हैं कि पुराणों ने हमें अपनी सनातन संस्कृति से जोड़कर रखा है। यही वजह है कि विगत शताब्दियों में भले ही भारतीय संस्कृति पर असंख्य आघात हुए और विदेशी आक्रांताओं ने उसे नष्ट करने की तमाम कोशिशें कीं, परंतु सनातन संस्कृति आज भी अपनी नींव पर मजबूती के साथ खड़ी है। प्रत्येक सनातनी हिंदू किसी भी धार्मिक अनुष्ठान की शुरुआत करने से पहले एक संकल्प बोलता है (....भारतवर्षे भरतखण्डे जम्बूद्वीपे आर्यावर्ते देशान्तर्गते....), जिसमें 'जंबूद्वीप' शब्द का प्रयोग होता है। लेकिन बहुत से लोगों को जंबूद्वीप के बारे में अब जानकारी नहीं है। हालाँकि लगभग सभी पुराणों में इसका जिक्र है। प्रस्तुत शोध पत्र में 'मत्स्य पुराण' में वर्णित जंबूद्वीप का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। मत्स्य पुराण में जंबूद्वीप की भौगोलिक और सांस्कृतिक जानकारी के साथ-साथ भारतवर्ष के साथ इसके संबंध का भी विस्तृत विवरण है। मत्स्य पुराण के अनुसार पृथ्वी को सात द्वीपों में बाँटा गया है, जिसमें जंबूद्वीप सभी द्वीपों में सबसे छोटा द्वीप है। यह सभी द्वीपों के मध्य में स्थित है तथा इसके चारों ओर लवण सागर का विस्तार है। जंबूद्वीप पृथ्वी के केंद्र में स्थित है। सभी द्वीपों में जंबूद्वीप को सबसे सुंदर द्वीप बताया गया है। संपूर्ण जंबूद्वीप नौ वर्षों/देशों में विभाजित है। इस द्वीप को कर्मभूमि बताया गया है, जिसमें देवता भी अवतार लेने के लिए लालायित रहते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के परिणामस्वरूप अब संचार में भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने का जो प्रयास हो रहा है, उसमें जंबूद्वीप को भी समझना आवश्यक है। खासतौर से रणनीतिक संचार के विद्यार्थियों के लिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय है, क्योंकि यह पूरे विश्व को प्राचीन भारत से जोड़ता है। कूटनीति में भारत की 'सॉफ्ट पॉवर' को समझने में यह सहायता करता है।

संकेत शब्द : मत्स्य पुराण, जंबूद्वीप, वर्ष, भारतवर्ष, आर्यावर्त, संस्कृति, रणनीतिक संचार, कूटनीति, सॉफ्ट पॉवर, भारतीय ज्ञान परंपरा

प्रस्तावना

जंबूद्वीप भारतीय संस्कृति, जीवन मूल्यों और जनमानस के साथ गहराई से जुड़ा हुआ विषय है। भारतवर्ष जंबूद्वीप का भाग है। जंबूद्वीप ने भारत की प्राचीनता और ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं की धारा को संरक्षित किया है। इसका विशेष महत्त्व इस बात से पता चलता है कि जब भी भारत में कोई सनातनी हिंदू कोई धार्मिक अनुष्ठान आयोजित करता है तो अनुष्ठान आरंभ करने से पूर्व वह एक संकल्प लेता है। वास्तव में इस संकल्प के बिना कोई भी शुभ कार्य या पूजा-पाठ पूर्ण नहीं माना जाता है। यह संकल्प इन शब्दों के साथ आरंभ होता है—"ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य अद्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेत वाराहकल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथमचरणे भारतवर्षे भरतखण्डे जम्बूद्वीपे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते…" (शर्मा, 1992)। इसमें संबंधित व्यक्ति से जुड़ी दूसरी जानकारियों को जोड़कर इसे पूर्ण किया जाता है। उन जानकारियों में पूजा करवाने वाले व्यक्ति के बारे मूल बातों, यानी वह जंबूद्वीप के भारतवर्ष में, भारतवर्ष के आर्यावर्त में, आर्यावर्त के किस राज्य, जिले, गाँव आदि में रहता है, उसका गोत्र आदि क्या है; इस सबका विवरण रहता है। यह संकल्प स्मरण कराता है कि पौराणिक समय में सर्वप्रथम जंबूद्वीप था, उसी में भरतखंड या भारत देश है और उसी में आर्यावर्त उसका एक भाग है। यह बताता है कि जंबूद्वीप और भारत में पौराणिक समय से ही महत्त्वपूर्ण संबंध है। इस कारण जंबूद्वीप को समझना आवश्यक है। मत्स्य पुराण में जंबूद्वीप और भारतवर्ष के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है।

हमारी वर्तमान पीढ़ी अपने प्राचीन गौरवशाली इतिहास से अनभिज्ञ होती जा रही है। जो इतिहास उसे पढ़ाया जाता है वह उसका स्वत्व भाव नष्ट करता है। इस कारण वह अपने इतिहास को छोड़कर शेष सब कुछ जानने का प्रयास करता है। हिंदी भाषा में तो समस्या और भी अधिक है। जंबूद्वीप को समझने के लिए हिंदी में कोई अच्छी पुस्तक उपलब्ध नहीं है, जो इसकी भौगोलिक सीमाओं, संस्कृति, सामाजिक और आर्थिक जीवन और लोगों के रहन-सहन के बारे में सटीक जानकारी प्रदान कर सके। जो पुस्तकें उपलब्ध हैं, उनमें थोड़ी-थोड़ी जानकारी है, पर वह भी विभिन्न स्थानों पर बिखरी हुई है। ऐसे में, जंबूद्वीप पर शोध आवश्यक है, ताकि सारी जानकारी को एक स्थान पर एकत्र किया जा सके। जंबूद्वीप आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्ञान का एक बड़ा स्रोत है। यह हमारी सांस्कृतिक पहचान को भी मजबूत करता है।

साहित्य पुनरावलोकन

महर्षि वेद व्यास (2078) प्रणीत 'मत्स्य पुराण' में जंबूद्वीप का विस्तृत भौगोलिक विवरण दिया गया है। इस पुराण के अध्याय 113 में जंबूद्वीप की सीमाओं का वर्णन है। इसमें जंबूद्वीप के पर्वतों तथा वर्षों का भी वर्णन है। मत्स्य पुराण में बताया गया है कि कौन-सा पर्वत कहाँ पर स्थित है और कौन-सा पर्वत 'वर्ष पर्वत' है। इसके साथ यह भी बताया गया है कि कौन-सा 'वर्ष पर्वत' कौन-कौन से 'वर्षों' को विभाजित करता है। इस पुराण के अध्याय 114 में भारतवर्ष तथा इसकी सीमाओं का वर्णन है। इसके पश्चात् हिमालय पर्वत का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् अन्य द्वीपों का वर्णन है। पृथ्वी से संबंधित अन्य महत्त्वपूर्ण जानकारी भी मत्स्य पुराण में दी गई है। इस दृष्टि से यह पुराण प्रस्तुत शोध के लिए अत्यंत उपयोगी है।

[1] स्वतंत्र शोधकर्ता, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश. ईमेल : vikranthpu@gmail.com

एस. एम. अली (1966) ने अपनी पुस्तक 'द जियोग्राफी ऑफ द पुराणाज' में जंबूद्वीप के बारे में बताया है। एस. एम. अली ने इस पुस्तक में जंबूद्वीप के साथ-साथ अन्य द्वीपों तथा भारतवर्ष के बारे में भी विस्तार से जानकारी दी है। यह पुस्तक प्रस्तुत अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसमें जंबूद्वीप की भौगोलिक सीमाओं का पौराणिक ग्रंथों, रामायण तथा महाभारत के अनुरूप वर्णन किया गया है। एस. एम. अली ने पुराणों के अनुसार जंबूद्वीप तथा वर्तमान समय को जोड़ने की कोशिश की है, जिसमें वे बहुत हद तक सफल रहे हैं। इस पुस्तक में द्वीपों के अलावा उस समय की नदियों, पर्वतों, सागरों का भी वर्णन है। एस. एम. अली ने इस पुस्तक में जंबूद्वीप से जुड़े चित्रों का प्रयोग करके कई पहलुओं को स्पष्ट करने की कोशिश की है।

महर्षि वेद व्यास प्रणीत (संवत् 2076) तथा मुनिलाल गुप्त द्वारा अनुवादित 'विष्णु पुराण' में भी जंबूद्वीप से संबंधित कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन है। माना गया है कि 'विष्णु पुराण' में पृथ्वी के भूगोल की व्याख्या विस्तृत रूप में की गई है। विष्णु पुराण में जंबूद्वीप के साथ-साथ अन्य द्वीपों का भी भौगोलिक वर्णन है। इसके अलावा इन द्वीपों के सामाजिक और धार्मिक जीवन का भी वर्णन है। जंबूद्वीप के संदर्भ में यह पुराण बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके द्वितीय अंश में भूगोल का विवरण, जंबूद्वीप का नौ वर्षों में विभाजन, भारतादि नौ खंडों का विभाग तथा सभी द्वीपों का वर्णन किया गया है। इन द्वीपों का नाम कैसे पड़ा, उस समय की भौगोलिक स्थिति कैसी थी, इसका भी विस्तृत रूप से वर्णन इस ग्रंथ में है।

महर्षि वेद व्यास प्रणीत 'श्रीमद्भागवत महापुराण' (2076) में भी जंबूद्वीप का वर्णन है। इस पुराण के पंचम स्कंद में जंबूद्वीप के भौगोलिक स्वरूप की व्याख्या की गई है। इस पुराण में जंबूद्वीप के साथ-साथ मेरु पर्वत तथा अन्य वर्ष पर्वतों का उल्लेख है। सभी महाद्वीप कौन-कौन से महासागरों से घिरे हैं, यह भी इसमें व्याख्या की गई है। यह भी बताया गया है कि इन द्वीपों पर कौन-से वृक्ष हैं, जिनके नाम पर इनका नामकरण हुआ है। इस पुराण में भारतवर्ष का भी वर्णन है, जिसे कर्मभूमि माना गया है।

महर्षि वेद व्यास प्रणीत मार्कंडेय पुराण और स्कंद पुराण में पृथ्वी के निर्माण का विवरण अन्य पुराणों जैसा ही है। जंबूद्वीप तथा सप्तद्वीपों का वर्णन भी सभी पुराणों में एक जैसा है। अन्य पुराणों में जंबूद्वीप का वर्णन तो है, लेकिन बहुत ही संक्षिप्त है। 'अग्नि पुराण' में जंबूद्वीप का वर्णन बहुत संक्षिप्त है। इस पुराण में भारतवर्ष का भी वर्णन किया गया है। 'श्रीलिंगमहापुराण' में जंबूद्वीप के साथ-साथ अन्य द्वीपों का भी विस्तृत वर्णन है। इस पुराण में मेरु पर्वत, जंबूद्वीप के वर्ष तथा अन्य वर्ष पर्वतों का विवरण मत्स्य पुराण, वायु पुराण, विष्णु पुराण, मार्कंडेय पुराण और स्कंद पुराण जैसा ही है। पद्म पुराण में जंबूद्वीप का बहुत ही थोड़ा वर्णन है, लेकिन इस पुराण में भारतवर्ष का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। श्री वराह पुराण, श्री वामन पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, कूर्म पुराण, नारद पुराण और गरुड़ पुराण में भी जंबूद्वीप की व्याख्या मत्स्य, वायु, विष्णु, मार्कंडेय और स्कंद पुराण जैसी ही है, लेकिन यह संक्षिप्त रूप में है। इन सभी पुराणों ने पृथ्वी पर सात द्वीपों की अवधारणा को ही माना है तथा जंबूद्वीप को पृथ्वी का सबसे बीच का द्वीप माना है। सभी पुराणों में जंबूद्वीप के मध्य में मेरु पर्वत का वर्णन है, जो जंबूद्वीप के साथ-साथ पृथ्वी का भी केंद्र है। सभी 'वर्ष पर्वत' भी एक जैसे हैं तथा उनकी सीमाएँ, लंबाई, ऊँचाई तथा चौड़ाई भी लगभग सभी पुराणों में एक जैसी है।

श्री ज्ञानमती माता (2012) ने अपनी पुस्तक 'जंबूद्वीप' में जंबूद्वीप की विस्तृत व्याख्या की है। इस पुस्तक में जंबूद्वीप के बारे में जैन समाज का दृष्टिकोण बताया गया है। जैन पंथ में भी जंबूद्वीप का विशेष महत्त्व है। उन्होंने इस पुस्तक में जंबूद्वीप की पूरी सरंचना, उसकी भौगोलिक सीमाओं का तथा जंबूद्वीप से संबंधित छोटी से छोटी जानकारी दी है। जंबूद्वीप के साथ-साथ लेखक ने इसके वर्षों, पर्वतों, वनों का भी वर्णन किया है। जैनेंद्र वर्णी (1985) ने 'जैनेंद्र सिद्धांत कोश भाग-3' में पृथ्वी को तीन भागों में बाँटा है—अधोलोक, मध्यलोक व ऊर्ध्वलोक। जंबूद्वीप को लेखक ने मध्य भाग में रखा हुआ है, जिसके मध्य में मेरु पर्वत स्थित है। पुस्तक में लेखक ने जंबूद्वीप के वर्षों तथा पर्वतों का विवरण भी दिया है। जंबू वृक्ष की अधिकता के कारण ही इस द्वीप का नाम जंबूद्वीप पड़ा, यह भी बताया गया है।

डॉ. ए. के. चतुर्वेदी (2023) ने अपनी पुस्तक 'आइडिया ऑफ भारत' में माना है कि वैदिक ग्रंथ, रामायण, महाभारत, बौद्धों और जैनियों की कृतियाँ एवं पुराण प्राचीन भारतीय भौगोलिक इतिहास के मुख्य स्रोत हैं। लेखक ने मत्स्य पुराण, भागवत पुराण एवं ब्रह्म पुराण का उदाहरण देकर बताया है कि विश्व को सात द्वीपों (सप्त-द्वीप वसुमती) में विभाजित किया गया था, जो सात घेरे वाले महासागरों से अलग हो गए थे। लेखक ने इन सात द्वीपों का वर्णन भी किया है। जंबूद्वीप के संदर्भ में यह पुस्तक उपयोगी है। एन. आर. श्रीनिवासन (2018) ने अपने ब्लॉग में जंबूद्वीप, मेरु और संकल्प नाम से छपे लेख में जंबूद्वीप और उसकी भौगोलिक संरचना की बात की है। लेखक ने इसमें जंबूद्वीप के वर्षों अन्य द्वीपों के साथ-साथ मेरु पर्वत के बारे में भी बात की है। अपने इस लेख में लेखक ने, हिंदुओं के धार्मिक कार्य में जो संकल्प लिया जाता है, उसका क्या महत्त्व है, उसका वर्णन भी किया है। लेखक ने बताया है कि किस प्रकार इस संकल्प के बिना कोई भी धार्मिक अनुष्ठान पूरा नहीं माना जाता है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी (2009) ने अपनी पुस्तक 'भाषा साहित्य और देश' में जंबूद्वीप और मेरु पर्वत का वर्णन किया है। इसमें लेखक ने मेरु पर्वत की स्थिति को स्पष्ट किया है। अजय पाल सिंह और श्रीश सुदर्शन विश्वकर्मा (2021) ने 'प्राचीन भारत का इतिहास' में भारतवर्ष का विस्तृत वर्णन किया है। लेखकों ने बताया है कि भारतवर्ष के अन्य भी कई नाम प्रचलित थे। इसे भारत, आर्यावर्त, जंबूद्वीप, हिंदोस्तान के अलावा इंडिया भी कहा जाता था। पुस्तक में लेखकों ने जैन, पुराणों, फारसी, यूनानी मत के अनुसार भारत को क्या कहा जाता था, के बारे में भी बताया है। भारत के संदर्भ में पुस्तक उपयोगी है। राजश्री मालवीय (2020) ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति की खोज' में जंबूद्वीप पर मेरु व मानव की स्थिति का वर्णन किया है। लेखक ने महाभारत व पुराणों में जंबूद्वीप के विशेष वर्णन के बारे में बताया है। लेखक ने माना है कि ये सात द्वीप कमल की पंखुरियों की तरह हैं तथा जंबूद्वीप इसमें सबसे अंदर का भाग है। पुस्तक में जंबूद्वीप के पर्वतों का भी विवरण दिया गया है। इसके साथ-साथ जंबूद्वीप की मानव जातियों, खान-पान आदि के बारे में भी बताया गया है। जंबूद्वीप के अलावा जो अन्य द्वीप है, उनका भी विवरण इसमें किया गया है।

निर्मलेंदु कुमार (2019) ने अपनी पुस्तक 'प्रयागराज और कुंभ' में भारतवर्ष के बारे विस्तृत जानकारी दी है। लेखक ने पुस्तक में भारत के जितने भी प्राचीन नाम थे, उनका विवरण दिया है। उन्होंने माना है कि सम्राट अशोक के समय भी जंबूद्वीप प्रचलित था तथा उनके साम्राज्य को

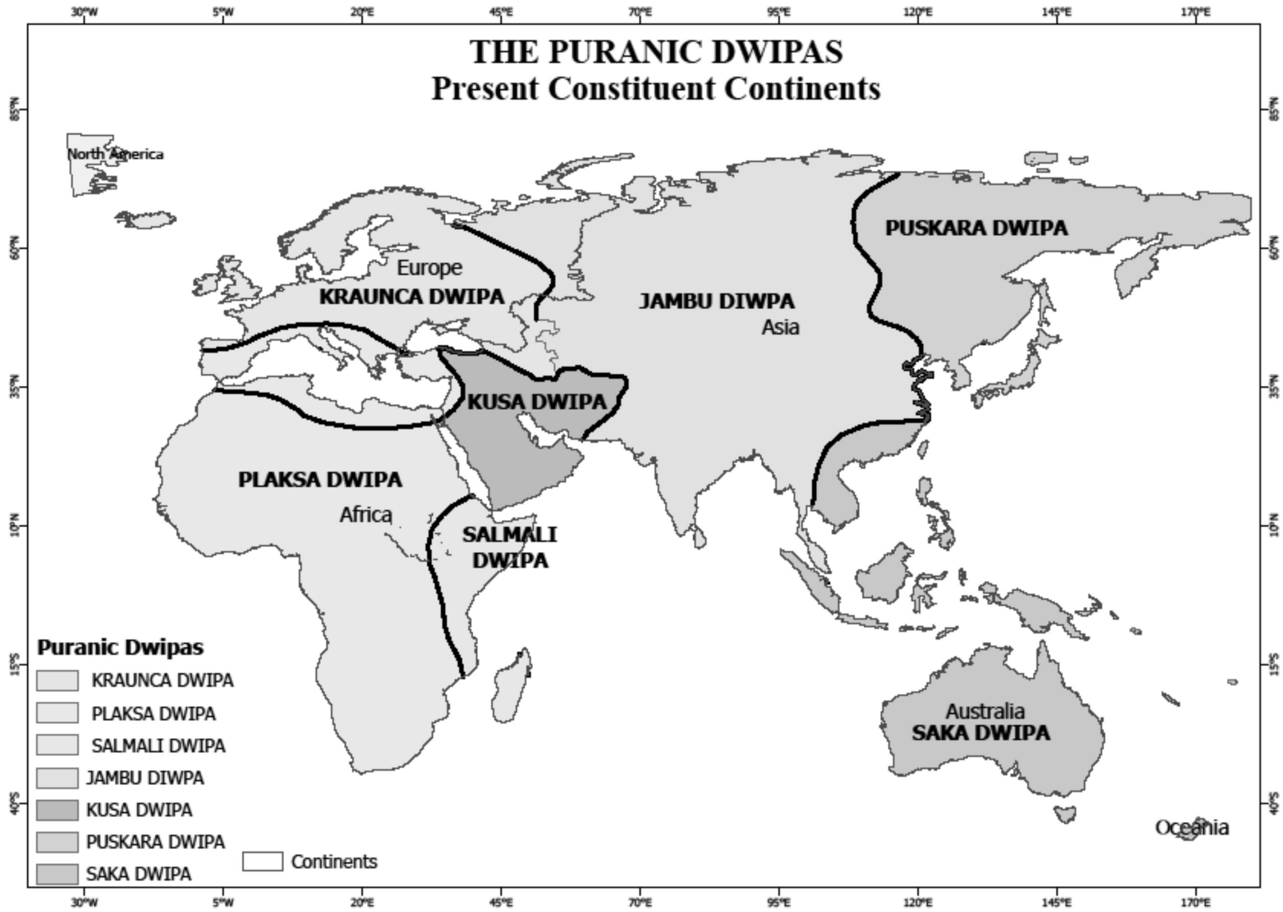

चित्र 1 : पौराणिक जंबूद्वीप का मानचित्र (स्रोत : एस. एम. अली, 1966, पृष्ठ 48)

ही जंबूद्वीप कहा जाता था, जिसका पता उनके समय के शिलाखंडों से चलता है। पुस्तक में लेखक ने जंबूद्वीप के साथ-साथ अन्य द्वीपों का वर्णन भी किया है। यह पुस्तक जंबूद्वीप और भारतवर्ष के अध्ययन के संदर्भ में अत्यंत उपयोगी है। लेखक ने जंबूद्वीप का अध्ययन अलग-अलग धर्मों के आधार पर किया है। रविशंकर भारतवंशी (2021) ने अपनी पुस्तक 'विश्व-राष्ट्र : भारतवर्ष' में सात महाद्वीपों का वर्णन किया है। लेखक ने पुस्तक में संपूर्ण विश्व में वैदिक संस्कृति का वर्णन किया है। उन्होंने पुरातात्त्विक और सांस्कृतिक प्रमाणों के माध्यम से बताया है कि किस प्रकार विश्व के देशों में वैदिक संस्कृति का प्रभाव था। यह पुस्तक इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह संपूर्ण जंबूद्वीप के साथ-साथ समस्त विश्व में वैदिक संस्कृति के होने का प्रमाण देती है। उन्होंने भारतवर्ष को विश्व-राष्ट्र की संज्ञा देने से पूर्व उसके शाब्दिक अर्थ को भी समझाया है।

शोध अंतराल

जंबूद्वीप पर पूर्व में कुछ शोध कार्य हुए हैं। कुछ भारतीय और विदेशी लेखकों ने इस पर कार्य किया है, लेकिन वह कार्य अपने आप में बहुत सीमित है। जंबूद्वीप अपने आप में एक बहुत बड़े ऐतिहासिक महत्त्व को समेटे हुए है। जंबूद्वीप के इसी महत्त्व को देखते हुए इसके विविध आयामों के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु शोध आवश्यक है। जंबूद्वीप पर शोध का एक उद्देश्य भूतकाल और वर्तमान को जोड़ना भी है, ताकि समय के साथ जंबूद्वीप के भूतकाल और वर्तमान में जो दूरी बन गई है उसे भरा जा सके। साहित्य अवलोकन के पश्चात् स्पष्ट है कि इस विषय पर पूर्व में जंबूद्वीप पर जो कार्य हुए हैं, वे अलग-अलग पुस्तकों में बिखरे हुए हैं। इससे जंबूद्वीप के बारे में जानकारी प्राप्त करना कठिन हो जाता है, इसलिए प्रस्तुत शोध आवश्यक है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में ऐतिहासिक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। इसमें द्वितीयक स्रोतों से सामग्री एकत्रित करके उसकी व्याख्या की गई है। ऐतिहासिक शोध विधि के अतिरिक्त इस शोध में चित्र बनाने के लिए मानचित्र कला दृश्यता विधि (कार्टोग्राफिक विजुलाइजेशन मेथड) का प्रयोग भी किया गया है।

शोध उदेश्य

1. मत्स्य पुराण में जंबूद्वीप के बारे में दी गई जानकारी का अध्ययन करना।
2. जंबूद्वीप की वर्तमान प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

जंबूद्वीप का भौगोलिक विवरण

'मत्स्य पुराण' में जंबूद्वीप के भूगोल का विस्तृत वर्णन है। यह विवरण भगवान् सूत जी ने अपने श्रीमुख से किया है। भगवान् सूत जी कहते हैं—"हे ऋषियो! द्वीपों के तो हजारों भेद हैं, परंतु वे सभी इन्हीं सात प्रधान द्वीपों के अंतर्गत हैं। इस संपूर्ण जगत् का क्रमशः वर्णन करना संभव नहीं है, मैं केवल सात द्वीपों का ही वर्णन कर रहा हूँ। साथ ही मनुष्य के अनुमानानुसार उनका

प्रमाण भी बता रहा हूँ, क्योंकि जो अचिंत्य भाव हैं, उन्हें बुद्धि, ज्ञान एवं अनुमान द्वारा ही सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। जो प्रकृति से परे है, वही अचिंत्य का लक्षण है। अब मैं सातों द्वीपों का वर्णन आरंभ कर रहा हूँ। इनमें सर्वप्रथम योजन के परिमाण से जंबूद्वीप का जितना बड़ा विस्तृत मंडल है, उसे बता रहा हूँ, सुनिए''—

योजनानां सहस्राणि शतं द्वीपस्य विस्तरः।
नानाजनपदाकीर्णं पुरैश्च विविधैः शुभैः॥ 8
सिद्धचारणसङ्कीर्णं पर्वतैरूपशोभितम्।
सर्वधातुपिनद्धैस्तैः शिलाजालसमुद्गतैः॥ 9
पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिस्तु समन्ततः।
प्रागायता महापार्श्वाः षडिमे वर्षपर्वताः॥ 10
अवगाह्य ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ।
हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान्॥ 11
सर्वतः सुमुखश्चापि निषधः पर्वतो महान्।
(मत्स्य पुराण, पृष्ठ-377-378)

अर्थात् जंबूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। यह अनेकों प्रकार के सुंदर देशों एवं नगरों से परिपूर्ण है। इसमें सिद्ध और चारण निवास करते हैं। यह सभी प्रकार की धातुओं से संयुक्त एवं शिला समूहों से समन्वित पर्वतों द्वारा सुशोभित है। उन पर्वतों से निकलने वाली नदियों से यह चारों ओर से व्याप्त है। इसमें पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए अत्यंत विस्तृत छह वर्ष पर्वत हैं। इसमें पूर्व और पश्चिम, दोनों ओर के समुद्रों तक फैला हुआ हिमवान् नामक पर्वत है, जो सदा बर्फ से ढका रहता है। इसके बाद सुवर्ण से व्याप्त हेमकूट नामक पर्वत है। तत्पश्चात् जो चारों ओर से देखने में अत्यंत सुंदर है, वह निषध नामक महान् पर्वत है।

मेरु और नील पर्वतों का विवरण

सूत जी मेरु और नील पर्वतों का विवरण इस प्रकार देते हैं :

चातुर्वर्ण्यस्तु सौवर्णोमेरुश्चोल्वमयः स्मृतः।
चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णं च चतुर्दिशम्॥ 12
वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समाहितः।
नानावर्णैः समः पार्श्वैः प्रजापतिगुणान्वितः॥ 13
नाभिबन्धनसम्भूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
पूर्वतः श्वेतवर्णस्तु ब्राह्मण्यं तस्य तेन वै॥ 14
पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते।
भृङ्गिपत्रनिभश्चैव पश्चिमेन समन्वितः।
तेनास्य शूद्रता सिद्धा मेरोर्नामार्थकर्मतः॥ 15
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः।
तेनास्य क्षत्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्तिताः॥ 16
नलश्च वैढूर्यमयः श्वेतः पीतो हिरण्मयः।
मयूरबर्हवर्णश्च शातकौम्भः स शृङ्गवान् ॥ 17
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः।
तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्रमुच्यते॥ 18
(मत्स्य पुराण, पृष्ठ-378)

इसके एक ओर सुवर्णमय मेरुपर्वत है, जिसके चारों पार्श्वभाग चार रंगों के हैं और जो उल्बमय (गर्भाशय के समान) कहा जाता है। यह चारों दिशाओं में चौबीस हजार योजन तक फैला हुआ है। इसका ऊपरी भाग वृत्त की आकृति का अर्थात् गोलाकार है तथा निचला भाग चौकोर है। इसके पार्श्वभाग नाना प्रकार की रंग-बिरंगी समतल भूमियों से युक्त हैं, जिससे यह प्रजापति के गुणों से युक्त-सा दिखता है। यह अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के नाभि-बंधन से उद्भूत हुआ है। इसका पूर्वी भाग श्वेत रंग का है, इसी से इसकी ब्राह्मणता झलकती है। इसका दक्षिणी भाग पीले रंग का है, इसी से इसमें वैश्यत्व प्रतीत होता है। इसका पश्चिमी भाग भँवरे के पंख सरीखा काला है, इसी से इसकी शूद्रता तथा अर्थ और काम, दोनों दृष्टियों से मेरु के नाम की सार्थकता सिद्ध होती है। इसका उत्तरी भाग स्वभाव से ही लाल रंग का है, इसी से इसका क्षत्रियत्व सूचित होता है। इस प्रकार मेरु के चारों रंगों का विवरण बताया गया है। तदनंतर नील पर्वत है, जो वैदूर्यमणि से व्याप्त है। पुनः श्वेत पर्वत है, जो सुवर्णमय होने के कारण पीले रंग का है तथा सुवर्णमय शिखरों से सुशोभित शृंगवान् पर्वत है, जो मयूर पिच्छ सरीखे चित्र-विचित्र रंगों वाला है। ये सभी पर्वतराज सदा सिद्धों एवं चारणों से सेवित होते रहते हैं।

जंबूद्वीप का विवरण

सूत जी तत्पश्चात् जंबूद्वीप का विवरण देते हैं :

मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समन्ततः।
चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णो योजनैः समः॥ 19
मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः।
वेद्यर्द्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्धं तथोत्तरम्॥ 20
वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां वा वर्षपर्वताः।
द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनैर्दक्षिणोत्तरम्॥ 21
जम्बुद्वीपस्य विस्तारस्तेषामायाम् उच्यते।
नीलश्च निषधश्चैव तेषां हीनाश्च ये परे॥ 22
श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्शृङ्गवांश्च यः।
जम्बूद्वीपप्रमाणेन ऋषभः परिकीर्त्यते॥ 23
तस्माद् द्वादशभागेन हेमकूटोऽपि हीयते।
हिमवान् विंशभागेन तस्मादेव प्रहीयते।
अष्टाशीतिसहस्राणि हेमकूटो महागिरिः॥ 24
अशीतिर्हिमवाञ्शैल आयतः पूर्वपश्चिमे।
द्वीपस्य मण्डलीभावाद् ह्रासवृद्धी प्रकीर्तिते॥ 25
वर्षाणां पर्वतानां च यथाभेदं तथोत्तरम्।
तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै॥ 26
प्रपातविषमेस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु।
सप्त तानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम्॥ 27
वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः।
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्॥ 28
(मत्स्य पुराण, पृष्ठ -378, 379 एवं विष्णु पुराण, पृष्ठ-114)

अर्थात्, पृथ्वी के मध्य भाग में इलावृत नामक वर्ष है, जो महामेरु पर्वत के चारों ओर फैला हुआ है। यह चौबीस हजार योजन की समतल भूमि में विस्तृत है। इसके मध्य भाग में महामेरु नामक पर्वत है, जो धूमरहित अग्नि के समान चमकता रहता है। मेरु पर्वत का आधा दक्षिणी भाग दक्षिण मेरु और आधा उत्तरी भाग उत्तर मेरु के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार, जो सात वर्ष बताए गए हैं, उनमें पृथक्-पृथक् सात वर्ष पर्वत हैं, जो दक्षिण

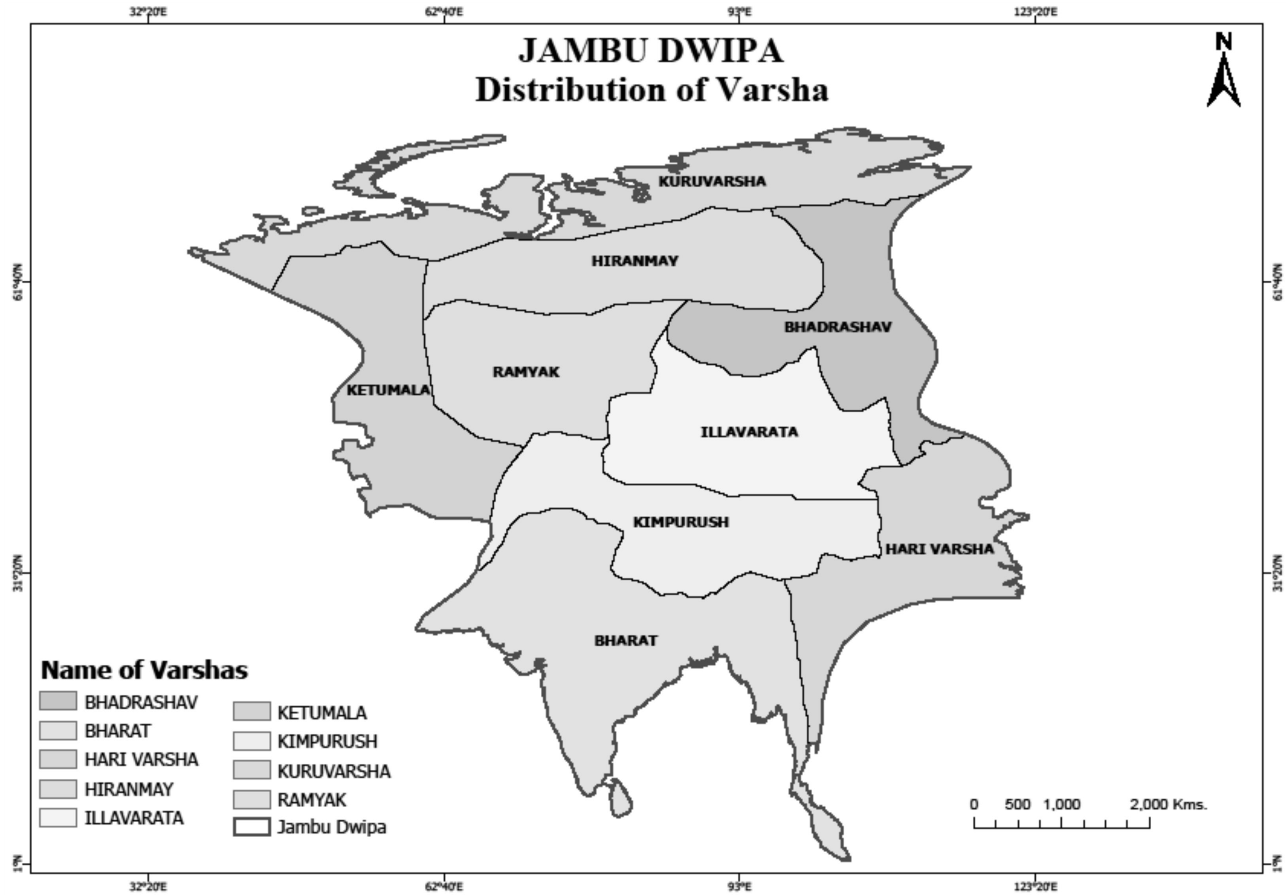

चित्र- 2 : पुराणों के अनुसार जंबूद्वीप के वर्षों का मानचित्र

से उत्तर तक दो-दो हजार योजन के परिमाण में फैले हुए हैं। जंबूद्वीप का विस्तार इन्हीं वर्षों तथा पर्वतों के विस्तार के बराबर कहा जाता है। इनमें नील और निषध, ये दोनों विशाल पर्वत हैं तथा श्वेत, हेमकूट, हिमवान् और शृंगवान्, ये अपेक्षाकृत उनसे छोटे हैं। ऋषभ पर्वत जंबूद्वीप के समान ही विस्तार वाला बताया जाता है। हेमकूट पर्वत ऋषभ पर्वत के बारहवें भाग से न्यून है और हिमवान् उसके बीसवें अंश से कम है। हेमकूट नामक महान् पर्वत अट्ठासी हजार योजन के परिमाण वाला कहा जाता है तथा हिमवान् पर्वत पूर्व से पश्चिम तक अस्सी हजार योजन में फैला हुआ है। जंबूद्वीप के मंडलाकार में स्थित होने के कारण इन पर्वतों का न्यूनाधिक्य विवरण बताया गया है। पर्वतों की ही भाँति 'वर्षों' में भी भिन्नता है। वे सभी एक-दूसरे से उत्तर दिशा की ओर फैले हुए हैं। इनके बीच में देश बसे हुए हैं, जो सात वर्षों में विभक्त हैं। ये सभी वर्ष ऐसे पर्वतों से घिरे हुए हैं, जो झरनों के कारण अगम्य हैं। इसी प्रकार सात नदियों के विभाजन से ये परस्पर गमनागमन रहित हैं। इन वर्षों में सब ओर अनेकों जातियों के प्राणी निवास करते हैं। यह हिमवान् पर्वत से संबंधित वर्ष भारतवर्ष के नाम से विख्यात है।

सूत जी जंबूद्वीप कर विवरण देते हुए आगे बताते हैं :

नानावर्णः स पार्श्वेषु पूर्वान्ते श्वेत उच्यते।
पीतं तु दक्षिणं तस्य भृङ्गिपत्रनिभं परम।
उत्तरं तस्य रक्तं वै इति वर्णसमन्वितः॥ 38
मेरुस्तु शुशुभे दिव्यो राजवत् स तु वेष्टितः।
आदित्यतरुणाभासो विधूम् इव पावकः॥ 39
योजनानां सहस्राणि चतुराशीति सूच्छ्रितः।
प्रविष्टः षोडशाधस्तादष्टाविंशतिविस्तृतः॥ 40
विस्तराद् द्विगुणश्चास्य परीणाहः समन्ततः।
स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः॥ 41
भुवनैरावृतः सर्वैर्जातरूपपरिष्कृतैः।
तत्र देवगणाश्चैव गन्धर्वासुरराक्षसाः।
शैलराजे प्रमोदन्ते सर्वतोऽप्सरसां गणैः॥ 42
स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः।
यस्येमे चतुरो देशा नानापार्श्वेषु संस्थिताः॥ 43
भद्राश्वं भारतं चैव केतुमालं च पश्चिमे।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः॥ 44
विष्कम्भपर्वतास्तद्वन्मन्दरो गन्ध मादनः।
विपुलश्च सुपार्श्वश्च सर्वरत्नविभूषिताः॥ 45
अरुणोदं मानसं च सितोदं भद्रसञ्ज्ञितम्।
तेषामुपरि चत्वारि सरांसि च वनानि च॥ 46
तथा भद्रकदम्बस्तु पर्वते गन्ध मादने।
जम्बूवृक्षस्तथाश्वत्थो विपुलेऽथ वटः परम॥ 47

(मत्स्य पुराण, पृष्ठ-379-380)

अर्थात् उसके पार्श्वभाग अनेक प्रकार के रंगों से विभूषित हैं। इसका पूर्वीय भाग श्वेत, दक्षिणी भाग पीला, पश्चिम का भाग भ्रमर के पंख के समान काला और उत्तरी हिस्सा लाल है। इस प्रकार यह चार रंगों से युक्त कहा जाता है। इस तरह चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ दिव्य पर्वत

मेरु राजा की भाँति सुशोभित होता है। इसकी कांति तरुण सूर्य अर्थात् मध्याह्नकालिक सूर्य की सी है। यह धूमरहित अग्नि के सदृश चमकता रहता है। पृथ्वी के ऊपर इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह सोलह हजार योजन तक पृथ्वी के नीचे धँसा हुआ है और अट्ठाईस हजार योजन तक फैला हुआ है। चारों ओर से इसका फैलाव विस्तार से दुगुना है। यह महान् दिव्य पर्वत मेरु दिव्य औषधियों से परिपूर्ण तथा सभी सुवर्णमय भुवनों से घिरा हुआ है। इस पर्वतराज पर देवगण, गंधर्व, असुर और राक्षस सर्वत्र अप्सराओं के साथ रहकर आनंद का अनुभव करते हैं। यह मेरु प्राणियों के निमित्त कारणभूत भुवनों से घिरा हुआ है। इसके विभिन्न पार्श्व भागों में चार देश अवस्थित हैं। उनके नाम हैं—(पूर्व में) भद्राश्व, (दक्षिण में) भारत, (पश्चिम में) केतुमाल और (उत्तर में) किए हुए पुण्यों के आश्रय स्थान रूप उत्तरकुरु। इसी प्रकार उसकी चारों दिशाओं में सभी प्रकार के रत्नों से विभूषित मंदर, गंधमादन, विपुल और सुपार्श्व नामक विष्कंभ पर्वत भी विद्यमान हैं। उनके ऊपर अरुणोद, मानस, सितोद और भद्र नामक सरोवर और अनेकों वन हैं तथा मंदर पर्वत पर भद्रकदंब, गंधमादन पर जामुन, विपुल पर पीपल और सुपार्श्व पर बरगद का वृक्ष है।

जंबूद्वीप के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का चित्रण

मत्स्य पुराण में जंबूद्वीप के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का चित्रण निम्न शब्दों में किया गया है :

गन्ध मादनपार्श्वे तु पश्चिमेऽमरगण्डिकः।
द्वात्रिंशतिसहस्राणि योजनैः सर्वतः समः॥ 48
तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः परिश्रुताः।
तत्र कालानलाः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः॥ 49
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः।
तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः पत्रभासुरः॥ 50
तस्य पीत्वा फलरसं सञ्जीवन्ति समायुतम्।
तस्य माल्यवतः पार्श्वे पूर्वे पूर्वा तु गण्डिका।
द्वात्रिंशच्च सहस्राणि तत्रापि शतमुच्यते॥ 51
भद्राश्वस्तत्र विज्ञेयो नित्यं मुदितमानसः।
भद्रमालवनं तत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः॥ 52
तत्र ते पुरुषाः श्वेता महासत्त्वा महाबलाः।
स्त्रियः कुमुदवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः॥ 53
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः।
चन्द्रशीतलगात्राश्च स्त्रियो ह्युत्पलगन्धिकाः॥ 54
दशवर्षसहस्राणि आयुस्तेषामनामयम्।
कालाम्रस्य रसं पीत्वा ते सर्वे स्थिरयौवनाः॥ 55

(मत्स्य पुराण, पृष्ठ 380-381)

मत्स्य पुराण में जंबूद्वीप के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का विस्तार से वर्णन करते हुए कहा गया है कि गंध मादन के पश्चिम भाग में अमरगंडिक नामक पर्वत है, जो बत्तीस हजार योजन की समतल भूमि से संपन्न है। वहाँ के शुभ कर्म करने वाले निवासी केतुमाल नाम से विख्यात हैं। वे सभी कालाग्नि के समान भयानक, महान् सत्त्वसंपन्न एवं महाबली होते हैं। वहाँ की स्त्रियों के शरीर का रंग लाल कमल के समान होता है। वे परम सुंदरी एवं देखने में आह्लादकारिणी होती हैं। उस पर कटहल का एक महान् दिव्य वृक्ष है, जिसके पत्ते अत्यंत चमकीले हैं। उसके फलों का रस पीकर वहाँ के निवासी दस हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं। माल्यवान् के पूर्वी भाग में पूर्वगंडिका नामक पर्वत है, जो बत्तीस हजार योजन लंबा और सौ योजन चौड़ा कहा जाता है। उसकी तलहटी में भद्राश्व नामक देश है, जहाँ के निवासी सदा प्रसन्न मन रहते हैं। वहाँ भद्रमाल नामक वन है, जिसमें कालाम्र नामक एक महान् वृक्ष है। वहाँ के निवासी पुरुष गोरे, महान् सत्त्वसंपन्न एवं महाबली होते हैं तथा कुछ स्त्रियाँ कुमुदिनी की सी कांतिवाली, परम सुंदरी एवं देखने में प्रिय लगने वाली होती हैं। इसी प्रकार कुछ स्त्रियाँ गौर वर्णवाली होती हैं, उनकी कांति चंद्रमा सरीखी उज्ज्वल होती है और उनका मुख पूर्णिमा के चंद्रमा के समान चमकदार होता है। उनका शरीर भी चंद्रमा के समान शीतल होता है और उससे कमल की सी गंध निकलती है। कालाम्र वृक्षों के फलों का रस पान कर वहाँ के सभी निवासियों की युवावस्था स्थिर बनी रहती है और वे निरोग रहकर दस हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं।

जंबूद्वीप के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का विवरण आगे भी है, जो निम्न शब्दों में व्यक्त किया गया है :

शृणुध्वं यानि वर्षाणि पूर्वोक्तानि च वै मया।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु॥ 60
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते यत्र वै प्रजाः।
रतिप्रधाना विमला जायन्ते यत्र मानवाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते प्रियदर्शनाः॥ 61
तत्रापि च महावृक्षो न्यग्रोधो रोहिणो महान्।
तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्तयन्ति हि॥ 62
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
जीवन्ति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः॥ 63
उत्तरेण तु श्वेतस्य पार्श्वे शृङ्गस्य दक्षिणे।
वर्षं हिरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी॥ 64
महाबला महासत्त्वा नित्यं मुदितमानसाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे च प्रियदर्शनाः॥ 65
एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः।
आयुष्प्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च॥ 66
तस्मिन् वर्षे महावृक्षो लकुचः पत्रसंश्रयः।
तस्य पीत्वा फलरसं तत्र जीवन्ति मानवाः॥ 67
शृङ्गासाह्वस्य शृङ्गाणि त्रीणि तानि महान्ति वै।
एकं मणियुतं तत्र एकं तु कनकान्वितम्।
सर्वरत्नमयं चैकं भुवनैरूपशोभितम्॥ 68

(मत्स्य पुराण, पृष्ठ 381-382)

नील पर्वत से दक्षिण और निषध पर्वत से उत्तर दिशा में रमणक नामक वर्ष है, जहाँ की प्रजाएँ विशेष विलासिनी एवं स्वच्छ गौरवर्ण वाली होती हैं। वहाँ उत्पन्न हुए सारे मानव गौरवर्ण, कुलीन और देखने में प्रिय लगने वाले होते हैं। वहाँ भी रोहिण नामक एक महान् बरगद का वृक्ष है, उसी के फलों का रसपान करके वहाँ के निवासी जीवन निर्वाह करते हैं। वे सभी महान् भाग्यशाली श्रेष्ठ पुरुष सदा प्रसन्न रहते हुए ग्यारह हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं। श्वेत पर्वत के उत्तर की ओर शृंगवान् पर्वत के दक्षिण पार्श्व में हिरण्वत नामक वर्ष है, जहाँ हैरण्वती नाम की नदी प्रवाहित होती है। वहाँ के निवासी श्रेष्ठ मानव, महाबली, महापराक्रमी, नित्य प्रसन्नचित्त, गौरवर्ण,

कुलीन और देखने में मनोरम होते हैं। वे बारह हजार पाँच सौ वर्षों की आयु तक जीवित रहते हैं। उस वर्ष में पत्तों से आच्छादित लकुच (बड़हर) का एक महान् वृक्ष है, उसके फलों का रस पीकर वहाँ के मानव जीवनयापन करते हैं। शृंगवान् पर्वत के तीन शिखर हैं, जो बड़े ऊँचे-ऊँचे हैं। उनमें से एक मणि से परिपूर्ण, एक सुवर्ण से संपन्न और एक सर्वरत्नमय एवं भुवनों से सुशोभित है।

यह विवरण आगे भी है :

उत्तरे चास्य शृङ्गस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे।
कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम्॥ 69
तत्र वृक्षा मधुफला दिव्यामृतमयाऽऽपगाः।
वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलैश्चाभरणानि च॥ 70
सर्वकामप्रदातारः केचिद् वृक्षा मनोरमाः।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः।
ये रक्षन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चामृतोपमम्॥ 71
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मा काञ्चनवालुका।
सर्वत्र सुखसंस्पर्शा निःशब्दाः पवनाः शुभाः॥ 72
देवलोकच्च्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते स्थिरयौवनाः॥ 73
मिथुनानि प्रजायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः।
तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्ति ह्यमृतोपमम्॥ 74
एकाहाज्जायते युग्मं समं चैव विवर्धते।
समं रूपं च शीलं च समं चैव म्रियन्ति वै॥ 75
एकैकमनुरक्ताश्च चक्रवाकमिव ध्रुवम्।
अनामया हाशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः॥ 76
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
जीवन्ति च महासत्त्वा न चान्या स्त्री प्रवर्तते॥ 77

(मत्स्य पुराण, पृष्ठ 383)

शृंगवान् पर्वत के उत्तर और दक्षिण समुद्र-तट तक उत्तरकुरु नामक वर्ष है, जो परम पुण्यप्रद एवं सिद्धों द्वारा सुशोभित है। वहाँ नदियों में दिव्य अमृततुल्य जल प्रवाहित होता है। वृक्ष मधुसदृश मीठे फल वाले होते हैं और उन्हीं से वस्त्र, फल और आभूषणों की उत्पत्ति होती है। उनमें से कुछ वृक्ष तो अत्यंत सुंदर और संपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं तथा दूसरे कुछ ऐसे मनोहर वृक्ष हैं, जिनसे दूध निकलता है। वे सदा दूध और अमृततुल्य सुस्वादु छहों रसों की रक्षा करते हैं। वहाँ की सारी भूमि मणिमयी है। जिस पर सुवर्ण की महीन बालुका बिखरी रहती है। चारों ओर सुख स्पर्शवाली, शब्द रहित शीतल मंद सुगंध वायु बहती रहती है। वहाँ देवलोक से च्युत हुए धर्मात्मा मानव ही जन्म धारण करते हैं। वे सभी गौरवर्ण, कुलीन और जवानी से युक्त होते हैं। वे जोड़े के रूप में उत्पन्न होते हैं, उनमें स्त्रियाँ अप्सराओं की भाँति सुंदरी होती हैं। वे उन दूध से भरे हुए वृक्षों के अमृततुल्य दूध का पान करते हैं। वे प्राणी एक ही दिन जोड़े के रूप में उत्पन्न होते हैं, साथ-ही-साथ बढ़ते हैं, उनका रूप तथा शील स्वभाव एक सा होता है और वे एक साथ ही प्राण त्याग भी करते हैं। वे चक्रवाक की तरह निश्चित रूप से परस्पर अनुरक्त, निरोग, शोक रहित और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। वे महापराक्रमी मानव ग्यारह हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं। वहाँ कोई पुरुष दूसरा विवाह नहीं करता।

भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाली प्रजाओं का वर्णन

जंबूद्वीप के भारतवर्ष में उत्पन्न प्रजाओं के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का वर्णन इस प्रकार है :

अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः।
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते॥ 5
निरुक्तवचनाच्चैव वर्ष तद् भारतं स्मृतम्।
यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः॥ 6
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्मविधिः स्मृतः।
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोधत॥ 7
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णी गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः॥ 8
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः॥ 9

(मत्स्य पुराण, पृष्ठ 383-384)

भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाली प्रजाओं की सृष्टि करने तथा इनका भरण-पोषण करने के कारण मनु को भरत कहा जाता है। निरुक्त वचनों के आधार पर यह वर्ष (उन्हीं के नाम पर) भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ स्वर्ग, मोक्ष तथा इन दोनों के अंतर्वर्ती (भोग) पद की प्राप्ति होती है। इस भूतल पर भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी प्राणियों के लिए कर्म का विधान नहीं सुना जाता। इस भारतवर्ष के नौ भेद हैं, उनके नाम इंद्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गांधर्वद्वीप और वारुणद्वीप ये आठ तथा उनमें नौवाँ यह समुद्र से घिरा हुआ भारतद्वीप (या खंड) है। यह द्वीप दक्षिण से उत्तर तक एक हजार योजन में फैला हुआ है।

शुश्रूषवस्तु यद् विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः।
जम्बूवर्षः किंपुरुषः सुमहान् नन्दनोपमः॥ 63
दश वर्षसहस्राणि स्थितिः किंपुरुषे स्मृता।
जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः। 64
वर्षे किम्पुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः स्मृतः।
तस्य किम्पुरुषाः सर्वे पिबन्ति रसमुत्तमम्॥ 65
अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः।
सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसः स्मृताः॥ 66
ततः परं किंपुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्षते।
महारजतसङ्काशा जायन्ते यत्र मानवाः॥ 67
देवलोकच्च्युताः सर्वे बहुरूपाश्च सर्वशः।
हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम्॥ 68
न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम्।
एकादश सहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम्॥ 69
मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम्।
न तत्र सूर्यस्तपति न च जीर्यन्ति मानवाः॥ 70
चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः॥ 71
पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः।
जम्बूफलरसाहारा अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः॥ 72
देवलोकच्च्युताः सर्वे महारजतवाससः।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः॥ 73
आयुष्प्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्ष इलावृते।

मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण वा॥ 74
सुदर्शनो नाम महाजंबूवृक्षः सनातनः।
नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः॥ 75
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः।
योजनानां सहस्रं च शतधा च महान् पुनः। 76
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति।
तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति॥ 77
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः।
तं पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिलावृते॥ 78
जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान्।
न क्षुधा न क्लमो वापि न दुःखं च तथाविधम्॥ 79
तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम्।
इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते भासुरं च यत्॥ 80
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः।
स्कन्नं तु काञ्चनं शुभ्रं जायते देवभूषणम्॥ 81
तेषां मूत्रं पुरीषं वा दिक्ष्वष्टासु च सर्वशः।
ईश्वरानुग्रहाद् भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान्॥ 82
रक्षः पिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते।
हेमकूटे तु विज्ञेया गन्धर्वाः साप्सरोगणाः॥ 83
सर्वे नागा निषेवन्ते शेषवासुकितक्षकाः।
महामेरौ त्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञियाः शुभाः॥ 84
नीलवैदूर्ययुक्तेऽस्मिन् सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽवसन्।
दैत्यानां दानवानां च श्वेतः पर्वत उच्यते॥ 85
शृङ्गवान् पर्वतश्रेष्ठः पितॄणां प्रतिसञ्चरः।
इत्येतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भारते॥ 86
भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च।
तेषां वृद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषैः।
अशक्या परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेया च बुभूषता॥ 87

(मत्स्य पुराण, पृष्ठ 388-389)

जंबूवर्ष और किंपुरुषवर्ष दोनों अत्यंत विशाल एवं नंदन वन की भाँति शोभा संपन्न हैं। इनमें किंपुरुषवर्ष में मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष की बताई जाती है। वहाँ जन्म लेने वाले मनुष्य भलीभाँति तपाए हुए सुवर्ण की सी कांति वाले होते हैं। उस पुण्यमय किंपुरुषवर्ष में एक पाकड़ का वृक्ष बताया जाता है, जिससे सदा मधु टपकता रहता है। उसके उस उत्तम रस को सभी किंपुरुष निवासी पान करते हैं, जिसके कारण वे नीरोग, शोकरहित और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। वहाँ पुरुषों के शरीर का रंग सुवर्ण जैसा होता है और स्त्रियाँ अप्सराओं जैसी सुंदरी कही गई हैं। उस किंपुरुषवर्ष के बाद हरिवर्ष बताया जाता है। वहाँ सुवर्ण की सी कांति से युक्त शरीर वाले मानव उत्पन्न होते हैं। वे सभी देवलोक से च्युत हुए जीव होते हैं और उनके विभिन्न प्रकार के रूप होते हैं। हरिवर्ष में सभी मनुष्य मंगलमय इक्षु रस का पान करते हैं, जिससे उन्हें वृद्धावस्था बाधा नहीं पहुँचाती और वे चिरकाल तक जीवित रहते हैं। उनकी आयु का प्रमाण ग्यारह हजार वर्ष बताया जाता है। इनके बीच में इलावृत नामक वर्ष है, जिसका वर्णन पहले हो चुका है। वहाँ सूर्य का ताप नहीं होता। वहाँ के मानव भी वृद्ध नहीं होते। इलावृतवर्ष में नक्षत्रों सहित चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश नहीं होता। यहाँ पैदा होने वाले सभी मानवों के शरीर कमल के से कांतिमान् और उनका रंग कमल जैसा लाल होता है। उनके नेत्र कमल दल के समान विशाल होते हैं और उनके शरीर से कमल की सी गंध निकलती है। जामुन के फल का रस उनका आहार है। वे निस्पंदरहित एवं सुगंध युक्त होते हैं। उनके वस्त्र सुवर्ण के तारों से खचित होते हैं। देवलोक से च्युत हुए जीव ही यहाँ जन्म धारण करते हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष इलावृतवर्ष में पैदा होते हैं, वे तेरह हजार वर्षों की आयु तक जीवित रहते हैं।

सुदर्शन वृक्ष

मेरुगिरि के दक्षिण तथा निषध पर्वत के उत्तर भाग में सुदर्शन नाम का एक विशाल प्राचीन जामुन का वृक्ष है। वह सदा पुष्प और फलों से लदा रहता है। सिद्ध और चारण सदा उसका सेवन करते हैं। उसी वृक्ष के नाम पर यह द्वीप जंबूद्वीप के नाम से विख्यात हुआ है। उस वृक्षराज की ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है। वह महान् वृक्ष स्वर्गलोक तक व्याप्त है। उसके फलों का रस नदी रूप में प्रवाहित होता है। वह नदी मेरु की प्रदक्षिणा करके पुनः उसी जंबू वृक्ष के मूल पर पहुँचती है। इलावृतवर्ष में वहाँ के निवासी सदा हर्षपूर्वक उस जंबू रस का पान करते हैं। उस जंबू वृक्ष के फलों का रस पान करने के कारण वहाँ के निवासियों को वृद्धावस्था बाधा नहीं पहुँचाती, न उन्हें भूख लगती है और न थकावट ही प्रतीत होती है तथा न किसी प्रकार का दुख ही होता है। वहाँ जंबूनद नामक सुवर्ण पाया जाता है, जो देवताओं के लिए आभूषण के काम में आता है। वह इंद्रगोप (बीरबहूटी) के समान लाल और अत्यंत चमकीला होता है। उस वर्ष के सभी वृक्षों में इस जामुन वृक्ष के फलों का रस परम शुभकारक है। वह वृक्ष से टपकने पर निर्मल सुवर्ण बन जाता है, जिससे देवताओं के आभूषण बनते हैं। ईश्वर की कृपा से वहाँ की भूमि आठों दिशाओं में सब ओर इलावृत निवासियों के मूत्र, विष्ठा और मृत शरीरों को आत्मसात् कर लेती है। राक्षस, पिशाच और यक्ष, ये सभी हिमालय पर्वत पर निवास करते हैं। हेमकूट पर्वत पर अप्सराओं सहित गंधर्वों का निवास जानना चाहिए तथा शेष, वासुकि और तक्षक आदि सभी प्रधान नाग भी उस पर स्थित रहते हैं। महामेरु पर यज्ञ संबंधी मंगलमय तैंतीस देवता क्रीड़ा करते रहते हैं। नीलम एवं वैदूर्य मणियों से संपन्न नीलपर्वत पर सिद्धों और ब्रह्मर्षियों का निवास है। श्वेतपर्वत दैत्यों और दानवों का निवास स्थान बतलाया जाता है। पर्वत श्रेष्ठ शृंगवान् पितरों का विहारस्थल है। इस प्रकार भारतवर्ष के अंतर्गत इन नौ वर्षों का वर्णन है। इनमें प्राणी निवास करते हैं। ये परस्पर गतिमान् और स्थिर हैं। देवताओं और मनुष्यों ने अनेकों प्रकार से इनकी वृद्धि देखी है। उनकी गणना करना असंभव है, अतः मंगलार्थी मनुष्य को इन पर श्रद्धा रखनी चाहिए।

एस. एम. अली के अनुसार सूत जी और ऋषियों के बीच सामान्य संवाद के बाद यह पुराण मत्स्य या विष्णु के 'मत्स्य अवतार' के विवरण के साथ खुलता है, जिसमें उन्होंने मनु नामक राजा के साथ-साथ सभी चीजों के बीजों को एक चाप में पानी से संरक्षित किया है। बाढ़, जो प्रलय के मौसम में दुनिया भर में फैल जाती है। इस पुराण की सामग्री में कई शब्द हैं और बहुत सारी सामग्री महाभारत, विष्णु पुराण और पद्म पुराण में भी है। पुराण का भुवनकोश खंड अध्याय 113 से शुरू होता है और अनेक विषयों को शामिल करता है। अध्याय 113 जंबूद्वीप की सीमा, इसके पर्वत और वर्ष के बारे में विस्तृत जानकारी देता है। मत्स्य पुराण का अध्याय 114 भारतवर्ष भारत के बारे में जानकारी देता है तथा इसके साथ-साथ जंबूद्वीप और भारत के संबंध पर भी प्रकाश डालता है (अली, 1966, पृष्ठ 7)।

निष्कर्ष एवं विश्लेषण

मत्स्य पुराण के अध्ययन से स्पष्ट है कि जंबूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। यह द्वीप चारों ओर से लवण सागर से घिरा हुआ है। तदुपरांत अन्य द्वीप और महासागर हैं। जंबूद्वीप में पूरब से पश्चिम तक छह वर्ष पर्वत फैले हैं, जो इसे नौ वर्षों में विभाजित करते हैं। जंबूद्वीप के इन्हीं नौ वर्षों को 'देश' भी कहा जाता है। जंबूद्वीप के मध्य में स्वर्णमयी मेरु पर्वत स्थित है। मेरु पर्वत को पृथ्वी का केंद्र भी माना गया है। मत्स्य पुराण में जंबूद्वीप के छह वर्ष पर्वतों के साथ जंबूद्वीप के जो अन्य पर्वत हैं, उनका भी वर्णन है। इस पुराण में जंबूद्वीप को सबसे छोटा द्वीप बताया गया है, जो कि बहुत ही सुंदर है तथा सब तरफ से सुंदर देश और नगरों से परिपूर्ण है। इस द्वीप पर सिद्ध व चारण निवास करते हैं। जंबूद्वीप के नौ वर्षों में भाँति-भाँति के लोग निवास करते हैं। इन लोगों के खान-पान, रहन-सहन और जीवनशैली में भिन्नताएँ हैं। भारतवर्ष को छोड़कर अन्य सभी वर्षों के लोग दस हजार या इससे अधिक वर्षों तक जीवित रहते हैं। ये लोग अपने-अपने वर्षों में उपलब्ध दिव्य वृक्षों जैसे बरगद, कटहल, पाकड़, इक्षु रस, लकुच और जंबू जैसे वृक्षों का रस पीते हैं, जिस कारण ये निरोगी, शक्तिशाली और दीर्घायु होते हैं। जंबूद्वीप के सभी वर्षों के मानव सदैव प्रसन्न रहने वाले, श्रेष्ठ महाबली, महापराक्रमी और देखने में मनोरम होते हैं। भारतवर्ष, जो जंबूद्वीप का एक वर्ष है, की प्रजा के बारे में माना गया है कि इनके भरण-पोषण के कारण मनु को भरत कहा गया है तथा यह वर्ष उन्हीं के नाम पर भारतवर्ष कहलाया है। इसी वर्ष पर मोक्ष, स्वर्ग तथा भोग की प्राप्ति होती है। यह भी माना गया है कि भारतवर्ष के अलावा इस पृथ्वी पर कहीं भी प्राणियों के लिए कर्म का विधान नहीं है। जंबूद्वीप के वर्षों में भगवान् श्रीहरि विश्वरूप में सर्वत्र रहते हैं तथा उनके अनेकों अवतार अन्य रूपों में जैसे श्री विष्णु भगवान् भद्राश्ववर्ष में हयग्रीव रूप में, केतुमालवर्ष में वराह रूप में, और भारतवर्ष में कूर्मरूप से रहते हैं, भक्त प्रतिपालक श्रीगोविंद कुरुवर्ष में मत्स्य रूप से रहते हैं। जंबूद्वीप एक अत्यंत विस्तृत विषय है, जिस पर गहन अध्ययन की आवश्यकता है।

रणनीतिक संचार के विद्यार्थियों के लिए जंबूद्वीप का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। इससे भारत की विश्व के दूसरे देशों से प्राचीन निकटता का पता चलता है। साथ ही प्राचीन विश्व के बारे में जानकारी मिलती है। जंबूद्वीप वास्तव में हमारे अस्तित्व का उद्घोष है। हमें अपने गौरवशाली अतीत पर गर्व होना चाहिए। भारत नाम से संबंधित बातें विष्णु पुराण (2,1,31), वायु पुराण (33,52), लिंग पुराण (1,47,23), ब्रह्मांड पुराण (14,5,62), अग्नि पुराण (107,11,12) और मार्कंडेय पुराण (50,41) में भी आई हैं। जंबूद्वीप के जो नौ खंड बताए गए हैं उनमें इलावृत, भद्राश्व, किंपुरुष, भारत, हरि, केतुमाल, रम्यक, कुरु और हिरण्यमय हैं। इन संपूर्ण नौ खंडों में वर्तमान इजरायल से चीन, रूस और भारतवर्ष का क्षेत्र आता है। भारतवर्ष में पारस (ईरान), अफगानिस्तान, पाकिस्तान, हिंदुस्थान, नेपाल, तिब्बत, भूटान, म्यांमार, श्रीलंका, मालद्वीप, थाईलैंड, मलेशिया, इंडोनेशिया, कंबोडिया, वियतनाम, लाओस तक का क्षेत्र है। ये सभी देश एक समय भारत के ही अंग थे। काल के उतार-चढावों के बाद चाणक्य की बुद्धि से चंद्रगुप्त मौर्य ने भारतवर्ष को फिर से एकजुट किया था। सम्राट अशोक तक राज्य ठीक से चला, परंतु अशोक के बाद भारत का पुन: पतन होना शुरू हुआ। नए धर्म और संस्कृति के अस्तित्व में आने के बाद भारत पर हमलों का दौर शुरू हुआ और फिर धीरे-धीरे उसके हाथ से सिंगापुर, मलेशिया, ईरान, अफगानिस्तान आदि देश छूट गए। जंबूद्वीप के संबंध में यह जानकारी रणनीतिक संचार के विद्यार्थियों को भारत की सॉफ्ट पॉवर से अवगत कराती है। प्रस्तुत शोध पत्र में जंबूद्वीप के संबंध में संक्षिप्त जानकारी संकलित करने का प्रयास किया गया है। इसके विविध आयामों पर अभी विस्तृत शोध की आवश्यकता है।

संदर्भ

अली, एस. एम. (1966). *द जियोग्राफी ऑफ द पुराणाज*. नई दिल्ली : पीपल्स पब्लिशिंग हाउस.

कुमार, एन. (2019). *प्रयागराज और कुम्भ*. प्रयागराज : लोकभारती प्रकाशन.

चतुर्वेदी. ए. के. (2023). *आइडिया ऑफ भारत*. आगरा : एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन.

द्विवेदी, एच. पी. (2009). *भाषा साहित्य और देश*. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ.

भारतवंशी, आर. एस. (2021). *विश्व-राष्ट्र* : भारतवर्ष. उत्तर प्रदेश : उत्कर्ष प्रकाशन.

मति, जी. (2013). *जंबूद्वीप*. उत्तर प्रदेश : दिगंबर जैन त्रिलोक शोध संस्थान.

मालवीय, आर. (2020). *संस्कृति की खोज*. लूलू डॉट कॉम.

वर्णी. जे. (1985). *जैनेंद्र सिद्धांत कोश*. दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन.

वाल्मीकि, एम. (2076). *वामन पुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

वाल्मीकि, एम. (2078). *श्रीलिंग महापुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

वाल्मीकि, एम. (2079). *श्रीवराहपुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

वाल्मीकि, एम. (2076). *श्रीमद्भागवत-महापुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

वाल्मीकि, एम. (2078). *गरुड़ पुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

वाल्मीकि, एम. (2078). *नारदपुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

व्यास, वी. (2078). *मत्स्य पुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

व्यास, वी. (2079). *स्कंद पुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

व्यास, वी. (2078). *मार्कण्डेय पुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

व्यास, वी. (2079). *पद्म पुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

व्यास. वी. (2076). *श्री विष्णु पुराण* (मुनिलाल गुप्त). गोरखपुर : गीता प्रेस.

व्यास, वी. (2079). *ब्रह्मवैवर्त पुराण*. गोरखपुर : गीता प्रेस.

शर्मा, जे.के. (1992). *पुण्य भूमि भारत*. नई दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन.

श्रीनिवासन, एन. आर. (1 दिसंबर, 2018). जंबूद्वीप, मेरु और संकल्प https://nrsrini-blogspot-com.translate.goog/2018/12/v-behaviorurldefaultvmlo.html?m=1&_x_tr_sch=http&_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc से दिनांक 27 सितंबर, 2021 को पुनःप्राप्त.

सिंह, ए. पी. & विशवकर्मा, एस.एस. (2021). *प्राचीन भारत का इतिहास*. छत्तीसगढ़ : संकल्प पब्लिकेशन.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 38-44, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में मीडिया की भूमिका

डॉ. भानुप्रिया जयसवाल[1] और डॉ. पूर्वा कुमारी[2]

सारांश

बौद्ध धरोहर स्थलों का संरक्षण न केवल सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहरों को बचाने का एक महत्त्वपूर्ण कारक है, बल्कि यह समाज के समग्र विकास के लिए भी आवश्यक है, क्योंकि ये ऐतिहासिक विरासत का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। हालाँकि, ये स्थल शहरीकरण, पर्यटन, पर्यावरण क्षरण और अपर्याप्त संरक्षण प्रयासों के कारण निरंतर खतरे में हैं। वर्तमान समय में बौद्ध धरोहर स्थलों की स्थिति, संरक्षण प्रयासों की चुनौतियाँ और उनके महत्त्व पर ध्यान देने की आवश्यकता है और इस संदर्भ में मीडिया एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, क्योंकि वह समाज में जागरूकता पैदा करने, नीति निर्माताओं पर दबाव डालने और धरोहर स्थलों के संरक्षण के लिए सार्वजनिक समर्थन जुटाने में सहायक हो सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र विशेष रूप से बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में मीडिया के योगदान की जाँच करेगा और इसके अंतर्गत यह देखा जाएगा कि कैसे मीडिया धरोहर स्थलों की दुर्दशा, संरक्षण की पहल और संरक्षण की सफलता को समाज के सामने प्रस्तुत करता है। शोध का उद्देश्य यह समझना है कि मीडिया के माध्यम से बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में किस प्रकार से सुधार हो सकता है और उनके महत्त्व को वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर कैसे उजागर किया जा सकता है।

संकेत शब्द : बौद्ध धरोहर स्थल, विरासत संरक्षण, पर्यटन, मीडिया

प्रस्तावना

बौद्ध धरोहर स्थल मानवता के संदर्भ में सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं, जो विश्व के विभिन्न हिस्सों में फैले हुए हैं। भारत, नेपाल, श्रीलंका, थाईलैंड, म्याँमार, चीन, जापान और अन्य देशों में बौद्ध मत के ऐतिहासिक स्थलों की बड़ी संख्या है, जो न केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक हैं, बल्कि सांस्कृतिक धरोहर के महत्त्वपूर्ण संरक्षक भी हैं। इन स्थलों का संरक्षण एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है, जिसमें मीडिया एक सशक्त भूमिका निभा सकता है। मीडिया, चाहे वह प्रिंट हो, इलेक्ट्रॉनिक हो या डिजिटल, इन धरोहर स्थलों की स्थिति, उनकी सुरक्षा और उनके महत्त्व के बारे में जागरूकता फैलाने का एक सशक्त साधन है।

मीडिया का कार्य सिर्फ सूचना देना ही नहीं है, बल्कि समाज में जन चेतना फैलाना, लोगों को एकत्र करना और प्रशासन को बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण के मामले में प्रेरित करना भी है। मीडिया इन सभी पहलुओं को प्रभावी रुप से उजागर कर सकता है। उदाहरण के तौर पर, भारत में बोधगया, सारनाथ और कुशीनगर जैसे महत्त्वपूर्ण बौद्ध स्थल हैं, जिनका धार्मिक और ऐतिहासिक महत्त्व है। लेकिन अतीत में ये स्थल उपेक्षा और असंरक्षितता के कारण क्षतिग्रस्त होने की स्थिति में पहुँचे थे। ऐसी स्थिति में मीडिया ने इन स्थलों की दुर्दशा को उजागर किया और जन जागरूकता पैदा की, जिससे सरकार और अंतरराष्ट्रीय संगठनों ने इनके संरक्षण के लिए ठोस कदम उठाए।

इसी प्रकार, नेपाल के लुंबिनी क्षेत्र में स्थित भगवान् बुद्ध का जन्मस्थल भी लंबे समय से असंरक्षित था। मीडिया रिपोर्टों के माध्यम से यह मुद्दा अंतरराष्ट्रीय मंच पर लाया गया, जिससे यूनेस्को ने इसे विश्व धरोहर स्थल के रूप में मान्यता दी और उसके बाद से इसका बेहतर संरक्षण सुनिश्चित किया गया। मीडिया न केवल धरोहर स्थलों की सुरक्षा के मुद्दों को उजागर करता है, बल्कि वहाँ होने वाले सकारात्मक पहलुओं को भी प्रचारित करता है। उदाहरण के तौर पर, जब म्याँमार में बागन के प्राचीन बौद्ध मंदिरों के पुनर्निर्माण के लिए सरकारी और गैर सरकारी संगठनों ने काम किया, तो मीडिया ने इसकी सराहना की और इस प्रयास को व्यापक रूप से प्रकाशित किया। इससे स्थानीय लोगों को भी धरोहर स्थलों के महत्त्व को समझने और उनके संरक्षण में भागीदारी बढ़ाने की प्रेरणा मिली।

डिजिटल मीडिया के विस्तार के साथ, अब यह और भी आसान हो गया है कि दूरस्थ और उपेक्षित धरोहर स्थलों की स्थिति को लोगों तक पहुँचाया जा सके। सोशल मीडिया, ब्लॉग और ऑनलाइन न्यूज पोर्टल जैसे प्लेटफार्मों ने ऐसे मुद्दों पर त्वरित और व्यापक ध्यान आकर्षित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के तौर पर, थाईलैंड में बौद्ध मंदिरों के संरक्षण के लिए ऑनलाइन अभियानों ने स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जागरूकता बढ़ाई, जिससे वहाँ की सरकार ने इन स्थलों के रखरखाव और पुनर्निर्माण के लिए विशेष योजनाएँ बनाई।

अंततः, बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में मीडिया एक 'ब्रिज' का काम करता है, जो धरोहर और आम जनता, प्रशासन और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के बीच संवाद स्थापित करता है। मीडिया न केवल समस्याओं को सामने लाता है, बल्कि समाधानों की दिशा में भी सकारात्मक माहौल बनाता है। यही कारण है कि बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण के प्रयासों में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और इस दिशा में और भी अधिक समर्पित और ठोस प्रयासों की आवश्यकता है।

बौद्ध धरोहर स्थलों का महत्त्व

बौद्ध धरोहर स्थल न केवल धार्मिक आस्था के केंद्र हैं, बल्कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। बौद्ध मत विश्व की प्राचीनतम धार्मिक परंपराओं में से एक है और इसका प्रभाव केवल एशियाई देशों तक सीमित नहीं है, बल्कि

[1]स्वतंत्र शोधकर्ता, नई दिल्ली. ईमेल : dr.bhanu39priya@gmail.com
[2]स्वतंत्र शोधकर्ता, नई दिल्ली. ईमेल : purvakumari86@gmail.com

इसका प्रभाव विश्वभर में फैला है। इन स्थलों में न केवल भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करने वाले अनुयायियों के लिए गहरा धार्मिक महत्त्व है, बल्कि इनका सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्व भी असाधारण है। प्राचीन बौद्ध धरोहर स्थल, जैसे कि बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर (भारत), लुंबिनी (नेपाल) और बागान (म्याँमार) सदियों पुरानी परंपराओं, वास्तुकला और धर्म की गवाही देते हैं। इन स्थलों के संरक्षण और समझ के माध्यम से हम न केवल प्राचीन सभ्यताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं, बल्कि उस समय की सामाजिक और धार्मिक संरचनाओं को भी बेहतर समझ पाते हैं। उदाहरण के लिए, बोधगया वह स्थान है जहाँ सिद्धार्थ गौतम को ज्ञान प्राप्त हुआ था और यह बौद्ध मत के सबसे पवित्र स्थलों में से एक है। बोधगया में स्थित महाबोधि मंदिर न केवल भारत में, बल्कि पूरे विश्व में बौद्ध अनुयायियों के लिए तीर्थ यात्रा का प्रमुख केंद्र है। यह स्थल यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर स्थल के रूप में मान्यता प्राप्त है और यहाँ प्रतिवर्ष लाखों लोग आते हैं। इसी प्रकार, लुंबिनी (नेपाल) वह स्थान है जहाँ भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। लुंबिनी एक प्रमुख बौद्ध तीर्थ स्थल है और इसे भी यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर स्थल के रूप में मान्यता दी गई है। यह स्थल ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ प्राचीन मौर्य सम्राट अशोक द्वारा निर्मित स्तंभ स्थित है, जो उस समय की धार्मिक सहिष्णुता और बौद्ध मत के प्रसार का प्रमाण है। लुंबिनी की यात्रा बौद्ध अनुयायियों के लिए अत्यधिक धार्मिक महत्त्व रखती है, क्योंकि यह उन्हें भगवान् बुद्ध के प्रारंभिक जीवन की घटनाओं से जुड़ने का अवसर प्रदान करती है।

बौद्ध धरोहर स्थलों का सांस्कृतिक महत्त्व भी अद्वितीय है। ये स्थल वास्तुकला, मूर्तिकला और कला के अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, बागान (म्याँमार) बौद्ध मंदिरों और स्तूपों का एक विशाल समूह है, जहाँ हजारों प्राचीन संरचनाएँ स्थित हैं। बागान के मंदिर और स्तूप उस समय की उच्च कला और स्थापत्य कला का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनकी जटिल संरचनाओं और कलात्मक डिजाइनों के माध्यम से बौद्ध मत के गहरे आध्यात्मिक संदेश को समझा जा सकता है। इतिहास के अन्य महत्त्वपूर्ण बौद्ध स्थल, जैसे थाईलैंड का वट फ्रा केओ और श्रीलंका का अनुराधापुरा भी उस समय की सामाजिक संरचनाओं और धार्मिक मान्यताओं को दर्शाते हैं। इन स्थलों के संरक्षण से न केवल धार्मिक महत्त्व को संरक्षित किया जाता है, बल्कि यह उन संस्कृतियों की भी सुरक्षा करता है जिन्होंने इन स्थलों को आकार दिया। बौद्ध धरोहर स्थल आज भी मानवता के लिए प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं। उनकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक महत्ता के कारण, ये स्थल न केवल बौद्ध मत के अनुयायियों के लिए, बल्कि विश्वभर के सांस्कृतिक प्रेमियों और इतिहासकारों के लिए भी अत्यधिक आकर्षण का केंद्र हैं। इसके अलावा, इन स्थलों के संरक्षण और इनके प्रति जागरूकता फैलाने के प्रयास विश्व सांस्कृतिक धरोहरों की सुरक्षा की दिशा में भी एक महत्त्वपूर्ण कदम हैं।

बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में मीडिया का दृष्टिकोण

जनजागरूकता बढ़ाना एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो समाज के विभिन्न पहलुओं, विशेषकर संस्कृति, पर्यावरण, स्वास्थ्य और शिक्षा के बारे में लोगों को जानकारी देने और उन्हें जागरूक करने का कार्य करती है। मीडिया इस प्रक्रिया में एक प्रमुख भूमिका निभाता है, क्योंकि यह सूचना का एक प्रमुख स्रोत है और जनता तक जानकारी पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम है। मीडिया बौद्ध धरोहर स्थलों की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्ता को व्यापक जनसमूह तक पहुँचाने में मदद करता है, जिससे इनके संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ती है। यह प्रक्रिया लोगों को उन मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाने, जानकारी प्रदान करने और उन्हें सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित करती है।

बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण के संदर्भ में जनजागरूकता की भूमिका विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह न केवल इन धरोहरों को संरक्षित करने में सहायता करती है, बल्कि सांस्कृतिक धरोहरों की महत्ता को समझने में भी मदद करती है। बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहरें न केवल भारत, बल्कि पूरे विश्व में महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। इन स्थलों का संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए लोगों को इनकी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और धार्मिक महत्ता के बारे में जागरूक करना जरूरी है। जनजागरूकता के माध्यम से लोग इन धरोहरों की देखभाल, संरक्षण और इन्हें बचाने के लिए प्रेरित हो सकते हैं। मीडिया विभिन्न माध्यमों के जरिये इन स्थलों की स्थिति, उनकी सुरक्षा और उनके महत्त्व को वैश्विक स्तर पर उजागर करता है, जिससे सामाजिक और सरकारी संस्थाओं का ध्यान इनकी ओर आकर्षित होता है (नेशनल जियोग्राफिक, 2019)।

शोध प्रश्न

बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में मीडिया की भूमिका का अध्ययन करने के उद्देश्य से निम्नलिखित प्रश्न निर्धारित किए गए हैं :

1. मीडिया किस प्रकार बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है?
2. मीडिया के माध्यम से बौद्ध धरोहर स्थलों के प्रति लोगों में जागरूकता कैसे बढ़ाई जाती है?
3. किस प्रकार मीडिया संरक्षण अभियानों को समर्थन प्रदान करता है?
4. मीडिया किस प्रकार से बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण को अंतरराष्ट्रीय मंच पर प्रस्तुत करता है और इसका वैश्विक संरक्षण प्रयासों पर क्या प्रभाव होता है?

शोध प्रविधि

बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में मीडिया की भूमिका का अध्ययन करने के लिए वर्णनात्मक और अन्वेषणात्मक अनुसंधान डिजाइन का उपयोग किया गया है, जो मीडिया की भूमिका, कानूनी पहलुओं और संरक्षण प्रयासों का विश्लेषण करता है। द्वितीयक डेटा संग्रह के तहत साहित्य समीक्षा, मीडिया रिपोर्टों और कानूनी दस्तावेजों का विश्लेषण किया गया है, ताकि यह समझा जा सके कि मीडिया ने बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण और उनसे जुड़े मुद्दों को किस प्रकार प्रस्तुत किया है। डेटा विश्लेषण के लिए गुणात्मक विधियों का प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही अनुसंधान में नैतिक विचारों का ध्यान रखा गया है, जैसे कि प्रतिभागियों की गोपनीयता और संवेदनशील स्थलों का सम्मान। यह कार्यप्रणाली अनुसंधान को एक मजबूत ढाँचा प्रदान करती है, जो बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में मीडिया की भूमिका और उससे जुड़े मुद्दों को गहराई से समझने में सहायक है।

जनजागरूकता के साधन

मीडिया, शैक्षणिक संस्थान, गैर-सरकारी संगठन (NGO) और सरकारें मिलकर जनजागरूकता बढ़ाने में अहम भूमिका निभाती हैं। इसके तहत कई तरीके अपनाए जाते हैं जैसे :

मीडिया अभियान और सूचना का प्रसार : मीडिया विभिन्न चैनलों जैसे समाचार पत्र, टेलीविजन, रेडियो और डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से व्यापक जनजागरूकता अभियान संचालित करता है। बौद्ध धरोहर स्थलों के बारे में वृत्तचित्र, टीवी कार्यक्रम और सोशल मीडिया पोस्ट जैसी सामग्री के जरिये लोग इन स्थलों के ऐतिहासिक महत्त्व और स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। 2015 में नेपाल के भूकंप के समय मीडिया ने बौद्ध स्थलों को हुई क्षति के बारे में रिपोर्टिंग की थी, जिससे लोगों में जागरूकता आई और पुनर्स्थापना के प्रयासों को प्रोत्साहन मिला। इस तरह की रिपोर्टिंग स्थानीय, अंतरराष्ट्रीय समुदायों और आम जनता में जागरूकता फैलाने में सहायक होती है (यूनेस्को, 2015)।

विशेष कार्यक्रम और अभियान : मीडिया विशेष कार्यक्रमों और अभियानों का आयोजन करता है, जिनका उद्देश्य बौद्ध स्थलों और उनकी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ाना होता है। उदाहरण के लिए 'नेशनल ज्योग्राफी' और 'डिस्कवरी चैनल' पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रम लोगों को इन स्थलों के महत्त्व और सुरक्षा के लिए प्रेरित करते हैं। ऐसे कार्यक्रम लोगों में इन धरोहरों के प्रति सम्मान बढ़ाते हैं और उनकी रक्षा की भावना को सशक्त बनाते हैं (नेशनल जियोग्राफिक, 2019)। इससे युवा पीढ़ी में इन स्थलों के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना पैदा होती है।

शैक्षणिक कार्यक्रम : शैक्षणिक संस्थान, जैसे कि स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय छात्रों को सांस्कृतिक धरोहर स्थलों के महत्त्व और उनकी रक्षा की आवश्यकता के बारे में जागरूक करते हैं। भारत में कई विश्वविद्यालय बौद्ध मत और उसके धरोहर स्थलों पर सेमिनार और कार्यशालाएँ आयोजित करते हैं, जो छात्रों को उनके संरक्षण की जिम्मेदारी के प्रति जागरूक बनाते हैं। इस प्रकार, शैक्षणिक कार्यक्रम नई पीढ़ी को इन स्थलों की सुरक्षा और संरक्षण में योगदान देने के लिए प्रेरित करते हैं।

सोशल मीडिया की भूमिका : सोशल मीडिया जनजागरूकता फैलाने में एक सशक्त माध्यम बन गया है। फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर और यूट्यूब जैसे प्लेटफार्मों पर बौद्ध धरोहर स्थलों की तस्वीरें, वीडियो और जानकारियाँ साझा की जाती हैं। लोग जब बौद्ध स्थलों का दौरा करके अपनी तस्वीरें और अनुभव साझा करते हैं, तो इससे अन्य लोग भी इन स्थलों की यात्रा और उनकी सुरक्षा के प्रति जागरूक होते हैं। जिससे युवा पीढ़ी इन स्थलों के प्रति अधिक रुचि रखती है (ट्रिप एडवाइजर, 2022)।

संवेदनशीलता और शैक्षिक सामग्री : मीडिया के माध्यम से सांस्कृतिक धरोहर स्थलों की धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विशेषताओं को सामने लाया जाता है। जब लोग इन स्थलों के इतिहास और महत्त्व को समझते हैं, तो उनके संरक्षण के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। उदाहरण के लिए, शैक्षिक चैनल बौद्ध मत की शिक्षाओं और समृद्ध इतिहास पर आधारित कार्यक्रम बनाते हैं, जो दर्शकों में इन स्थलों के प्रति जागरूकता और संरक्षण की भावना उत्पन्न करते हैं (स्मिथ, 2017)।

स्थानीय समुदायों की भागीदारी और प्लेटफॉर्म : जनजागरूकता केवल मीडिया तक सीमित नहीं है; स्थानीय समुदायों की भागीदारी भी इसमें बहुत महत्त्वपूर्ण है। मीडिया स्थानीय समुदायों को एक मंच प्रदान करता है, जहाँ वे अपने विचार और चिंताओं को व्यक्त कर सकते हैं। जब लोग बौद्ध स्थलों के संरक्षण के लिए आवाज उठाते हैं, तो मीडिया उनके संदेश को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने में सहायक होता है। उदाहरण के तौर पर, बोधगया के महाबोधि मंदिर की सुरक्षा के लिए स्थानीय समुदायों द्वारा चलाए गए अभियान को मीडिया ने कवर किया, जिससे इस मुद्दे को व्यापक जनसमर्थन मिला। इस तरह उनकी चिंताओं को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाया गया है (कुमार, 2023)।

संस्कृति और पर्यटन को प्रोत्साहन : सांस्कृतिक कार्यक्रमों और पर्यटन को बढ़ावा देना जनजागरूकता का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। लोग जब इन स्थलों का दौरा करते हैं और उनके ऐतिहासिक महत्त्व के बारे में जान पाते हैं, तो उनकी सुरक्षा के प्रति सजग होते हैं और उनके प्रति सम्मान बढ़ता है। इस तरह वे इनके संरक्षण में मदद करने के लिए प्रेरित होते हैं। उदाहरण के लिए, भारत के सारनाथ और नेपाल के लुंबिनी जैसे स्थानों में बौद्ध स्थलों के संरक्षण के लिए चलाए गए अभियानों में स्थानीय समुदाय और पर्यटक, दोनों सक्रिय भागीदारी निभाते हैं। ये अभियान स्थानीय लोगों को भी धरोहर स्थलों के प्रति जिम्मेदारी का एहसास दिलाते हैं।

संरक्षण अभियानों को समर्थन

मीडिया, सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे संरक्षण अभियानों को व्यापक रूप से प्रचारित करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बौद्ध धरोहर स्थल न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं, बल्कि इनका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक मूल्य भी अत्यधिक है। इन स्थलों के संरक्षण के लिए समय-समय पर अभियान चलाए जाते हैं, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ये स्थान भविष्य में भी हमारे इतिहास और संस्कृति के जीवंत प्रतीक बने रहें। इन संरक्षण अभियानों का मुख्य उद्देश्य इन धरोहरों को प्राकृतिक आपदाओं, मानवजनित गतिविधियों, प्रदूषण और लापरवाही के कारण होने वाले नुकसान से बचाना है। इसके लिए वित्तीय समर्थन, जनसहभागिता और तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है। जब समाज इन अभियानों का समर्थन करता है, तो यह सुनिश्चित होता है कि धरोहर स्थल लंबे समय तक सुरक्षित रहेंगे और भविष्य में भी उनके ऐतिहासिक महत्त्व का अनुभव किया जा सकेगा।

सरकारी नीतियाँ और वित्तीय सहायता : सरकारें भी बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण हेतु विभिन्न नीतियाँ और योजनाएँ बनाती हैं। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (ASI) जैसी संस्थाएँ इन स्थलों की देखभाल और संरक्षण के लिए वित्तीय सहायता और तकनीकी समर्थन प्रदान करती हैं। जब मीडिया इन योजनाओं और अभियानों को कवर करता है, तो यह दाताओं और सरकारों का ध्यान आकर्षित करता है, जिससे इन्हें जरूरी वित्तीय सहायता मिलती है। उदाहरण के तौर पर, बोधगया के महाबोधि मंदिर की सुरक्षा के लिए मीडिया द्वारा चलाए गए अभियानों ने विभिन्न संगठनों से महत्त्वपूर्ण वित्तीय सहयोग प्राप्त किया (बीबीसी न्यूज, 2013)।

गैर-सरकारी संगठनों का योगदान : गैर-सरकारी संगठन भी इन अभियानों में सक्रिय भागीदार होते हैं। ये संगठन न केवल जागरूकता फैलाते हैं, बल्कि संरक्षण कार्यों के लिए वित्तीय और तकनीकी सहायता भी प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए 'इनटेक' जैसे संगठन ऐतिहासिक स्थलों के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जबकि नेपाल में लुंबिनी

विकास ट्रस्ट जैसे संगठन बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण के लिए निरंतर प्रयासरत हैं।

अंतरराष्ट्रीय समर्थन : बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी सहायता प्राप्त होती है। यूनेस्को जैसे संगठन इन स्थलों को विश्व धरोहर स्थल घोषित करते हैं, जिससे इनकी सुरक्षा के लिए वैश्विक स्तर पर समर्थन मिलता है। उदाहरण के लिए, नेपाल का लुंबिनी यूनेस्को द्वारा संरक्षित है और इसे विश्व धरोहर स्थल का दर्जा प्राप्त है। मीडिया इन प्रयासों को भी व्यापक रूप से प्रचारित करता है, जिससे इन स्थलों के संरक्षण के लिए अधिक समर्थन मिलता है। उदाहरण के लिए, 'सेव ऑवर हेरीटेज' जैसे अभियानों ने मीडिया के माध्यम से बौद्ध स्थलों की सुरक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया है। जब इस प्रकार के अभियानों को मीडिया में उजागर किया जाता है, तो यह समुदाय के सदस्यों और दानदाताओं को प्रेरित करता है, जिससे वे संरक्षण के प्रयासों में भाग लेते हैं (एडवर्ड, 2021)।

भारत में संविधान और धरोहर संरक्षण तथा कानूनी ढाँचा

भारत के संविधान में सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहरों के संरक्षण की जिम्मेदारी सरकार की होती है। संविधान के अनुच्छेद 49 के तहत सरकार को यह जिम्मेदारी सौंपी गई है कि वह राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं की रक्षा और संरक्षण करे। इसी प्रकार, अनुच्छेद 51ए (f) प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह अपने देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करे और उसका सम्मान करे। इस संवैधानिक प्रावधान का उद्देश्य यह है कि लोग अपने धरोहर स्थलों को सुरक्षित रखने में सक्रिय भूमिका निभाएँ और सरकार भी इसके लिए आवश्यक कदम उठाए। उदाहरण के लिए, जब भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण ने सारनाथ के स्तूपों की सुरक्षा के लिए नए दिशानिर्देश जारी किए, तब मीडिया ने इन दिशानिर्देशों की विस्तृत जानकारी साझा की और उनकी प्रभावशीलता पर चर्चा की (टाइम्स ऑफ इंडिया, 2023)।

भारतीय पुरातत्त्व अधिनियम, 1904 : यह भारत में ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्त्व के स्मारकों के संरक्षण के लिए पहला प्रमुख कानून था। इसके तहत ऐतिहासिक स्थलों को संरक्षित करने के लिए नियम बनाए गए थे। यह अधिनियम बाद में और विस्तारित हुआ और 1958 में इसका नया रूप सामने आया।

प्राचीन स्मारक और पुरातात्त्विक स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 : यह कानून भारत में ऐतिहासिक धरोहरों के संरक्षण के लिए सबसे प्रमुख कानूनी प्रावधान है। इसके तहत किसी भी ऐतिहासिक स्मारक को राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित कर, उसकी सुरक्षा और उसका संरक्षण सुनिश्चित किया जाता है। बौद्ध धरोहर स्थलों, जैसे साँची के स्तूप, बोधगया का महाबोधि मंदिर और सारनाथ के स्तूप इस अधिनियम के तहत संरक्षित हैं। इस कानून के अनुसार, इन स्थलों के आसपास 100 मीटर तक का क्षेत्र 'प्रतिबंधित क्षेत्र' घोषित किया गया है, जहाँ निर्माण कार्य या अन्य गतिविधियों पर प्रतिबंध होता है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 : धरोहर स्थलों को पर्यावरणीय खतरों से बचाने के लिए भी यह कानून महत्त्वपूर्ण है। यह अधिनियम पर्यावरण और धरोहर स्थलों को प्रदूषण, शहरीकरण और अन्य पर्यावरणीय क्षतियों से बचाने के लिए बनाया गया है। बोधगया और साँची जैसे स्थल, जो न केवल धार्मिक बल्कि पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण हैं, इस अधिनियम के तहत संरक्षित किए जाते हैं।

संस्कृति और पर्यटन को बढ़ावा देना : मीडिया के जरिये बौद्ध स्थलों की सांस्कृतिक महत्ता और पर्यटन क्षमता को प्रचारित किया जाता है, जिससे लोग इन स्थलों का सम्मान करते हुए इनके संरक्षण में योगदान करने के लिए प्रेरित होते हैं। यह भूमिका मीडिया को सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षक के रूप में महत्त्वपूर्ण बनाती है।

सांविधानिक अधिकार : भारत के संविधान में अनुच्छेद 49 (संस्कृति और सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा) और अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार) का उल्लेख है, जो सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण को सुनिश्चित करता है। मीडिया इन सांविधानिक अधिकारों का उल्लेख करते हुए दर्शाता है कि किस प्रकार बौद्ध स्थलों की सुरक्षा न केवल सांस्कृतिक आवश्यकताओं के लिए, बल्कि नागरिकों के अधिकारों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, एक रिपोर्ट में बताया गया कि जब बोधगया में अतिक्रमण की समस्या बढ़ी, तो स्थानीय नागरिकों ने सांविधानिक अधिकारों का हवाला देते हुए विरोध प्रदर्शन किया (सिंह, 2024)।

संरक्षण के लिए न्यायालयीन हस्तक्षेप : कई बार बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण के लिए न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक होता है। मीडिया इन मामलों को कवर करता है, जिससे जनता को न्यायिक प्रणाली के माध्यम से संरक्षण के उपायों के बारे में जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए, जब बोधगया के महाबोधि मंदिर की सुरक्षा को लेकर एक मामला उच्च न्यायालय में गया, तो मीडिया ने इस मामले को प्रमुखता से कवर किया, जिससे लोगों में जागरूकता बढ़ी और अदालत के निर्णय का महत्त्व समझ में आया (यादव, (2013)।

संरक्षण से जुड़े कानूनी विवाद : बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में कानूनी विवाद भी आम हैं। मीडिया इन विवादों को उजागर करता है, जो जागरूकता और जन-चर्चा को बढ़ाता है। उदाहरण के लिए, नेपाल में लुंबिनी के आसपास विकास परियोजनाओं को लेकर विभिन्न समूहों के बीच विवाद हुआ। मीडिया ने इस विषय पर विस्तृत रिपोर्टिंग की, जिससे लोगों को जानकारी मिली कि कैसे ये परियोजनाएँ लुंबिनी की धरोहर को प्रभावित कर सकती हैं (श्रेष्ठ, 2022)।

अंतरराष्ट्रीय कानून और समझौते

अंतरराष्ट्रीय कानून और समझौते का महत्त्व बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में अत्यधिक है, क्योंकि ये कानूनी ढाँचे और समझौतों के माध्यम से वैश्विक स्तर पर सांस्कृतिक धरोहरों की सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं। मीडिया इस क्षेत्र में जागरूकता फैलाने, संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देने और लोगों को इन कानूनी पहलुओं से अवगत कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर स्थल के रूप में कई बौद्ध स्थलों को सूचीबद्ध किया गया है। यूनेस्को के विश्व धरोहर सम्मेलन, 1972 के तहत उन स्थलों को अंतरराष्ट्रीय संरक्षण मिलता है, जिन्हें विश्व धरोहर स्थल घोषित किया जाता है। बोधगया स्थित महाबोधि मंदिर और नेपाल के लुंबिनी में गौतम बुद्ध का जन्मस्थल यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर स्थल घोषित किए गए हैं। इन स्थलों को अंतरराष्ट्रीय संरक्षण और वित्तीय सहायता मिलती है, जिससे इनकी सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है।

यूनेस्को विश्व धरोहर सम्मेलन : यूनेस्को ने विश्व धरोहर स्थलों की सुरक्षा के लिए कई अंतरराष्ट्रीय समझौतों का निर्माण किया है। विशेष रूप से 1972 का विश्व धरोहर सम्मेलन बौद्ध स्थलों जैसे सांस्कृतिक और प्राकृतिक धरोहरों की सुरक्षा के लिए एक महत्त्वपूर्ण कदम है। मीडिया इस सम्मेलन की गतिविधियों और निर्णयों को कवर करता है, जिससे देशों के बीच सहयोग और सामूहिक जिम्मेदारी की भावना बढ़ती है। उदाहरण के लिए, जब बोधगया को यूनेस्को विश्व धरोहर स्थलों की सूची में शामिल किया गया, तो मीडिया ने इस खबर को प्रमुखता से पेश किया, जिससे स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय समुदायों में धरोहर स्थलों के संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ी (यूनेस्को, 2020)।

सांस्कृतिक संपत्ति का संरक्षण : अंतरराष्ट्रीय कानूनों और समझौतों के अंतर्गत, सांस्कृतिक संपत्ति का संरक्षण भी शामिल है। 1954 का 'हेग समझौता' युद्ध के समय सांस्कृतिक संपत्तियों की रक्षा करता है। मीडिया अक्सर इस विषय पर चर्चा करता है, विशेषकर तब जब युद्ध या संघर्ष क्षेत्रों में बौद्ध स्थलों पर खतरे का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, जब सीरिया में ऐतिहासिक बौद्ध स्थलों को नुकसान पहुँचाया गया, तब मीडिया ने इस पर विस्तृत रिपोर्टिंग की, जिससे अंतरराष्ट्रीय समुदाय का ध्यान आकर्षित हुआ (बीबीसी, 2013)।

संरक्षण के लिए द्विपक्षीय समझौते : अंतरराष्ट्रीय संरक्षण प्रयासों में द्विपक्षीय समझौतों का भी महत्त्व है। कई देश आपसी समझौतों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण के लिए सहयोग करते हैं। जैसे, भारत और जापान के बीच एक समझौता हुआ है, जिसके तहत दोनों देशों के बौद्ध स्थलों के संरक्षण और पुनर्विकास के लिए सहयोग किया जाएगा। मीडिया इस प्रकार के समझौतों की रिपोर्टिंग करता है, जिससे दोनों देशों के नागरिकों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सहयोग बढ़ता है (यादव, 2013)।

संरक्षण में नागरिक समाज की भूमिका : अंतरराष्ट्रीय कानून और समझौतों के संदर्भ में, नागरिक समाज का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। एनजीओ और अन्य संगठन संरक्षण अभियानों को चलाते हैं और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जागरूकता फैलाते हैं। मीडिया अक्सर इन संगठनों की गतिविधियों को कवर करता है। उदाहरण के लिए, जब 'इंटरनेशनल काउंसिल ऑन मोनुमेंट्स एंड साइट्स' ने बौद्ध स्थलों के संरक्षण के लिए एक अभियान शुरू किया, तो मीडिया ने इसे प्रमुखता से उजागर किया। इससे लोगों में संरक्षण के प्रति जागरूकता और समर्थन बढ़ा (वर्ल्ड हेरिटेज कन्वेंशन, 2020)।

अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता : अंतरराष्ट्रीय कानूनों और समझौतों के संदर्भ में बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता होती है। मीडिया इस सहयोग की आवश्यकता को उजागर करता है, विशेषकर जब संकट उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए, जब म्याँमार में बौद्ध स्थलों को खतरे का सामना करना पड़ा, तब अंतरराष्ट्रीय संगठनों और मीडिया ने मिलकर इस समस्या को उठाया, जिससे वैश्विक स्तर पर सहयोग की अपील की गई (लवटत एवं विन, (2024)।

कानूनी विवाद और चुनौतियाँ

कानूनी विवाद और चुनौतियाँ बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा हैं, जो न केवल सांस्कृतिक धरोहरों की सुरक्षा को प्रभावित करते हैं, बल्कि समुदायों और सरकारों के बीच टकराव का कारण भी बनते हैं। कई बार बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में कानूनी विवाद भी उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ स्थलों पर अतिक्रमण या अवैध निर्माण कार्यों की वजह से कानूनी विवाद पैदा होते हैं। ऐसे मामलों में भारतीय न्यायपालिका ने धरोहर स्थलों के संरक्षण के पक्ष में निर्णय दिए हैं। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने कई बार सरकार को निर्देश दिए हैं कि वे ऐतिहासिक और धार्मिक स्थलों के आसपास हो रहे अवैध निर्माणों को रोकें और इन स्थलों की सुरक्षा सुनिश्चित करें। मीडिया इन विवादों को उजागर करता है, जिससे जागरूकता बढ़ती है और समाधान की दिशा में कदम उठाए जा सकते हैं। इस लेख में हम कानूनी विवादों और चुनौतियों को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखेंगे, जिसमें मीडिया की भूमिका भी शामिल होगी।

अवैध निर्माण और अतिक्रमण : बौद्ध स्थलों के आसपास अवैध निर्माण और अतिक्रमण सबसे सामान्य कानूनी विवादों में से एक है। जब स्थानीय समुदायों या व्यवसायों द्वारा इन स्थलों के आसपास निर्माण किया जाता है, तो यह न केवल स्थल की दृश्यता को प्रभावित करता है, बल्कि इसके संरक्षण में भी बाधा डालता है। उदाहरण के लिए, बोधगया में अवैध होटल और रेस्टोरेंट का निर्माण एक गंभीर मुद्दा बन गया। जब स्थानीय निवासियों ने इस मुद्दे पर आवाज उठाई, तो मीडिया ने इसे प्रमुखता से कवर किया, जिससे सरकारी अधिकारियों पर कार्रवाई का दबाव बढ़ा (टाइम्स ऑफ इंडिया, 2023)। इस प्रकार, मीडिया इस तरह के कानूनी विवादों को उजागर कर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सांस्कृतिक संपत्ति की पहचान और स्वामित्व : सांस्कृतिक संपत्ति की पहचान और स्वामित्व भी कानूनी विवादों का एक बड़ा स्रोत है। कई बार विभिन्न समूह या देश एक ही धरोहर स्थल पर अधिकार का दावा करते हैं। उदाहरण के लिए, लुंबिनी, जो बौद्ध धर्म के प्रवर्तक सिद्धार्थ गौतम का जन्म स्थान है, नेपाल और अन्य देशों के बीच सांस्कृतिक पहचान का मुद्दा बन गया है। मीडिया इस विषय पर चर्चा करता है, जिससे जनता को यह समझ में आता है कि कैसे सांस्कृतिक संपत्ति की पहचान से विवाद उत्पन्न हो सकता है (सीजापति, 2024)।

संरक्षण की दिशा में कानूनी चुनौतियाँ : कई बार बौद्ध स्थलों के संरक्षण के लिए कानूनी चुनौतियाँ भी सामने आती हैं। जब संरक्षण के लिए दिशा-निर्देशों का पालन नहीं किया जाता, तो यह विवाद का कारण बनता है। उदाहरण के लिए, जब महाबोधि मंदिर के पास विकास योजनाएँ लागू की गई, तो स्थानीय समुदाय ने इसका विरोध किया। मीडिया ने इस मामले को कवर किया, जिससे अदालत में एक याचिका दायर की गई, जो संरक्षण की दिशा में महत्त्वपूर्ण थी (सिंह, 2024)। इस प्रकार, मीडिया कानूनी प्रक्रियाओं को उजागर करता है, जिससे लोगों को आवश्यक जानकारी मिलती है।

अंतरराष्ट्रीय कानूनी विवाद : कभी-कभी बौद्ध धरोहर स्थलों पर अंतरराष्ट्रीय कानूनी विवाद भी सामने आते हैं। जब धरोहर स्थलों का संरक्षण अंतरराष्ट्रीय कानूनों का उल्लंघन करता है, तो इससे विवाद उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए, जब कुछ बौद्ध स्थलों के लिए अवैध खुदाई की गई, तो यह अंतरराष्ट्रीय समुदाय के बीच चिंता का विषय बन गया। मीडिया ने इस मुद्दे को उठाया, जिससे अंतरराष्ट्रीय संरक्षण संगठनों का ध्यान आकर्षित हुआ (रिचर्ड, 2015)। इस प्रकार, अंतरराष्ट्रीय कानूनी

विवादों को उठाने में मीडिया की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

समुदाय का सक्रियता : जब कानूनी विवाद उत्पन्न होते हैं, तो स्थानीय समुदाय अक्सर सक्रिय होते हैं। वे मीडिया का उपयोग करके अपनी आवाज उठाते हैं और न्याय की माँग करते हैं। उदाहरण के लिए, सारनाथ में बौद्ध स्थलों के संरक्षण के लिए स्थानीय समुदाय ने एक संगठन बनाया और मीडिया के माध्यम से अपने मुद्दों को उठाया। यह स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ध्यान आकर्षित करने में सफल रहा। इस तरह, उन्हें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने में मदद मिली (यादव, 2013)। मीडिया इस प्रकार समुदाय की आवाज को उजागर करने में सहायक होता है। कानूनी विवाद और चुनौतियाँ बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण के लिए एक महत्त्वपूर्ण चुनौती हैं। मीडिया की भूमिका इन विवादों को उजागर करने, जागरूकता फैलाने और समाधान की दिशा में कदम उठाने में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है। जब समुदाय अपनी आवाज उठाते हैं और मीडिया उनका समर्थन करता है, तो यह धरोहर स्थलों के संरक्षण में सकारात्मक परिवर्तन लाने में मदद करता है।

निष्कर्ष

जनजागरूकता बढ़ाकर बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण की दिशा में ठोस कदम उठाए जा सकते हैं। जब लोग इन स्थलों के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व को समझते हैं, तो वे इनके संरक्षण में अपना योगदान देने के लिए प्रेरित होते हैं। मीडिया, शैक्षणिक संस्थान और स्थानीय समुदाय मिलकर इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। संरक्षण अभियानों को समर्थन देने का उद्देश्य ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक धरोहरों को संरक्षित करना है, ताकि ये भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रहें। संरक्षण अभियानों को सफल बनाने के लिए विभिन्न स्तरों पर सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता होती है, जिसमें सरकार, मीडिया, गैर-सरकारी संगठन (NGO) और आम जनता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। बौद्ध धरोहर स्थलों के संदर्भ में संरक्षण अभियानों का समर्थन सुनिश्चित करने के लिए व्यापक स्तर पर योजनाएँ बनाई जाती हैं, जिससे इन स्थलों की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्ता को संरक्षित किया जा सके। मीडिया जन जागरूकता बढ़ाने में एक शक्तिशाली उपकरण है, जो बौद्ध धरोहर स्थलों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए आवश्यक जानकारियों को साझा करता है।

सांविधानिक और कानूनी पहलुओं पर मीडिया की रिपोर्टिंग बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह न केवल नागरिकों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करता है, बल्कि संरक्षण के लिए आवश्यक कानूनी ढाँचे का प्रचार भी करता है। जब मीडिया इन पहलुओं को उजागर करता है, तो यह न केवल संरक्षण अभियानों को समर्थन प्रदान करता है, बल्कि बौद्ध धरोहर स्थलों के प्रति एक संवेदनशीलता भी बढ़ाता है। भारतीय संविधान और कानूनों के तहत इन स्थलों की सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है, जबकि अंतरराष्ट्रीय कानून और यूनेस्को के संरक्षण के माध्यम से इनकी सुरक्षा को और मजबूत किया जाता है। इन कानूनी प्रावधानों के अनुपालन से न केवल धरोहर स्थलों की रक्षा होती है, बल्कि यह सुनिश्चित होता है कि ये स्थल भविष्य की पीढ़ियों के लिए संरक्षित रहें। अंतरराष्ट्रीय कानून और समझौतों का बौद्ध धरोहर स्थलों के संरक्षण में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। मीडिया इन कानूनों और समझौतों के महत्त्व को उजागर करता है, जिससे जनता को जागरूक किया जा सके और संरक्षण प्रयासों को बढ़ावा दिया जा सके। जब मीडिया इस प्रकार के अंतरराष्ट्रीय प्रयासों को कवर करता है, तो यह न केवल धरोहर स्थलों की सुरक्षा को सुनिश्चित करता है, बल्कि वैश्विक सहयोग और समर्पण की भावना को भी बढ़ाता है।

संदर्भ

अल जजीरा. (2016). फंड टू प्रोटेक्ट हेरिटेज साइट्स इन वॉर जोंस एप्रूव्ड. https://www.aljazeera.com/features/2016/12/3/fund-to-protect-heritage-sites-in-war-zones-approved से 16/11/2024 को पुन:प्राप्त.

एडवर्ड, ए. (2021). हाउ टू एंस्योर द सर्वाइवल ऑफ प्रेसियस हेरिटेज साइट्स. https://www.theguardian.com/culture/2021/nov/07/how-to-ensure-the-survival-of-precious-heritage-sites से 25/11/2024 को पुन:प्राप्त.

कादिर, ए. (2013). इल्लीगल स्ट्रक्चर अराउंड बोधगया टेंपल टु बी रिमूव्ड. https://timesofindia.indiatimes.com/city/patna/illegal-structures-around-bodh-gaya-temple-to-be-removed/articleshow/21154882.cms से 24/11/2024 को पुन:प्राप्त.

कुमार, ए. (2023). महाबोधि कॉरिडोर प्रोपोज्ड इन बिहार बोधगया लाइक काशी विश्वनाथ. https://timesofindia.indiatimes.com/city/patna/mahabodhi-corridor-proposed-in-bihars-bodh-gaya-like-kashi-vishwanath/articleshow/98982833.cms से 24/11/2024 को पुन:प्राप्त.

टाइम्स ऑफ इंडिया. (2023). महाबोधि टेंपल इन बोध गया : ए टाइमलेस सागा ऑफ एनलाइटनमेंट. https://timesofindia.indiatimes.com/travel/destinations/mahabodhi-temple-in-bodh-gaya-a-timeless-saga-of-enlightenment/articleshow/102777039.cms से 25/11/2024 को पुन:प्राप्त.

टाइम्स ऑफ इंडिया. (2021). सिक्योरिटी टु बी बीफेड अप ऐट महाबोधि टेंपल इन बोधगया. https://timesofindia.indiatimes.com/city/patna/security-to-be-beefed-up-at-mahabodhi-temple-in-bodh-gaya/articleshow/84303965.cms से पुन:प्राप्त.

ट्रिप एडवाइजर. (2022). "बोधगया : ए ट्रवेलेर गाइड. https://www.tripadvisor.in/Attractions-g424922-Activities-Bodh_Gaya_Gaya_District_Bihar.html से 26/11/2024 को पुन:प्राप्त.

नेशनल जियोग्राफिक. (2019). द सेक्रेड साइट्स ऑफ बुद्धिज्म : ए जर्नी थ्रू टाइम. https://education.nationalgeographic.org/resource/buddhism/ से पुन: प्राप्त.

प्रसेन, एस. एवं पौडेल, पी. (2024). लुंबिनी इंफ्रास्ट्रक्चर : बिलियंस इन इन्वेस्टमेंट यील्ड लिटिल. https://kathmandupost.com/money/2024/07/31/lumbini-infrastructure-billions-in-investment-yield-little से 15/11/2024 को पुन:प्राप्त.

बीबीसी न्यूज. (2013). सीरियाज प्रिस्लेस हेरिटेज अंडर अटैक. https://www.bbc.com/news/magazine-21702546 से पुन:प्राप्त.

यादव, ए. (2013). ब्लास्ट्स स्टिर अप डिबेट ऑन बोध गया टेंपल एक्ट. https://www.thehindu.com/news/national/blasts-stir-up-debate-on-bodh-gaya-temple-act/article4898901.ece से 14/11/2024 को पुन:प्राप्त.

यूनेस्को. (2015). यूनेस्को टू ऐक्सेस द इम्पैक्ट ए नेपाल्स कल्चरल हेरिटेज ऑफ द डीवॉस्टेटिंग अर्थक्वेक. https://whc.unesco.org/en/news/1268 से पुन:प्राप्त.

यूनेस्को. (2020). वर्ल्ड हेरिटेज कन्वेंशन. https://whc.unesco.org/en/convention/ से पुन:प्राप्त.

रिचर्ड, ज. (2015). द फ्यूचर ऑफ अन्सिएंट साइट्स इन द मिडिल ईस्ट. https://www.aljazeera.com/opinions/2015/7/12/the-future-of-ancient-sites-in-the-middle-east से 17/11/2024 को पुन:प्राप्त.

लवटत, एल. एवं विन, के. (2024). मुस्लिम्स ज्वाइन बुद्धिस्ट, क्रिस्चियन फाइटर्स टु टोपल म्यांमार्स मिलिट्री. https://www.aljazeera.com/features/2024/10/19/muslims-join-buddhist-christian-fighters-to-topple-myanmars-military से 15/11/2024 को पुन:प्राप्त.

श्रेष्ठ, एस. (2022). टेलिंग द स्टोरी ऑफ बुद्धाज लुंबिनी. https://nepalitimes.com/here-now/telling-the-story-of-buddha-s-lumbini से 17/11/2024 को पुन:प्राप्त.

सीजापति, ए. (2024). अनहोली डेवलपमेंट्स अट होली साइट्स. https://nepalitimes.com/here-now/unholy-developments-at-holy-sites से 18/11/2024 को पुन:प्राप्त.

स्मिथ, जे. (2017). द रोल ऑफ मीडिया इन कल्चरल हेरिटेज अवेयरनेस.

सिंह, वी. (2024). हिस्टोरीसिटी—गया: कॉरिडोर्स ऑफ रिलिजन, पावर, एंड हिस्ट्री. https://www.hindustantimes.com/analysis/historicity-gaya-corridors-of-religion-power-and-history-101722008998211.html से 17/11/2024 को पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 45-49, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

भारतीय उत्सवधर्मिता पर मीडिया का प्रभाव : एक विश्लेषण

तुमुल कक्कड़[1] और डॉ. सुनील कुमार मिश्र[2]

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय उत्सवधर्मिता पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। साथ ही मीडिया द्वारा भारतीय तीज-त्योहारों से संबंधित प्रस्तुत अंतर्वस्तु पर भी प्रकाश डाला गया है। अध्ययन में इस बात की भी पड़ताल करने की कोशिश की गई है कि मीडिया ने हमारे सांस्कृतिक आयोजनों को कैसे परिभाषित किया है। भारतीय समाज में त्योहारों का अत्यधिक महत्त्व है और ये त्योहार भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर के रूप में जाने जाते हैं। प्रत्येक त्योहार अपने आप में एक अनोखा उत्सव होता है, जो धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक मिलन का प्रतीक है। भारतीय त्योहारों की विविधता और उनकी प्रथाएँ देश के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग होती हैं, जो भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और विविधता को दर्शाती हैं। इन त्योहारों का आयोजन पारंपरिक रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक उत्सवों के माध्यम से किया जाता है, जो समाज की सामूहिक पहचान को सशक्त बनाते हैं। ऐसे में यह समीचीन हो जाता है कि भारतीय उत्सवधर्मिता एवं मीडिया के अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया जाए। प्रस्तुत शोध पत्र विश्लेषणात्मक प्रकृति का है एवं अध्ययन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु सर्वेक्षण विधि से तथ्य संकलित किए गए हैं। निदर्शन पद्धति से दिल्ली एवं आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले कुल 250 उत्तरदाताओं से उत्तर प्राप्त किए गए हैं। अध्ययन में द्वितीयक आँकड़ों का भी संदर्भ सहित उपयोग किया गया है। भारतीय त्योहारों को लेकर मीडिया का दृष्टिकोण भले ही बाजार केंद्रित दिखता है, परंतु आंचलिक त्योहारों की व्यापकता में इसका योगदान स्पष्ट रूप से दिखता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बदलते सामाजिक परिवेश में मीडिया ने भारतीय तीज-त्योहारों पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव डाला है।

संकेत शब्द : तीज-त्योहार, उत्सवधर्मिता, मीडिया, संस्कृति, सामाजिक बदलाव, मीडिया विमर्श, मान्यताएँ

प्रस्तावना

विगत कुछ वर्षों में मीडिया ने भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं पर गहरा प्रभाव डाला है, विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रिंट मीडिया और डिजिटल मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय संस्कृति और त्योहारों के तरीके को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीडिया के माध्यम से त्योहारों की कवरेज, विज्ञापन और प्रचार ने पारंपरिक त्योहारों के स्वरूप को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। हमारे आध्यात्मिक मूल्यों को एक नए तरीके से परिभाषित करने वाला मीडिया आनुभविक मूल्यों पर भी असर डाल रहा है। वर्तमान पीढ़ी अपने परंपरागत त्योहारों के प्रति जो दृष्टिकोण रखती है, मीडिया का प्रभाव उस पर स्पष्ट झलकता है। त्योहारों में आधुनिकता एवं बाजार से ऊपजे मानकों को स्थापित करके मीडिया ने हमारे त्योहारों को नया स्वरूप प्रदान किया है, जिससे त्योहारों को मनाने का तरीका तो बदला ही है, अपितु त्योहारों को मनाने की प्रथाओं पर भी गहरा प्रभाव स्पष्ट होता है। भारतीय समाज में तीज-त्योहार विशेष महत्त्व रखते हैं। ये त्योहार न सिर्फ हमारे धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का प्रसार करते हैं, अपितु समाज को जोड़ने का कार्य भी करते हैं। त्योहारों के रूप में होने वाले आयोजन सामाजिक एकता को मजबूत करने के साथ ही भारतीय संस्कृति की जड़ों को भी सशक्त बनाते हैं। इन आयोजनों के माध्यम से नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी द्वारा सृजित उस संसार को अपनाती है, जिसमें पीढ़ीगत परंपराएँ होती हैं, सामाजिक मान्यताएँ होती हैं, धार्मिक विश्वास होता है एवं प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव भी होता है। त्योहार किसी व्यक्ति अथवा समूह द्वारा आयोजित कोई अनुष्ठान मात्र नहीं होता है, यह किसी संस्कृति की विरासत की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होता है, जो उन सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात् करने वाले समाज को सामूहिक उत्सव मनाने को प्रेरित करता है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य यह समझना है कि मीडिया भारतीय त्योहारों के ऊपर किस प्रकार से प्रभाव डाल रहा है? मीडिया की भूमिका और उसका प्रभाव त्योहारों की पारंपरिक प्रथाओं पर कितना पड़ा है, यह जानना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, यह भी जानना महत्त्वपूर्ण है कि लोग मीडिया द्वारा प्रस्तुत किए गए त्योहारों के चित्रण को किस प्रकार से देखते हैं और उनकी धारणाएँ क्या हैं? क्या मीडिया त्योहारों की वास्तविकता को सही ढंग से दर्शाता है या यह केवल एक सतही चित्रण प्रदान करता है? इन प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए इस शोध को एक विस्तृत और बहुआयामी दृष्टिकोण से निष्पादित किया गया है। संचार प्रौद्योगिकी के वर्तमान युग में एक तरफ मीडिया की पहुँच बढ़ी है, तो वहीं इसकी अंतर्वस्तु का उपभोग भी बढ़ा है। स्मार्टफोन एवं इंटरनेट की पहुँच विगत कुछ वर्षों में तेजी से बढ़ी है, जिससे मीडिया द्वारा प्रस्तुत अंतर्वस्तु का प्रसार भी बढ़ा है। डिजिटल प्लेटफार्म युवा पीढ़ी में तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं एवं सोशल मीडिया आज जनसंस्कृति के विस्तार में व्यापक भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

भारत एक सांस्कृतिक विविधता से भरा हुआ देश है, जहाँ विभिन्न जातियाँ, धर्म और भाषाएँ मिलकर एक सजीव और विविधतापूर्ण समाज का निर्माण करती हैं। भारतीय त्योहार इस सांस्कृतिक विविधता की अभिव्यक्ति हैं और ये समाज के विभिन्न वर्गों के बीच एकता और समरसता का प्रतीक भी हैं। इन त्योहारों के दौरान लोग पारंपरिक रीतियों का पालन करते हैं, विशेष व्यंजन तैयार करते हैं और एक साथ मिलकर खुशियाँ मनाते हैं। यह सामूहिक उत्सव जीवन की खुशी और सामाजिक संबंधों को प्रगाढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मीडिया, चाहे वह प्रिंट, रेडियो, टीवी या डिजिटल प्लेटफॉर्म, समाज में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

[1]शोधार्थी, सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश. ईमेल : tumulkacker@gmail.com
[2]एसोसिएट प्रोफेसर, विवेकानंद इंस्टिट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, नई दिल्ली. ईमेल : mishrasunil02@gmail.com

यह समाज की सोच, दृष्टिकोण और व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। भारतीय त्योहारों के संदर्भ में मीडिया ने विभिन्न तरीके अपनाए हैं—जैसे कि त्योहारों के विज्ञापन, टीवी सीरियल, समाचार रिपोर्टिंग और सोशल मीडिया कैंपेन। इन माध्यमों ने त्योहारों के तौर-तरीके में बदलाव लाया है और इसके साथ ही त्योहारों की सांस्कृतिक परंपराओं पर भी प्रभाव डाला है। मीडिया द्वारा त्योहारों के दौरान प्रकाशित विज्ञापनों और विपणन प्रथाओं ने त्योहारों की पहचान को एक व्यावसायिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए, त्योहारों के दौरान उपहार, वस्त्र और खाने-पीने की वस्तुओं की बिक्री को बढ़ावा देने के लिए मीडिया ने विशेष प्रचार अभियान चलाए हैं। इसने त्योहारों की पारंपरिक प्रकृति को बदल दिया है और एक उपभोक्तावादी दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया है। मीडिया ने त्योहारों को प्रस्तुत करने के तरीके में बदलाव किया है। त्योहारों के विशेष कार्यक्रम, टीवी शो और सोशल मीडिया पोस्ट ने त्योहारों की पारंपरिक छवि को आधुनिक और ग्लैमर के रूप में प्रस्तुत किया है। यह बदलाव परंपरागत प्रथाओं और त्योहारों की वास्तविकता को कहीं-न-कहीं प्रभावित कर रहा है। मीडिया द्वारा प्रस्तुत किए गए त्योहारों के चित्रण ने समाज की सांस्कृतिक धारणाओं और व्यवहार को प्रभावित किया है। कुछ विश्लेषकों का कहना है कि मीडिया ने त्योहारों की सांस्कृतिक गहराई को सतही बना दिया है और लोगों को परंपराओं से हटा दिया है। इसके विपरीत, कुछ लोग मानते हैं कि मीडिया ने त्योहारों की महत्ता को बढ़ाया है और युवा पीढ़ी को संस्कृति से जोड़ने में मदद की है।

साहित्य समीक्षा

भारतीय समाज में त्योहारों का सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक महत्त्व अत्यधिक है और इन्हें सदियों से पारंपरिक रूप से मनाया जाता रहा है। हालाँकि, आधुनिक समय में मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय त्योहारों के उत्सवों और उनके पारंपरिक स्वरूपों को प्रभावित किया है। भारतीय त्योहारों का महत्त्व ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों में गहराई से निहित है। तिवारी (2010) के अनुसार, भारतीय त्योहार विभिन्न धार्मिक, सामाजिक और पारंपरिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करते हैं, जो समाज में एकता, सद्भाव और सामूहिकता की भावना को प्रोत्साहित करते हैं। यह देखा गया है कि त्योहारों के माध्यम से लोग न केवल अपनी धार्मिक आस्थाओं को व्यक्त करते हैं, बल्कि सामाजिक संपर्क और पारिवारिक एकता को भी सशक्त करते हैं। ये सांस्कृतिक प्रथाएँ समाज की सामूहिक पहचान का निर्माण करती हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होती हैं। मीडिया, विशेष रूप से इलेक्ट्रॉनिक और डिजिटल मीडिया, आधुनिक समाज में एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में उभरा है। बंसल (2015) के अध्ययन में यह पाया गया कि मीडिया का समाज की सांस्कृतिक धारणाओं और परंपराओं पर व्यापक प्रभाव है। मीडिया के माध्यम से त्योहारों का व्यावसायीकरण और उनका आधुनिक प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है, जिससे पारंपरिक प्रथाओं का स्वरूप बदल रहा है। सिंह (2012) ने अपने शोध में यह दर्शाया कि मीडिया ने त्योहारों को एक ग्लोबल आइकॉन के रूप में प्रस्तुत किया है, जो न केवल भारत में, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी मान्यता प्राप्त कर रहा है। कुछ विद्वानों ने मीडिया के प्रभाव को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा है। शर्मा (2018) का शोध इस बात पर केंद्रित है कि मीडिया ने त्योहारों की वास्तविकता को एक सतही छवि में परिवर्तित कर दिया है। उनका कहना है कि मीडिया द्वारा प्रस्तुत किए गए त्योहारों के चित्रण ने परंपरा की जड़ों को कमजोर किया है और यही कारण है कि उन्हें एक उपभोक्तावादी दृष्टिकोण से देखा जाने लगा है। इससे लोगों के पारंपरिक विश्वास और प्रथाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। इसके विपरीत, कुछ अध्ययन यह दर्शाते हैं कि मीडिया ने भारतीय संस्कृति और त्योहारों के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्मा (2016) के अनुसार, मीडिया ने विशेष रूप से युवा पीढ़ी को संस्कृति से जोड़ने में मदद की है। उन्होंने अपने शोध में बताया कि मीडिया ने त्योहारों की महत्ता को बढ़ाया है और उन्हें समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाने में सहायक रहा है। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों ने लोगों को अपने त्योहारों और परंपराओं को साझा करने और एक व्यापक समुदाय के साथ जोड़ने का अवसर प्रदान किया है।

वैश्वीकरण के बाद से मीडिया संसार भी तेजी से बदला है। ऐसे में, मीडिया द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर बाजार का असर न हो, ऐसी कल्पना करना भी संभव नहीं है। कई विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि मीडिया, विशेष रूप से विज्ञापन उद्योग, ने भारतीय त्योहारों के उत्सव को व्यावसायिक दृष्टिकोण से बदल दिया है। कपूर (2020) का अध्ययन इस बात पर केंद्रित है कि कैसे विज्ञापनों ने त्योहारों को उपभोक्ता संस्कृति से जोड़ दिया है। उन्होंने यह तर्क दिया है कि त्योहारों का वास्तविक मकसद धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देना है, जो कहीं-न-कहीं खो गया है और इसे बाजारवाद ने घेर लिया है। विशेष रूप से टीवी और फिल्मों ने भारतीय त्योहारों को नए तरीके से प्रस्तुत किया है। ठाकुर (2017) ने अपने अध्ययन में पाया कि फिल्मों और टीवी सीरियलों ने त्योहारों की पारंपरिक छवियों को आधुनिक संदर्भ में ढाल दिया है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि फिल्मों और टीवी शो में दिखाए गए त्योहारों के दृश्य समाज की सांस्कृतिक धारणाओं को आकार देते हैं और उन्हें नए प्रतीकों के साथ जोड़ते हैं। यह नई प्रतीकात्मकता समाज के विभिन्न वर्गों में त्योहारों के प्रति दृष्टिकोण को बदलने में सहायक रही है। चंद्रशेखर (2013) के अनुसार, टीवी धारावाहिकों ने समाज में सांस्कृतिक प्रतीकों को पुनः स्थापित किया है। उनके शोध में यह दिखाया गया है कि कैसे धारावाहिकों में दिखाए गए त्योहारों, पारंपरिक वस्त्रों और रीति-रिवाजों ने दर्शकों के जीवन में एक आदर्श छवि प्रस्तुत की है, जो समाज के विभिन्न वर्गों में एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करती है। गुप्ता (2015) ने अपने अध्ययन में टीवी धारावाहिकों में दिखाए जाने वाले धार्मिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का विश्लेषण किया है। उन्होंने पाया कि धारावाहिकों में प्रस्तुत किए गए धार्मिक अनुष्ठान और पारंपरिक उत्सव दर्शकों की धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करते हैं। इसके साथ ही, ये धारावाहिक विभिन्न संस्कृतियों के प्रतीकों को एक व्यापक जनसमूह तक पहुँचाने में सहायक होते हैं। सिन्हा (2018) ने टीवी विज्ञापनों के माध्यम से सांस्कृतिक प्रतीकों के निर्माण पर अपने शोध में यह दर्शाया है कि विज्ञापन उद्योग ने पारंपरिक त्योहारों और सांस्कृतिक प्रतीकों का व्यावसायीकरण किया है। यह अध्ययन बताता है कि कैसे विज्ञापनों में इस्तेमाल किए गए सांस्कृतिक प्रतीक, जैसे पारंपरिक परिधान, भोजन और अनुष्ठान, उपभोक्तावादी दृष्टिकोण के माध्यम से पुनः परिभाषित किए गए हैं। कौशल (2020) का शोध टीवी के माध्यम से सांस्कृतिक एकरूपता के निर्माण पर केंद्रित है। उन्होंने अपने अध्ययन में बताया कि टीवी ने

विभिन्न संस्कृतियों के प्रतीकों को एक सामान्य ढाँचे में ढालने का प्रयास किया है, जिससे एक नई सांस्कृतिक पहचान उभरकर सामने आई है। यह सांस्कृतिक एकरूपता न केवल स्थानीय स्तर पर, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी परिलक्षित होती है। राय (2019) ने अपने शोध में टीवी के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक प्रतीकों के ग्लोबलाइजेशन का अध्ययन किया है। उनका निष्कर्ष यह है कि टीवी ने भारतीय त्योहारों और सांस्कृतिक प्रतीकों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाया है, जिससे इन प्रतीकों का विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार हुआ है। इससे न केवल भारतीय संस्कृति की पहचान मजबूत हुई है, बल्कि इसका प्रभाव वैश्विक सांस्कृतिक धारा पर भी पड़ा है। मिश्रा (2022) ने अपने अध्ययन में टीवी को एक सांस्कृतिक पुनर्निर्माण के उपकरण के रूप में देखा है। उन्होंने यह तर्क दिया है कि टीवी कार्यक्रमों ने परंपरागत सांस्कृतिक प्रतीकों को नए संदर्भों में प्रस्तुत किया है, जिससे समाज में सांस्कृतिक प्रतीकों के नए रूपों का उदय हुआ है। यह सांस्कृतिक पुनर्निर्माण समाज की बदलती आवश्यकताओं और आधुनिक संदर्भों के अनुरूप होता है। इससे स्पष्ट होता है कि टीवी ने सांस्कृतिक प्रतीकों के निर्माण, पुनर्निर्माण और उनके प्रसार में कैसे योगदान दिया है। यह अध्ययन इस दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है कि यह समाज के विभिन्न वर्गों पर टीवी के प्रभाव और सांस्कृतिक प्रतीकों के विकास को समझने में मदद करता है। साहित्यिक समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि मीडिया ने भारतीय त्योहारों की उत्सवधर्मिता पर एक महत्त्वपूर्ण और बहुआयामी प्रभाव डाला है। जहाँ एक ओर मीडिया ने त्योहारों को ग्लोबल और आधुनिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है, वहीं दूसरी ओर इसने पारंपरिक प्रथाओं और सांस्कृतिक धारणाओं को भी प्रभावित किया है। यह भी स्पष्ट है कि मीडिया का प्रभाव नकारात्मक और सकारात्मक दोनों पहलुओं से देखा जा सकता है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. उत्तरदाताओं के बीच भारतीय त्योहारों के मनाने की आवृत्ति और प्रकृति को समझना, जिसमें रीति-रिवाजों का पालन, वस्त्र और उपहार की पसंद शामिल है।
2. भारतीय संस्कृति को आकार देने और दर्शाने में मीडिया की भूमिका के बारे में उत्तरदाताओं की धारणाओं का मूल्यांकन करना।
3. यह समझने का प्रयास करना कि उत्तरदाताओं के अनुसार मीडिया भारतीय संस्कृति की वास्तविकता को सही ढंग से दर्शाता है अथवा नहीं।
4. भारतीय त्योहारों से जुड़ी सामग्री पर उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र विश्लेषणात्मक प्रकृति का है एवं अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सर्वेक्षण विधि से तथ्य संकलित किए गए हैं। यह मीडिया द्वारा सांस्कृतिक प्रतीकों एवं मूल्यों के निर्माण और उनके सामाजिक प्रभाव को समझने के लिए उपयुक्त है। निदर्शन पद्धति से दिल्ली एवं आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले कुल 250 उत्तरदाताओं से उत्तर प्राप्त किया गया है। तथ्य संकलन के लिए प्रश्नावली का उपयोग किया गया है। अध्ययन उद्देश्य को ध्यान में रखकर इसे इस प्रकार से संरचित किया गया है जिससे यह मीडिया के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों पर उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण और अनुभवों को समझने में सहायक हो सके। उत्तरदाताओं के चयन के लिए उद्देश्यपूर्ण नमूना विधि का उपयोग किया गया है। अध्ययन में द्वितीयक आँकड़ों को भी संदर्भ सहित दिया गया है।

विश्लेषण

त्योहार भारतीय संस्कृति एवं समाज में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारतीय जनमानस इन त्योहारों में गहरी रुचि रखता है एवं उल्लास के साथ इसमें सहभागिता करता है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार लगभग 98.6% उत्तरदाता भारतीय त्योहार मनाते हैं। यह उनके जीवन में सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति मजबूत जुड़ाव को दर्शाता है, जो यह बताता है कि पारंपरिक भारतीय त्योहार उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा बने हुए हैं। भारतीय त्योहारों को मनाने वाले उत्तरदाताओं का उच्च प्रतिशत यह संकेत देता है कि इन सांस्कृतिक प्रथाओं का उनके दैनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है, चाहे उनकी आयु, लिंग, शिक्षा या वैवाहिक स्थिति जैसी अन्य जनसांख्यिकी कारक जो भी हों। भारतीय त्योहार उत्तरदाताओं की सांस्कृतिक पहचान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसे आगे इस संबंध में विश्लेषित किया जा सकता है कि कैसे मीडिया का प्रतिनिधित्व इस सांस्कृतिक जुड़ाव को प्रभावित करता है या प्रतिबिंबित करता है। लगभग दो-तिहाई उत्तरदाता यह मानते हैं कि प्रमुख त्योहारों को वे अपने परिवार के साथ उल्लासपूर्वक मनाने का प्रयास करते हैं एवं इस दौरान वे अपने परिवार के वरिष्ठ सदस्यों द्वारा बताए गए नियमों का अनुपालन करते हैं, जबकि अन्य का मानना है कि वर्तमान परिवेश में त्योहारों से जुड़े रीति-रिवाजों का पालन करना मुश्किल होता है। उनका मानना है कि वर्तमान जीवनशैली ने त्योहारों को मनाने की प्रवृत्ति को भी प्रभावित किया है। त्योहार मनाने के तरीके एवं उपहार देने की परंपरा को भी बाजार ने प्रभावित किया है, जिसे उसने बड़ी चालाकी के साथ विज्ञापनों एवं अन्य अंतर्वस्तु के साथ हमारे त्योहारों के बीच स्थापित कर दिया है। अधिसंख्य (85%) उत्तरदाता इस बात से सहमति व्यक्त करते हैं एवं रक्षाबंधन पर चॉकलेट एवं पेटीएम के बढ़ते चलन को उदाहरणस्वरूप मानते हैं।

त्योहारों के दौरान पहनावे को भी टेलीविजन एवं सिनेमा ने प्रभावित किया है, विशेषकर पात्रों द्वारा त्योहार मनाते समय पहने गए परिधान लोगों को आकर्षित करते हैं एवं कई बार वे भी ऐसे ही परिधान धारण करते हैं। कुछ उत्तरदाता विज्ञापनों को भी महत्त्वपूर्ण कारक मानते हैं। यह दर्शाता है कि भारतीय त्योहारों के दौरान लोग अपनी सांस्कृतिक और पारंपरिक जड़ों से जुड़ने को प्राथमिकता देते हैं एवं बाजार पोषित मीडिया इसके महत्त्व को समझता है और उसी के अनुकूल अंतर्वस्तु को प्रस्तुत करता है। होली, दीवाली एवं ईद जैसे त्योहारों के अवसर पर पहने जाने वाले परिधानों पर हम इसका प्रभाव देख सकते हैं। इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय त्योहारों के दौरान भारतीय पहनावा न केवल परंपरा का प्रतीक है बल्कि यह सांस्कृतिक पहचान और गर्व का भी प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय त्योहारों के साथ मिठाई की गहरी सांस्कृतिक जड़ें होती हैं और यह स्पष्ट है कि मिठाई अब भी सबसे लोकप्रिय और परंपरागत उपहार मानी जाती है। आधुनिक समय में चॉकलेट्स एक नए और लोकप्रिय विकल्प के रूप में उभरी हैं, खासकर युवा पीढ़ी में। भारतीय त्योहारों के दौरान उपहार के रूप में मिठाई देना अब भी प्रमुख प्रवृत्ति है,

जो भारतीय परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों की गहराई को दर्शाता है। हालाँकि, चॉकलेट का चलन तेजी से बढ़ रहा है, जो उपभोक्ताओं की बदलती प्राथमिकताओं और आधुनिक सोच का प्रतीक है।

सूचना प्रौद्योगिकी के वर्तमान दौर में मीडिया ने न सिर्फ अपनी जड़ें मजबूत की हैं, अपितु उसकी पहुँच भी बहुत तेजी से बढ़ी है। सबसे अधिक उपयोगकर्ताओं (62%) ने डिजिटल मीडिया को सूचना प्राप्त करने के लिए प्राथमिकता दी है। सोशल मीडिया प्लेटफार्म, जैसे Facebook, Instagram और Twitter के साथ-साथ विभिन्न न्यूज पोर्टल सूचना प्राप्त करने का एक प्रमुख स्रोत बन गए हैं। यह दर्शाता है कि लोगों की एक बड़ी संख्या तुरंत और त्वरित सूचना की ओर आकर्षित हो रही है, जो डिजिटल मीडिया के माध्यम से आसानी से उपलब्ध होती है। हालाँकि मुख्यधारा मीडिया जैसे टीवी, रेडियो, अखबार और मैगजीन भी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत बने हुए हैं। समाचार चैनल और प्रिंट मीडिया का प्रभाव अब भी बना हुआ है, खासकर उन लोगों में जो तकनीकी साधनों का उपयोग कम करते हैं। एक और बड़ा स्रोत गूगल है, जिसे कई लोग सूचना खोजने के लिए उपयोग करते हैं। यह स्पष्ट करता है कि कई लोग सीधे गूगल का उपयोग करके विभिन्न वेबसाइटों और स्रोतों से जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मीडिया अंतर्वस्तु की पहुँच लोगों तक है एवं वे अपनी इच्छा एवं उपलब्धता के आधार पर इसका उपयोग करते हैं। तथ्यों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि अधिसंख्य लोग (70%) इस बात से सहमत हैं कि मीडिया संस्कृति को आकार देने में एक प्रमुख कारक बन गया है। उन्होंने इस बात से पूरी तरह सहमति व्यक्त की है कि मीडिया संस्कृति को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह इस बात की ओर इशारा करता है कि लोग मानते हैं कि मीडिया के प्रभाव से समाज में सांस्कृतिक मान्यताएँ, आदतें और व्यवहार तेजी से प्रभावित हो रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान दौर में जबकि हम मीडिया के लिए उपभोक्ता हैं, तो बाजार के मानकों से प्रभावित होने वाला मीडिया हमारी जीवनशैली को प्रभावित कर रहा है, साथ ही हमारा रहन-सहन भी इससे प्रभावित हो रहा है। ऐसे में, हमारा सांस्कृतिक आचरण भी मीडिया के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता है।

वर्तमान समय में मीडिया पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव भी बहुत अधिक देखने को मिलता है। अप्रवासी भारतीयों को आकर्षित करना हो या उनके आनुभविक मूल्यों का प्रसार हो, मीडिया में ऐसी अंतर्वस्तु प्रायः ही देखने को मिलती है। प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि अधिकतर लोग (76%) इस कथन से सहमत हैं कि मीडिया भारतीय संस्कृति की वास्तविक जड़ों को नहीं दिखाता है। वे मानते हैं कि आज का मीडिया भारतीय सांस्कृतिक धरोहर, परंपराओं और जड़ों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा है। हालाँकि उनका यह भी मत है कि भले ही बाजार आधारित व्यवहार को मीडिया की अंतर्वस्तु में देखा जा सकता है, परंतु यह किसी-न-किसी रूप में उपभोग की वस्तुओं को आकर्षक ढंग से अधिक प्रस्तुत करता है। उदाहरण के रूप में वे सिनेमा एवं टीवी धारावाहिकों में दिखाए जाने वाले त्योहारों के बारे में बताते हैं एवं स्वीकार करते हैं कि इससे युवा पीढ़ी त्योहारों के प्रति आकर्षित होती है एवं अधिक लोग तीज-त्योहारों से जुड़ते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि तीज-त्योहारों से जुड़े विषय को मीडिया द्वारा प्रमुखता से दिखाया जाता है एवं सभी प्रमुख जनमाध्यमों में तीज-त्योहारों से जुड़ी विषय सामग्री प्राप्त की जा सकती है। आज के आधुनिक जनमाध्यम हों अथवा परंपरागत माध्यम; अवसर विशेष पर भारतीय त्योहारों से जुड़ी सामग्री अवश्य प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष

भारत एक ऐसा देश है जहाँ वर्ष भर किसी-न-किसी भूभाग में कोई-न-कोई त्योहार मनाया ही जाता है। ये त्योहार हमारी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओं से गहरा जुड़ाव प्रस्तुत करते हैं, जो वर्षों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी विभिन्न मूल्यों का हस्तांतरण करते आए हैं। यह उत्सवधर्मिता भारतीय सभ्यता की पोषक रही है, जिसने समय के सापेक्ष सामाजिक मान्यताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आध्यात्मिक मूल्यों का हस्तांतरण किया है। भले ही भारतीय उत्सवों की जड़ें धार्मिक मान्यताओं से जुड़ी हों, परंतु इन्होंने भारतीय संस्कृति के प्रसार एवं विस्तार में महती भूमिका का निर्वहन किया है। कुछ विधि-विधानों की परिधि में संचालित होने वाले भारतीय उत्सव भारतीय परंपराओं को जीवित रखने की दृष्टि से भी महत्त्व रखते हैं। गणेश पूजा जैसा उत्सव हो, दशहरा हो, दीपावली हो, प्रकाश पर्व हो, ईद हो या फिर दुर्गा पूजा, भारतीय जनमानस इनसे आज भी सरोकार रखता है। वर्तमान मीडिया, जिसे जनसंस्कृति के विस्तार का कारक माना जाता है, वह भारतीय त्योहारों के प्रति हमेशा से उदार रहा है। भारतीय सिनेमा ने आरंभिक काल से ही इन त्योहारों से जुड़ी सामग्री प्रस्तुत की तो वहीं अन्य जनमाध्यम भी इन त्योहारों से जुड़ी सामग्री को प्रस्तुत करने में पीछे नहीं रहे हैं। राजश्री के बैनर तले बनी फिल्म 'नदिया के पार' में होली के उत्सव का फिल्मांकन आज भी लोग याद रखते हैं। गणपति उत्सव को अनेकों फिल्मों में दिखाया गया है, वहीं दुर्गा पूजा की धूम को मीडिया ने प्रमुखता से दिखाया है।

वैश्वीकरण के बाद से मीडिया में भारतीय उत्सवों को प्रस्तुत करने का तरीका भी बदला है, हालाँकि यह बदलाव बदलते सामाजिक दृष्टिकोण एवं बाजार द्वारा स्थापित किए जा रहे मानकों से प्रभावित दिखता है। ऐसे में, यह देखा जा सकता है कि भले ही मीडिया ने बाजार से जुड़े उत्पादों एवं आचरण तथा व्यावहार को प्रमुखता से दिखाया है, परंतु इसने त्योहारों के विस्तार में भी योगदान दिया है। यही कारण है कि छठ पूजा जैसे एक सीमित भूभाग में मनाया जाने वाला उत्सव आज देश-विदेश में रह रहे भारतीयों द्वारा मनाया जाने लगा है। 'करवा चौथ' जैसे त्योहार को जनमाध्यमों ने बढ़-चढ़कर प्रस्तुत किया है, जिसमें बाजार के अनेकानेक हित छिपे दिखते हैं।

निश्चित रूप से भारत की उत्सवधर्मिता पर मीडिया का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही असर देखने को मिलता है, परंतु एक बात तो तय है भारतीय मीडिया भी त्योहारों के दौरान उनके रंग में रंगा नजर आता है। बाजार ने मीडिया के माध्यम से भारतीय उत्सवधर्मिता में अपने हित के कुछ अवयव स्थापित कराने में अवश्य सफलता अर्जित की है, परंतु बड़े परिप्रेक्ष्य में इससे त्योहारों की लोकप्रियता भी बढ़ी है। समाज में बदलाव एक सुनिश्चित प्रक्रिया का अंग है एवं इस बदलाव के दौरान हमारे मूल्य भी बदलते रहे हैं। मीडिया को इन मूल्यों के संवाहक के रूप में देखा जा सकता है, जिसका प्रभाव भारतीय उत्सवधर्मिता पर वर्तमान में दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ सूची

कपूर, एस. (2020). त्योहारों का व्यावसायीकरण : विज्ञापन और उपभोक्तावाद. विज्ञापन अध्ययन पत्रिका, 18(3), 112-126.

कौशल, वी. (2020). टीवी और सांस्कृतिक एकरूपता : भारतीय संदर्भ में. सांस्कृतिक विमर्श, 15(1), 22-35.

गुप्ता, आर. (2015). टीवी धारावाहिकों में धार्मिक अनुष्ठान और सांस्कृतिक पहचान. मीडिया और समाज, 8(2), 78-89.

चंद्रशेखर, एस. (2013). टीवी धारावाहिकों में सांस्कृतिक प्रतीक : एक विश्लेषण. सांस्कृतिक अध्ययन जर्नल, 12(4), 56-70.

तिवारी, ए. (2010). भारतीय त्योहारों का सांस्कृतिक महत्त्व. भारतीय सांस्कृतिक शोध, 7(2), 23-39.

बंसल, ए. (2015). मीडिया और संस्कृति : भारतीय परिप्रेक्ष्य. भारतीय मीडिया अध्ययन संस्थान.

मिश्रा, पी. (2022). टीवी और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण : एक नई दृष्टि. आधुनिक मीडिया समीक्षा, 11(5), 45-60.

राय, एन. (2019). टीवी के माध्यम से सांस्कृतिक प्रतीकों का ग्लोबलाइजेशन. अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक अध्ययन, 10(2), 95-108.

वर्मा, जे. (2016). मीडिया और युवा पीढ़ी : संस्कृति के प्रचार-प्रसार में भूमिका. युवा और मीडिया, 16(1), 78-90.

शर्मा, एल. (2018). मीडिया का प्रभाव और भारतीय त्योहारों की वास्तविकता. मीडिया अध्ययन पत्रिका, 13(3), 88-102.

सिन्हा, आर. (2018). टीवी विज्ञापनों में सांस्कृतिक प्रतीकों का निर्माण. विज्ञापन और संस्कृति, 14(4), 50-65.

सिंह, के. (2012). ग्लोबल आइकन के रूप में भारतीय त्योहार. वैश्विक संस्कृति, 9(6), 34-47.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 50-55, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

सांस्कृतिक पहचान और मीडिया : राम मंदिर के संदर्भ में भारत-नेपाल संबंध

डॉ. पूर्वा कुमारी[1]

सारांश

श्री राम मंदिर का निर्माण न सिर्फ भारत के लिए बल्कि नेपाल के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक घटना के रूप में उभरकर सामने आया है, जिसमें मीडिया की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। नेपाल, भारत का एक प्रमुख पड़ोसी देश है, फलस्वरूप सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक तौर पर इन दोनों देशों का संबंध काफी गहरा रहा है, जिसकी प्रासंगिकता रोटी-बेटी के रूप में आज भी कायम है। राम मंदिर ने भारत और नेपाल के लोगों की मन:स्थिति में एक विशेष प्रकार का जुड़ाव पैदा किया है और एक विशेष धार्मिक पहचान को प्रस्तुत किया है। इस धार्मिक घटना ने दोनों देशों की विदेश नीति को भी प्रभावित किया है। प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य यह जाँच करना है कि राम मंदिर ने एक सामाजिक व धार्मिक घटना के तौर पर इन दोनों देशों के द्विपक्षीय रिश्तों को एक नया आयाम देने का प्रयास किया है। साथ ही, इस लेख के माध्यम से राम मंदिर के सांस्कृतिक प्रभाव का अन्वेषण करने का भी प्रयास किया गया है। दोनों देशों की मीडिया ने इस प्रक्रिया को तेज किया है, जिसमें सांस्कृतिक संवाद को प्रमुखता मिली है। पिछले कुछ सालों में इन दोनों देशों के संबंधों में काफी उतार-चढ़ाव आया है। ऐसे में, यह जानने का इस लेख में प्रयास किया गया है कि राम मंदिर के प्रभाव को उजागर करने के लिए कौन-कौन से सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारक हैं, जिन्होंने इन दोनों देशों के लोगों को करीब लाने का प्रयास किया है। यह भी कि आपसी संबंधों में सांस्कृतिक, कूटनीतिक क्या स्थिति बन रही है और दोनों देशों के लोगों की मन:स्थिति को कैसे इस उपक्रम ने प्रभावित किया है। इसमें दोनों देशों के मीडिया का क्या योगदान है, इस पर भी शोध पत्र में एक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अंततः यह अध्ययन मीडिया के दृष्टिकोण से राम मंदिर निर्माण और भारत-नेपाल संबंधों के उभरते स्वरूप को समझने का एक प्रयास है।

संकेत शब्द : श्री राम मंदिर, सांस्कृतिक पहचान, मीडिया, मन:स्थिति, द्विपक्षीय संबंध, राजनीतिक कारक, भारत-नेपाल संबंध

प्रस्तावना

भारत और नेपाल का संबंध अपनी समसामयिक परिस्थितियों से बहुत प्रभावित हो रहा है। इसमें राम मंदिर एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में उभर कर सामने आया है। इस घटना ने न सिर्फ भारत को बल्कि नेपाल को भी परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। द्विपक्षीय संबंधों को बेहतर बनाने में और दोनों देशों के लोगों की मन:स्थिति को करीब लाने में पथ प्रदर्शन किया है और यथासंभव बेहतर और मजबूत रिश्तों को उजागर करने का प्रयास किया है (कांत, 2023)। भारत और नेपाल के बीच सांस्कृतिक और धार्मिक संबंध सदियों पुराने हैं, जिनकी जड़ें प्राचीन इतिहास में भी मिलती हैं तथा जिनका उल्लेख पौराणिक ग्रंथों में भी मिलता है। प्रमाण के तौर पर 'रामायण' प्राचीन ग्रंथों में से एक प्रमुख उदाहरण है (वर्मा, 2015)। राम मंदिर ने इन संबंधों को और मजबूत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीडिया ने इस प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य किया है तथा दोनों देशों के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान करने और जनमानस को प्रभावित करने में अहम भूमिका निभाई है।

मीडिया

मीडिया का समाज में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह जनता और सरकार के बीच संवाद स्थापित करने, सूचनाएँ प्रसारित करने और जनमत तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मीडिया न केवल सूचना का साधन है, बल्कि समाज में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचनाओं को आकार देने का भी यह एक प्रमुख माध्यम है (जैन, 2021)। मीडिया का विकास इतिहास में विभिन्न चरणों से होकर गुजरा है। पहले के समय में सूचनाएँ मौखिक रूप से या लिखित दस्तावेजों के माध्यम से दी जाती थीं। इसके बाद प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार ने समाचार पत्रों को जन्म दिया, जो औद्योगिक क्रांति के समय सूचना का महत्त्वपूर्ण साधन बनकर उभरे। बीसवीं सदी में रेडियो और टेलीविजन का विकास हुआ, जिसने सूचना और मनोरंजन को घर-घर तक पहुँचा दिया। हाल ही में, डिजिटल मीडिया और सोशल मीडिया ने सूचना के प्रसारण में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है (चतुर्वेदी, 2020)।

प्रिंट मीडिया : प्रिंट मीडिया ने पहले लोगों तक सूचनाओं को पहुँचाने का कार्य किया। समाचार पत्रों और पत्रिकाओं ने सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर विचार-विमर्श का एक मंच प्रदान किया।

रेडियो और टेलीविजन : रेडियो और टेलीविजन ने सूचना, शिक्षा और मनोरंजन को बड़े पैमाने पर फैलाने का कार्य किया। ये माध्यम व्यापक जनसमूह तक तुरंत पहुँच सकते थे और इसीलिए इनमें सूचना और प्रचार की क्षमता अधिक थी।

डिजिटल मीडिया : इंटरनेट और स्मार्टफोन के आगमन के साथ डिजिटल मीडिया ने न केवल सूचना तक लोगों की पहुँच आसान कर दी, बल्कि इसने संवाद को दोतरफा भी बना दिया। सोशल मीडिया प्लेटफार्म जैसे फेसबुक, एक्स और इंस्टाग्राम ने संवाद को एक नई दिशा दी, जिससे आम लोग भी सूचनाओं का प्रसार कर सकते हैं।

राम मंदिर और मीडिया तथा भारत-नेपाल संबंध

मीडिया समाज में सामाजिक एकता और समरसता को बढ़ावा देने में

[1]स्वतंत्र शोधकर्ता, नई दिल्ली. ईमेल : purvakumari86@gmail.com

मदद करता है। टेलीविजन, रेडियो और समाचार पत्र विभिन्न समुदायों, धर्मों और संस्कृतियों को एक-दूसरे के बारे में जानकारी देते हैं, जिससे समाज में समरसता और सामंजस्य स्थापित होता है।

धार्मिक और सांस्कृतिक संबंधों को मजबूती

राम मंदिर के निर्माण ने भारत और नेपाल के सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करने में अहम भूमिका निभाई है। भारतीय और नेपाली मीडिया, दोनों ने मंदिर निर्माण की खबरों को प्रमुखता दी और इसे दो देशों की साझा धार्मिक धरोहर के रूप में प्रस्तुत किया। भारतीय मीडिया ने जनकपुर और अयोध्या के बीच सांस्कृतिक संबंधों को उजागर करते हुए राम और सीता की पौराणिक कथा पर ध्यान केंद्रित किया, जिससे नेपाल के लोग भी इस प्रक्रिया का हिस्सा बन सके। उदाहरण के लिए, भारतीय और नेपाली मीडिया ने अयोध्या और जनकपुर के बीच तीर्थयात्राओं, धार्मिक यात्राओं और 'रामायण सर्किट' जैसी योजनाओं की कवरेज की। यह कवरेज दोनों देशों में धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करने में सहायक रही है (चतुर्वेदी, 2020)।

राजनैतिक संबंधों पर गहरा प्रभाव

राम मंदिर निर्माण के दौरान, भारत और नेपाल के बीच कुछ राजनीतिक मुद्दे भी सामने आए। मीडिया ने इन विवादों की रिपोर्टिंग करते समय मंदिर निर्माण को एक सकारात्मक कूटनीतिक माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया। हालाँकि, दोनों देशों में कुछ समय के लिए तनाव देखा गया, फिर भी धार्मिक और सांस्कृतिक कड़ियों के माध्यम से राजनीतिक संवाद को बनाए रखा गया (शर्मा (2024)। उदाहरण के लिए, जब सीमा विवाद के कारण भारत और नेपाल के बीच संबंधों में खटास आई, तब भी राम मंदिर से जुड़े मुद्दों पर मीडिया ने दोनों देशों के साझा धार्मिक संबंधों पर जोर दिया, जिससे संवाद की संभावनाएँ बनी रहीं।

जनमत निर्माण में योगदान

मीडिया ने राम मंदिर निर्माण को एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक घटना के रूप में प्रस्तुत किया और दोनों देशों के जनमानस में इसके प्रति सकारात्मक भावनाएँ उत्पन्न कीं। नेपाल के हिंदू समुदाय ने भी भारतीय मीडिया के प्रभाव से राम मंदिर के निर्माण को गर्व की दृष्टि से देखा। इससे दोनों देशों के लोगों के बीच आपसी संबंधों में मजबूती आई और धार्मिक एकता की भावना का विकास हुआ। उदाहरण के लिए भारतीय और नेपाली मीडिया में राम मंदिर शिलान्यास और उद्घाटन से संबंधित समाचारों को बड़े पैमाने पर कवरेज मिली, जिससे नेपाल में रामायण से जुड़े धार्मिक महत्त्व की पुनःपुष्टि हुई और दोनों देशों के नागरिकों के बीच सांस्कृतिक सामंजस्य बढ़ा (नेपाल पर्यटन मंत्रालय, 2022)।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन को प्रोत्साहन

राम मंदिर निर्माण के बाद धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा मिला है। मीडिया ने इस प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाई, खासकर अयोध्या और जनकपुर के बीच यात्रा को बढ़ावा देने में भारतीय मीडिया के साथ-साथ नेपाल के मीडिया ने भी खास योगदान दिया। इस प्रकार, मीडिया ने न केवल धार्मिक भावना को मजबूत किया, बल्कि दोनों देशों के आर्थिक संबंधों को भी बढ़ावा दिया है (भट्टाचार्य, 2022)।

विश्व पटल पर भारत और नेपाल एक खास महत्त्व रखते हैं। ये दोनों देश दक्षिण एशिया में स्थित हैं। नेपाल भारत के साथ पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में 1850 किमी. की सीमा साझा करता है। इन सीमाओं से जुड़े भारत के राज्य हैं—उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल और सिक्किम। दोनों देशों के बीच खुली सीमा होने के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत देखने को मिलती है, जिसमें धार्मिक तीर्थस्थलों का अपना एक खास महत्त्व है। नेपाल में हिंदू, मस्लिम, सिक्ख व बौद्ध सभी धर्मों के लोग रहते हैं, पर भारत की तरह यह भी हिंदू बाहुल्य है (वर्मा, 2015)। नेपाल के जनकपुर शहर और भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के अयोध्या शहर का एक खास संबंध है। जनकपुर को रामायण में माता सीता का जन्मस्थान और अयोध्या को प्रभु राम का जन्मस्थान बताया गया है। माता सीता नेपाल की बेटी हैं, जिनका ब्याह भारत के राजा दशरथ के पुत्र प्रभु राम के साथ हुआ था। यह रिश्ता सदियों से दोनों देशों के लोग निभाते आ रहे हैं (वर्मा, 2015, पृ.148)। ऐसे में भारत-नेपाल का संबंध दोनों देशों के लोगों की भावनाओं से भी जुड़ा है। राम मंदिर के निर्माण ने इस भावना को और ज्यादा प्रस्फुटित किया और लोगों की मन:स्थिति पर अमिट छाप छोड़ी।

शोध उद्देश्य

1. राम मंदिर के संदर्भ में भारत-नेपाल संबंधों पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों का आकलन करना, जिसमें धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टिकोण शामिल हैं।
2. भारतीय और नेपाली मीडिया में राम मंदिर से संबंधित रिपोर्टों का विश्लेषण करना, जिससे यह समझा जा सके कि इस विषय को किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।
3. राम मंदिर पर जनता की संवेदनशीलता और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना तथा इसमें मीडिया के योगदान का आकलन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक और अन्वेषणात्मक अनुसंधान प्रक्रिया का उपयोग किया गया है। द्वितीयक डेटा संग्रह के तहत साहित्य समीक्षा, मीडिया रिपोर्टों और मीडिया लेखों का विश्लेषण किया गया है, ताकि यह समझा जा सके कि मीडिया ने राम मंदिर और भारत-नेपाल संबंध को किस प्रकार प्रस्तुत किया है। डेटा विश्लेषण के लिए गुणात्मक विधियों का प्रयोग किया गया है।

भारत-नेपाल संबंध

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। इसी की तर्ज पर नेपाल भी 20 सितंबर, 2015 को संविधान लागू कर एक गणतंत्रात्मक व लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की ओर पूरी तरह से अग्रसर हो गया है (शर्मा, 2020)। लोकतंत्र को स्थापित करने में नेपाल को राजनीतिक संक्रमणकाल की प्रक्रिया से गुजरना पड़ा, जो इस देश के लिए बहुत ही कष्टदायी था। कभी गुलाम देश न रहने के बावजूद वहाँ असीमित या सीमित तौर पर राजतंत्रात्मक प्रणाली रही। जब नेपाल ने अपना लोकतंत्र की ओर कदम बढ़ाया तो इसके साथ कई चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आईं। बहरहाल, नेपाल लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत उन चुनौतियों का

सामना करने का हर संभव प्रयास कर रहा है और विकास की ओर अग्रसर है (भारत-नेपाल द्विपक्षीय संबंध वार्षिक रिपोर्ट, 2023)।

एक कहावत है कि अपना घर तभी शांत व सुरक्षित रह सकता है, जब अपने पड़ोस के घरों में भी शांति व सुरक्षा का माहौल हो। यही बात किसी देश और उसके पड़ोसी देशों पर भी लागू होती है। भारत, दक्षिण एशिया में स्थित अन्य देशों की तुलना में सबसे महत्त्वपूर्ण देश के रूप में स्थान रखता है (तलवार, 2019)।

भारत में, 2014 में एनडीए सरकार आई, जिसके तहत नरेंद्र मोदी भारत के प्रधानमंत्री बने। उन्होंने अपने शपथ ग्रहण समारोह में सभी पड़ोसी देशों को आमंत्रित किया था, जिसमें नेपाल भी मुख्य रूप से शामिल था। हर बार की तरह इस बार भी भारत ने फिर से अपने सभी पड़ोसी देशों से रिश्ते बेहतर करने की कोशिश की। अपने शपथ ग्रहण समारोह के समय भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का कहना था, "अगर पड़ोसी देशों में शांति व खुशहाली है, तभी भारत में भी शांति और खुशहाली सही मायने हो पाएगी।" भारत के पड़ोसी देशों में नेपाल, पाकिस्तान, श्रीलंका, मालदीव, म्याँमार, अफगानिस्तान, बाँग्लादेश व भूटान हैं।

नेपाल में साल 2015 में नया संविधान लागू होने के तुरंत बाद ही एक अलग तरह का नया आंदोलन शुरू हो गया, जिसे 'मधेस आंदोलन' के रूप में जाना जाता है। इससे न सिर्फ नेपाल, बल्कि भारत भी प्रभावित हुआ और दोनों देशों के रिश्तों में एक विशेष तरह का ठहराव देखने को मिला। नेपाल के तराई क्षेत्र में रहने वाले मधेसी समुदाय व थारू समुदाय के लोगों ने इस आंदोलन की शुरुआत की थी। इन समुदायों के अनुसार नेपाल के नए संविधान में मधेस व थारू समुदाय के लोगों को उस वास्तविक अधिकार से वंचित किया गया है, जिसकी वे माँग कर रहे थे। आंदोलनकर्ता नेपाल व भारत से सटी सीमा चौकियों को जाम करके विरोध जता रहे थे, इन सीमा चौकियों के रास्ते भारत और नेपाल का 85 प्रतिशत व्यापार होता है। आंदोलनकर्ताओं ने भारत और नेपाल की सीमा से सटी चौकियों को पूरी तरह से बंद कर दिया था, फलस्वरूप नेपाल में भारत के जरिये होने वाली रसद की आपूर्ति नहीं हो पा रही थी। इस आंदोलन में भारत की ओर से अघोषित नाकेबंदी की गई, जिससे इन दोनों देशों के रिश्तों में काफी उतार-चढ़ाव देखने को मिला।

नेपाल में मधेसी लोगों को भारत का करीबी माना जाता है। नेपाल का मानना है कि मधेसी लोग भारतीय लोगों के वंशज हैं, इसलिए वह मधेसी लोगों को नेपाल की नागरिकता देने से शुरू से ही हिचकता रहा है। नेपाल को लगता है कि भारत नेपाल की संप्रभुता में दखल देता है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। माओवादी आंदोलन ने भारत-नेपाल के बीच 1950 में हुए पंचशील के सिद्धांत पर फिर से पुनर्विचार करने की माँग की। नेपाल में साल 2017 में आम चुनाव हुआ तथा साम्यवादी दल की जीत हुई। फलस्वरूप साम्यवादी दल की सरकार सत्ता में आई। के. पी. शर्मा ओली ने 15 फरवरी, 2018 को प्रधानमंत्री पद ग्रहण किया। इसके पश्चात् भारत और नेपाल के बीच सकारात्मक परिप्रेक्ष्य में आपसी यात्राएँ देखने को मिलीं, जिनमें कई महत्त्वपूर्ण द्विपक्षीय समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। इन द्विपक्षीय पहलों ने दोनों देशों के बीच आपसी सहयोग, समन्वय, आपसी विश्वास और लोगों के मध्य आपसी संपर्क को बढ़ाने में बहुत योगदान दिया। पिछले कुछ सालों में इन दोनों देशों ने आपसी राष्ट्रीय महत्त्व को समझते हुए एक-दूसरे के और करीब आने का प्रयास किया। इसके तहत भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अब तक नेपाल की पाँच बार यात्रा की (साल 2014 में दो बार और साल 2018 में दो बार तथा साल 2022 में एक बार), तो वहीं नेपाल के प्रधानमंत्री ओली ने अपने दोनों कार्यकालों की अपनी राजकीय यात्रा में भारत को पहली वरीयता में रखा, जो अपने आप में विशेष मायने रखता है। इन यात्राओं में मुख्यत: साल 2015 में नए संविधान के निर्माण और मधेस आंदोलन के बाद दोनों देशों के बीच के संबंधों में आए ठहराव और अविश्वास को समाप्त करने के लिए हर संभव प्रयास किया गया। इसके साथ-साथ दोनों देश द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने हेतु बहुपक्षीय मंचों की सार्थकता की समझ को विकसित करते हुए क्षेत्रीय स्तर पर भी सहयोग को आगे बढ़ाने में अग्रसर हुए हैं। चौथे बिम्सटेक सम्मेलन का आयोजन नेपाल की राजधानी काठमांडू में 30-31 अगस्त, 2018 को हुआ, जिसमें भारत के प्रधानमंत्री मोदी ने भी भाग लिया। इस प्रकार यह नेपाल की उनकी चौथी यात्रा थी।

भारत-नेपाल संबंध और राम मंदिर

राम मंदिर के निर्माण ने भारत-नेपाल संबंधों को एक नया आयाम देने का प्रयास किया है, जिसकी जड़ें सामाजिक और धार्मिक स्तर पर काफी पुरानी हैं। इस घटना ने सदियों से चली आ रही धार्मिक मान्यताओं को सँजोकर रखने की प्रवृत्ति की पुनरावृत्ति की है। दोनों देशों के लोगों की मन:स्थिति को भावनाओं के धागे में पिरोने का कार्य इस ऐतिहासिक मंदिर निर्माण के संदर्भ में देखा जा सकता है, जिसमें भारत के लोगों के साथ-साथ नेपाल के लोगों ने भी दिल खोलकर सहयोग दिया और एक विशेष तरह के भावनात्मक जुड़ाव को प्रकट किया। इस मंदिर के निर्माण के सांस्कृतिक प्रभाव को हम इस प्रकार समझ सकते हैं—

प्राचीन संबंध : भारत सांस्कृतिक विविधता से भरा देश है। वर्तमान समय में दक्षेस एक क्षेत्रीय संगठन है, जिसमें भारत को मिलाकर कुल आठ देश शामिल हैं। प्राचीन काल में इसे जंबूद्वीप कहा जाता था। इसके उल्लेख अशोक के शिलालेखों में भी मिले हैं। अशोक के साम्राज्य में यवन और कंबोज शामिल थे (वर्मा, 2015, पृ.148)। डॉ. दिनेशचंद्र सरकार के अनुसार 'स्कंद पुराण' (एक पौराणिक ग्रंथ) में भारतवर्ष के नौ खंड तथा बहत्तर विभेद का उल्लेख मिलता है, जिसमें पच्चीस क्षेत्रों के नाम तथा गाँवों की संख्या को बताया गया है। इसमें नेपाल एक लाख गाँव से शुरू होता है तथा यवन दस हजार गाँव पर समाप्त होता है, वहीं कंबोज के नाम का बीच में कहीं उल्लेख मिलता है (वर्मा, 2015, पृ.15)। डॉ. दिनेशचंद्र सरकार का मानना है कि ये संख्याएँ आभासी हो सकती हैं, पर यमन और कंबोज के साथ नेपाल नाम का आना यह दर्शाता है कि यह भारत देश से अलग नहीं, बल्कि इसी में समाहित था। खोतान के राजा विशधर्म ने भी अपने खरोष्ठी लेख में इस बात को उजागर किया है कि 'इस जंबूद्वीप में सोलह जनपद और कुल मिलाकर छियासी हजार नगर हैं।' अत: भारत-नेपाल के प्राचीन संबंध की किसी निश्चित तिथि का निर्धारण कर पाना मुश्किल है। नेपाल का संबंध भारत के साथ वही है जो मनुष्य के अंगों का पूरे शरीर के साथ होता है (वर्मा, 2015, पृ.5-6)। चाहे भौगोलिक विस्तार हो या सांस्कृतिक विरासत, दोनों का विस्तार एकरस दिखाई पड़ता है।

धार्मिक एकात्मकता : भारत और नेपाल में हिंदू बहुलता के लोग अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। धार्मिक एकात्मकता की झलक सिर्फ वर्तमान में राम मंदिर के निर्माण में ही नहीं दिखाई देती, बल्कि इसकी जड़ें काफी

गहराई में विद्यमान हैं। नेपाली संस्कृति के इतिहास में झाँकें तो भारतीय धर्म के प्रमुख देवी-देवताओं से संबंधित बहुत सारी सूचनाएँ व्याप्त हैं, जो सदियों से भारत-नेपाल के लोगों के बीच धर्म व उपासना की धारा बहाती चली आ रही हैं। नेपाल के कुछ सांस्कृतिक अभिलेख इसके परिचायक हैं। एक इटालियन विद्वान् आर. ग्नोली ने नेपाल के नवासी अभिलेखों को संग्रहीत करके उसका प्रकाशन किया। ये सभी अभिलेख गुप्तकाल की लिपि तथा संस्कृत भाषा में हैं। अधिकतर अभिलेखों में शिवलिंग के साथ-साथ अन्य हिंदू देवी-देवताओं का साक्ष्य मिला है, जिसमें भगवान विष्णु, इंद्र, माता लक्ष्मी तथा उमा की प्रतिमाएँ स्थापित करने का प्रमाण प्राप्त हुआ है। शैव धर्म की उपासना का प्रमुख उदाहरण लगभग 400 ई. में स्थापित नेपाल का पशुपति नाथ मंदिर है, जो भारत-नेपाल की धार्मिक एकात्मकता को दर्शाता है। नेपाल के राजा मानदेव ने अपने पिता की प्रतिमा को स्थापित कर उसके दैवीय स्वरूप को स्वीकार करते हुए उसकी उपासना की थी (वर्मा, 2015, पृ.15), जिसका उल्लेख 'रामायण' में भी मिलता है। जब भरत ननिहाल से अयोध्या वापस आ रहे थे तो देवकुल में उन्होंने राजा दशरथ की प्रतिमा को देखा और तब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके पिता अब इस दुनिया से विदा ले चुके हैं (अग्रवाल, 2010, पृ.54)। इस प्रकार भारत-नेपाल के लोगों के मध्य धार्मिक एकात्मकता का संबंध उजागर होता है।

सांस्कृतिक जुड़ाव : भारत के साथ-साथ कई अन्य एशियाई देशों में भी प्रभु राम का भजन-गायन कई शताब्दियों से चलता आ रहा है। नेपाल में भी प्रभु राम का कथावाचन सदियों से होता आ रहा है और काफी लोकप्रिय भी है। नेपाल का जनकपुर क्षेत्र ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक तौर पर खास मायने रखता है। यह माता सीता की जन्मस्थली है। यहाँ की भाषा मैथिली है, जिसका उल्लेख रामायण में माता सीता के एक नाम मैथिली के रूप में किया गया है (वर्मा, 2015, पृ.148)। यहाँ रामघाट और हनुमान घाट, दो मंदिरों के रूप में मिलते हैं। नेपाल में संस्कृत राजभाषा के रूप में अनेक शताब्दियों तक रही, उसके बाद इसकी जगह धीरे-धीरे नेपाली भाषा ने ले ली (अग्रवाल, 2010, पृ.54)। भानुभक्त की रामायण, जो कि नेपाली भाषा में है, नेपाल में काफी लोकप्रिय हुई। भानुभक्त की रामायण में भारतीय संसकृति की झलक मिलती है (वर्मा, 2015, पृ.15)। बेशक नेपाल और भारत के राजनैतिक परिदृश्य अलग-अलग हों, पर सांस्कृतिक परिदृश्य में समानता साफ तौर पर नजर आती है। ये दोनों देश सांस्कृतिक एकता को एक धागे में पिरोने का कार्य करते हैं।

राम मंदिर का निर्माण सकारात्मक संदेश का परिचायक

भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के अयोध्या (अवध) में राम मंदिर का उद्घाटन 22 जनवरी, 2024 को हुआ। नेपाल के लोगों के लिए भी यह आस्था के एक बड़े केंद्र के रूप में उभरकर सामने आया है, जिसमें दोनों देशों के लोगों ने अपने अटूट रिश्ते को कायम रखा है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार प्रभु राम का विवाह नेपाल के जनकपुर में हुआ था। नेपाल के राजदूत 'शंकर पी. शर्मा' के अनुसार, "मंदिर के उद्घाटन से दोनों देशों के नागरिकों को 'मजबूत और सकारात्मक संदेश' मिला है। दोनों देशों के बीच संबंधों को मजबूत करने में राम मंदिर काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। राम मंदिर नेपाल के लिए 'अत्यंत महत्त्वपूर्ण' है। भविष्य में हर साल नेपाल से लाखों लोग अयोध्या आएँगे (झा, 2017)। नेपाल अयोध्या से बहुत ही सुदृढ़ता से जुड़ा हुआ है। इसके पीछे माता सीता का प्रभु राम से प्रणय संबंध का होना है, जिसे हर नेपालवासी बखूबी जानता है। आज भी हर साल जनकपुर में अयोध्या से बारात आती है। नेपाल में भारत की तरह रामनवमी व विजयदशमी उत्सव मनाए जाते हैं तथा हर साल मेले का आयोजन भी किया जाता है। ये सारी चीजें सांस्कृतिक समरसता की मिसाल प्रस्तुत करती हैं।

राम मंदिर निर्माण के लिए नेपाल की काली गंडकी नदी में शालिग्राम के रूप में पहचानी गई चट्टानों को अयोध्या लाया गया और इनकी सहायता से राम, लक्ष्मण व माता सीता की मूर्ति का निर्माण हुआ। इसके साथ-साथ नेपालवासियों ने बहुत बड़ी मात्रा में सीता माता को विदाई के तौर पर भार (हिंदू मान्यता के अनुसार लड़की की शादी में दिया गया सारा सामान) दिया, जो राम मंदिर के निर्माण में सहायक हुआ। ये सारी चीजें यह दर्शाती हैं कि दोनों देशों की भावनाएँ बहुत संवेदना के साथ जुड़ी हुई हैं।

नेपाल और भारतीय मीडिया का राम मंदिर पर दृष्टिकोण

नेपाल और भारत के बीच ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संबंधों के कारण, राम मंदिर अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस संदर्भ में नेपाली और भारतीय मीडिया ने राम मंदिर के कई पहलुओं को उजागर किया है और सहयोग भी किया है। यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु दिए गए हैं, जो इन दोनों देशों के बीच सहयोग व समन्वय को दर्शाते हैं।

सांस्कृतिक संवाद

राम मंदिर सिर्फ एक धार्मिक स्थल नहीं है, बल्कि यह दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों को भी दर्शाता है। नेपाल के मीडिया ने अयोध्या के राम मंदिर की जानकारी को प्रमुखता से प्रकाशित किया, जिसने नेपाल के पाठकों को भारतीय संस्कृति और धर्म के बारे में जागरूक किया। इसके साथ ही, भारतीय मीडिया ने नेपाल के धार्मिक स्थलों, जैसे जनकपुर, की भी कवरेज की है, जिससे दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संवाद को बढ़ावा मिला है (जैन, 2021, पृ.200-215)।

समाचारों का आदान-प्रदान

नेपाली और भारतीय समाचार पत्रों और चैनलों ने राम मंदिर से संबंधित घटनाओं की रिपोर्टिंग में एक-दूसरे के समाचारों का हवाला दिया। उदाहरण के लिए, जब भारत में राम मंदिर का शिलान्यास हुआ तो नेपाली मीडिया ने इस घटना को प्रमुखता से कवर किया, जिसमें भारतीय मीडिया के उद्धरण भी शामिल थे। इसी तरह, नेपाल में राम मंदिर के संदर्भ में हुई गतिविधियों को भारतीय मीडिया ने रिपोर्ट किया है (शर्मा, 2024)।

सामाजिक मुद्दों पर चर्चा

राम मंदिर निर्माण के संदर्भ में नेपाली और भारतीय मीडिया ने सामाजिक मुद्दों जैसे धार्मिक सहिष्णुता, सांस्कृतिक समरसता और द्विपक्षीय संबंधों पर चर्चा की। दोनों देशों के पत्रकारों ने एक मंच पर आकर इन मुद्दों पर संवाद स्थापित किया, जिससे दोनों देशों के लोगों के बीच समझ और सहयोग बढ़ा है। इसने लोगों की मन:स्थिति को गहराई तक

प्रभावित किया है (मेहता, 2020, पृ.145-162)।

धार्मिक पर्यटन को प्रोत्साहन

राम मंदिर ने धार्मिक पर्यटन को प्रोत्साहन देने के लिए एक सुअवसर प्रदान किया है। नेपाल के मीडिया ने इस संदर्भ में भारत के तीर्थ स्थलों की महत्ता को उजागर किया। भारतीय मीडिया ने भी नेपाल के धार्मिक स्थलों, जैसे जनकपुर, की खासियतों पर प्रकाश डाला है, जिससे दोनों देशों के बीच धार्मिक पर्यटन को सराहनीय स्तर पर प्रोत्साहन मिला है (झा, 2017)।

विशेष कार्यक्रम और रिपोर्टिंग

नेपाली और भारतीय मीडिया ने राम मंदिर निर्माण के विभिन्न पहलुओं को विशेष कार्यक्रमों और रिपोर्टों के माध्यम से कवर किया है। इस सहयोग में न केवल समाचारों का आदान-प्रदान शामिल है, बल्कि मीडिया संगठनों ने सामूहिक रूप से कार्यक्रम आयोजित किए हैं, जिसमें धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विषयों पर चर्चा की गई है (राठी, 2022, पृ.378-394)।

निष्कर्ष

राम मंदिर के संदर्भ में भारतीय और नेपाली मीडिया ने सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक संबंधों को संतुलित और सकारात्मक तरीके से प्रस्तुत किया। इसने दोनों देशों के बीच ऐतिहासिक संबंधों को न केवल मजबूत किया, बल्कि उन्हें एक नई दिशा भी दी, जिससे धार्मिक और कूटनीतिक स्तर पर संबंध मजबूत हुए। भारत, नेपाल के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक व सामरिक तौर पर बहुत करीब से जुड़ा हुआ है। इन दोनों देशों का संबंध रोटी-बेटी का है, जो इन दोनों देशों के संबंधों की प्रासंगिकता को जाहिर करता है। सांस्कृतिक और धार्मिक परिपेक्ष्य में देखें तो इनका संबंध दोनों देशों के लोगों की मन:स्थिति के साथ-साथ भावनाओं से भी जुड़ा है। राम मंदिर के निर्माण ने दोनों देशों के रिश्तों में मजबूती लाने का प्रयास किया तथा विश्वसनीयता को प्रामाणिक बनाने का हर संभव प्रयास किया है। रामायण सर्किट और बौद्ध सर्किट ने न सिर्फ परिवहन को, बल्कि दोनों देशों के रिश्तों को भी सुगम बनाने में योगदान दिया है। सामाजिक और सांस्कृतिक जड़ें मजबूत होने के बावजूद अभी भी ऐसे कई कारक हैं, जो इन दोनों देशों के रिश्तों में दूरियाँ लाने का प्रयास करते हैं। इसमें मुख्य रूप से सामरिक क्षेत्र की उस घटना का नाम लिया जा सकता है, जिसमें नेपाल अपने नक्शे में भारत के कुछ हिस्सों को दिखाता है, जो उचित नहीं है। वहीं दूसरी ओर, नेपाल के प्रधानमंत्री का यह कथन कि प्रभु राम का जन्म भारत के अयोध्या में न होकर नेपाल में हुआ था, विवाद का कारण बना। ऐसे बयान कुछ हद तक दोनों देशों में दूरियाँ बढ़ाने का काम करते हैं। भारत के प्रधानमंत्री ने अपनी चौथी यात्रा के दौरान यह कहा था कि 'व्यक्ति और सरकारें आती-जाती रहती हैं, लेकिन सदियों पुराने हमारे संबंध हमेशा मजबूत रहेंगे।' धार्मिक परिप्रेक्ष्य में उन्होंने कहा था, "अयोध्या जानकी के बिना अधूरा है तथा भारत के तीर्थ स्थान और राम नेपाल के बिना अपूर्ण हैं।" इन सबके बावजूद राम मंदिर निर्माण ने दोनों देशों की आपसी दूरियों को पाटने का कार्य किया है तथा खुली सीमा होने से लोगों के लोगों से जुड़ाव व संबंधों को और बेहतर बनाने की दृष्टि से यह सहायक सिद्ध हुआ है।

संदर्भ

अग्रवाल, के.डी. (2010). *इंपॉर्टेंस ऑफ नेपाली संस्कृत इंसक्रप्शंस*. नई दिल्ली : राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान प्रकाशन. पृष्ठ-54.

करंजिया, आर. के. (2009). *अयोध्या : अँधेरी रात*. नई दिल्ली : करंजिया पब्लिकेशंस.

कांत, एन. (2023). राम मंदिर उद्घाटन समारोह के लिए विशेष स्मृति चिह्न भेजेगा नेपाल, जनकपुरधाम से अयोध्या तक निकलेगी यात्रा. https://www.amarujala.com/world/nepal-to-send-special-souvenirs-for-ram-mandir-inauguration से 24/10/2024 को पुन:प्राप्त.

चतुर्वेदी, आर.एस. (2020). *डिजिटल युग में रामायण : मीडिया में सांस्कृतिक कथाएँ*. नई दिल्ली : रूटलेज.

जैन, ए. (2021). धार्मिक पहचान बनाने में मीडिया की भूमिका : राम मंदिर की केस स्टडी. मीडिया, धर्म और संस्कृति, 15(2). पृष्ठ-200-215.

झा, एच. वी (2020). राम मंदिर इन अयोध्या : हाउ द हिंदूज ऑफ नेपाल सिलिब्रेटेड द ओकेजन. https://www.vifindia.org/2020/august/14/ram-mandir-in-ayodhya-how-the-hindus-of-nepal-celebrated-the-occasion से 23/10/2024 को पुन:प्राप्त.

झा, एच. वी (2017). नेपाल - इंडिया रिलेशंस : रामायण सर्किट. https://thehimalayantimes.com/opinion/nepal-india-relations-ramayan-circuit से 24/10/2024 को पुन:प्राप्त.

तलवार, एस. जी. (2019). *हिंदू राष्ट्रीयता और इतिहास की राजनीति*. नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशंस.

द काठमांडु पोस्ट. (2024). हिंदुस् थ्रोंग राम टेंपल इन इंडियाज' अयोध्याज' एज इट ओपेनस टू द पब्लिक. https://kathmandupost.com/world/2024/01/23/hindus-throng-ram-temple-in-india-s-ayodhya-as-it-opens-to-the-public से 24/10/2024 को पुन:प्राप्त.

नेपाल पर्यटन मंत्रालय. (2022). धार्मिक पर्यटन और रामायण सर्किट, काठमांडू.

शीरजा, जेड. (2023). रामायण सर्किट द फरदर इनक्रीज इंडियन टूरिस्ट फ्लो टू नेपाल. https://www.hindustantimes.com/lifestyle/travel/ramayana-circuit-to-further-increase-indian-tourist-flow-to-nepal-101695886889156.html से 24/10/2024 को पुन:प्राप्त.

पोखरेल, वी. (2023). अयोध्या में राम मंदिर की मूर्ति बनाने के लिए नेपाल से आई शिलाओं का क्या हुआ.https://www.bbc.com/hindi/articles/cyx4q8k1p2zo से 27/10/2024 को पुन:प्राप्त.

भट्टाचार्य के. (2022). इंडिया, नेपाल टू स्पीड अप 'रामायण सर्किट' प्रोजेक्ट्स. https://www.thehindu.com/news/national/india-nepal-to-speed-up-ramayana-circuit-projects/article65887837.ece से 27/10/2024 को पुन:प्राप्त.

भारत का विदेश मंत्रालय. (2023). भारत-नेपाल द्विपक्षीय संबंध वार्षिक रिपोर्ट, नई दिल्ली.

मशाल, कुमार. एच. (2024). मोदी ओपंस ए जायंट टेंपल इन अ ट्राइंफ फॉर इंडियाज' हिंदू नेशनलिस्ट्स. https://www.nytimes.com/2024/01/22/world/asia/modi-india-ram-temple.html से 27/10/2024 को पुन:प्राप्त.

मेहता, के. (2020). राम मंदिर आंदोलन : मीडिया प्रतिनिधित्व का अध्ययन. अंतरराष्ट्रीय हिंदू अध्ययन पत्रिका, 24(2). पृष्ठ-145-162.

राठी, ए. (2022). सीमा पार मीडिया प्रभाव : राम मंदिर पर भारतीय और नेपाली दृष्टिकोण का अध्ययन. एशियाई संवाद पत्रिका, 32(4). पृष्ठ-378-394.

राव, नारायण, शुलमैन, डेविड, सुब्रह्मण्यम, संजय (2007). *रामायण : इतिहास और साहित्य के चौराहे पर*. न्यूयॉर्क : कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.

रिपब्लिक वर्ल्ड. (2023). राम मंदिर : वाटर ऑफ 16 होली रिवर्स ऑफ नेपाल रीचेज अयोध्या एज स्पेशल ओफ्फेरिंग फॉर रामलला. https://www.youtube.com/watch?v=9NRv3FcgrbU से 24/10/2024 को पुन:प्राप्त.

वर्मा, टी.पी. (2015). भारत नेपाल के प्राचीन संबंध. शोध संचयन, (38), भाग 6, अंक 2, 15 जुलाई, 2015.

वर्मा, पी. (2018). राम मंदिर की सांस्कृतिक कथाएँ : एक अंतःविषय दृष्टिकोण. दक्षिण एशियाई अध्ययन पत्रिका, 9(1). पृष्ठ-45-67.

वर्मा, टी.पी. (2015). भारत नेपाल के प्राचीन संबंध. शोध संचयन, (38), भाग 6, अंक 2, 15 जुलाई, 2015.

शर्मा, आर. (2020). राम मंदिर और भारत में विश्वास की राजनीति. दक्षिण एशियाई इतिहास और संस्कृति, 11(3). पृष्ठ-299-312.

शर्मा, एस. पी. (2024). नेपाल एंड इंडियाज स्पेशल रिलेशनशिप– एंड हाउ इट इज गेटिंग बेटर. https://indianexpress.com/article/opinion/columns/nepal-and-indias-special-relationship-and-how-it-is-getting-better-9424984/ से 24/10/2024 को पुन:प्राप्त.

श्रेष्ठा, एस.टी. (2024) द सीताराम कॉरिडोर. https://nepalitimes.com/here-now/the-sita-ram-corridor से 24/10/2024 को पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 56-61, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

संस्कृति, भाषा और अर्थ : मानवशास्त्रीय अध्ययन में सांस्कृतिक संप्रेषण की चुनौतियाँ

डॉ. निशीथ राय[1]

सारांश

मानवशास्त्रियों के लिए हमेशा विभिन्न संस्कृतियों की समझ तथा सांस्कृतिक विविधता पर नए दृष्टिकोण विकसित करना महत्त्वपूर्ण रहा है। यह काम बिना भाषाई समझ के पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि भाषा संस्कृति की वाहक होती है। इसलिए अनुवाद, मानवशास्त्रीय शोध का एक अनिवार्य घटक है, जो विभिन्न संस्कृतियों के बीच समझ का सेतु बनाता है, सांस्कृतिक संवाद को बढ़ावा देता है और सांस्कृतिक पूर्वग्रहों को चुनौती देता है। यद्यपि विभिन्न संस्कृतियों की समझ में इसकी महत्ता है, फिर भी मानवशास्त्र में अनुवाद की भूमिका को अक्सर नजरअंदाज किया जाता है। मानवशास्त्र के विभिन्न उपागमों ने अनुवाद को अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखा है, लेकिन इसकी सैद्धांतिक जटिलताओं को पूरी तरह से नहीं समझा गया है। अनुवाद में अर्थ निर्माण, सांस्कृतिक संदर्भ और सत्ता के समीकरणों में सामंजस्य बैठाने में कठिनाई होती है। यह लेख सांस्कृतिक संप्रेषण की चुनौतियों के संदर्भ में मानवशास्त्र में अनुवाद की वर्तमान स्थिति की समीक्षा करता है। इसमें सांस्कृतिक अंतराल के पार मौखिक अभिव्यक्तियों की अनुवाद की जटिलताओं को रेखांकित किया गया है और अनुवाद प्रक्रिया में निहित सत्ता समीकरणों को उजागर किया गया है। इसके अलावा, यह आलेख अनुवाद में निहित क्रिया, संदर्भ और नैतिक प्रभावों के बीच संतुलन बनाए रखने के महत्त्व पर भी चर्चा करता है। मानवशास्त्रियों को इन सांस्कृतिक उलझनों को समझने और इन्हें पार करने की आवश्यकता है, ताकि विभिन्न समाजों के बहुआयामी अनुभवों का सटीक चित्रण किया जा सके।

संकेत शब्द : संस्कृति, भाषा, अर्थ, मानवशास्त्र, सांस्कृतिक संप्रेषण, अनुवाद

प्रस्तावना

मानवशास्त्र में संस्कृतियों को समझने का लक्ष्य केवल भाषाई रूपांतरण तक सीमित नहीं है; इसका उद्देश्य मानव समाज की गहरी जटिलताओं को समझना और उनकी व्याख्या करना है। मानवशास्त्र का सार विभिन्न सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को समझने, भाषाओं, विचारों और संदर्भों के बीच संबंध स्थापित करने में निहित है। हॉल (1976) ने अपनी पुस्तक 'बियॉण्ड कल्चर' में सांस्कृतिक संप्रेषण की भूमिका को रेखांकित किया है, जो दर्शाता है कि अलग-अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोग किस तरह भाषाई और व्याख्यात्मक सीमाओं के पार विश्व को समझते हैं। यह कार्य बिना भाषाई समझ के संपूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि भाषा संस्कृति की वाहक होती है। इसलिए अनुवाद, मानवशास्त्रीय शोधों का एक अनिवार्य घटक है। हालाँकि, अनुवाद की भूमिका मानवशास्त्र में अपेक्षाकृत उपेक्षित रही है, भले ही यह लगभग सभी मानवशास्त्रीय प्रक्रियाओं, जैसे प्रारंभिक आँकड़े संग्रह से लेकर अंतिम विश्लेषण तक के लिए आधारभूत रूप से महत्त्वपूर्ण है।

इस उपेक्षा का कारण मानवशास्त्र की पहचान पर चल रही आंतरिक बहस में निहित है। कुछ मानवशास्त्री इसे एक सटीक सामाजिक विज्ञान के रूप में देखते हैं, जहाँ सांख्यिकीय और कार्यप्रणाली की कठोरता से सांस्कृतिक समझ का निर्माण होता है (स्मिथ और जॉनसन, 2019)। इसके विपरीत, कुछ मानवशास्त्री इसे एक सहानुभूतिपूर्ण और गहन दृष्टिकोण मानते हैं, जो सांस्कृतिक आदान-प्रदान को विश्लेषणात्मक रूप रेखाओं से परे मानव स्तर पर समझने की आवश्यकता पर बल देता है। इन मानवशास्त्रियों का मानना है कि इस अनुशासन की शक्ति साझा अनुभवों और भावनात्मक सामंजस्य के माध्यम से संबंध स्थापित करने में है, न कि कठोर वर्गीकरण में (गार्सिया और चेन, 2020)।

इन दोनों दृष्टिकोणों को एक मध्य मार्ग एकीकृत करता है, जहाँ वैज्ञानिक कठोरता और सांस्कृतिक व्याख्या के लिए सहानुभूतिपूर्ण सूक्ष्मताएँ आवश्यक हैं (ली और न्गुएन, 2018)। इस संदर्भ में, अनुवाद मानवशास्त्र का 'लिंगुआ फ्रांका' बन जाता है—वह माध्यम, जिसके माध्यम से पद्धति और अर्थ एक साथ आते हैं। बास्नेट और लेफेवर (2018) का तर्क है कि सावधानीपूर्वक भाषाई और सांस्कृतिक अनुवाद के माध्यम से, मानवशास्त्री उन संस्कृतियों की संपूर्णता को बेहतर तरीके से संरक्षित और संप्रेषित कर सकते हैं, जिनका वे अध्ययन कर रहे हैं। इस प्रकार अनुवाद एक साधन से आगे बढ़कर एक मुख्य दार्शनिक दृष्टिकोण बन जाता है, जो टिमोजको (2010) के इस विचार के अनुरूप है कि प्रभावी अनुवाद केवल भाषाई सीमाओं के पार नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संदर्भों के साथ भी जुड़ा होना चाहिए। यह दृष्टिकोण मानवशास्त्रियों को व्यापक अर्थों में बहुभाषी बनने के लिए प्रेरित करता है, जहाँ उन्हें केवल भाषा में ही नहीं, बल्कि संदर्भ और गैर-मौखिक संकेतों में भी प्रवीण होना चाहिए। आखिरकार, 'परिवार' या 'स्वतंत्रता' या 'कल्याण' जैसे शब्द विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में पूरी तरह से भिन्न अर्थ ले सकते हैं।

यह एकीकृत दृष्टिकोण वैज्ञानिक विधियों को त्यागने का संकेत नहीं देता, बल्कि एक समृद्ध और अधिक लचीले ढाँचे को अपनाने की आवश्यकता को दर्शाता है। स्व-नृजातिवर्णन और बहुस्तरीय आख्यान जैसी तकनीकों को अपनाकर मानवशास्त्री अनुवाद को अधिक प्रभावी ढंग से समझ सकते हैं, जो जटिल सांस्कृतिक गतिशीलताओं का सम्मान करता है। बेहर (1996) का मानना है कि अनुसंधानकर्ता और प्रतिभागियों, दोनों की अंतर्निहित विषयवस्तुओं को स्वीकार करके मानवशास्त्री अधिक बारीकी से समझने योग्य और आत्म-प्रतिबिंबित करने वाली प्रथा को विकसित कर सकते हैं। इस प्रकार की पद्धति संस्कृतियों को सरल

[1]संकाय सदस्य, मानवविज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र. ईमेल : nisheeth.rai1@gmail.com

व्याख्याओं तक सीमित करने के जोखिम को कम करती है, जो शोधकर्ता और अध्ययन के बीच आपसी प्रभावों की गहरी खोज को प्रोत्साहित करती है।

इसके अतिरिक्त, मानवशास्त्र में अनुवाद की केंद्रीयता पर ध्यान देने से विभिन्न संस्कृतियों के बीच होने वाले संवादों में निहित सत्ता समीकरणों पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। प्रैट (1991) की 'संपर्क क्षेत्र' की अवधारणा उन जटिल सत्ता संबंधों और प्रतिनिधित्व चुनौतियों को रेखांकित करती है, जो विभिन्न संस्कृतियों के मिलने पर उत्पन्न होती हैं। ऐतिहासिक रूप से अनुवादकों को अक्सर द्वितीयक स्थान पर रखा गया, जहाँ उनके कार्य को केवल तकनीकी कार्य के रूप में देखा गया। हालाँकि, उनके व्याख्यात्मक योगदान को स्वीकार करने से अनुसंधान प्रक्रिया समृद्ध होती है और एक अधिक नैतिक और सहयोगात्मक दृष्टिकोण को सक्षम बनाती है, जो अद्वितीय अंतर्दृष्टि और सांस्कृतिक विशेषज्ञता का सम्मान करती है।

अबु-लुघोद (1991) संस्कृति को एक स्थिर और एकरूप इकाई के रूप में देखने की धारणा को चुनौती देते हैं और एक अधिक प्रासंगिक और गतिशील दृष्टिकोण की वकालत करते हैं, जो रूढ़िवादी धारणाओं का विरोध करता है। इसलिए, अनुवाद केवल एक कार्यप्रणाली नहीं, बल्कि एक दार्शनिक केंद्र बन जाता है—जो मानवशास्त्र को एक स्थिर विश्लेषण से संस्कृतियों की संवादात्मक और विकसित समझ की ओर मोड़ता है। मार्कस और फिशर (1986) का तर्क है कि संस्कृतियों को तरल, सदैव परिवर्तनीय प्रणालियों के रूप में मान्यता देकर, मानवशास्त्र एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण का समर्थन करता है, जहाँ ज्ञान व्याख्या और संवाद के माध्यम से विकसित होता है, न कि निश्चित ठोस निष्कर्षों से।

मानवशास्त्रीय उपागम और अनुवाद

मानवशास्त्रीय उपागमों में सांस्कृतिक अंतर को पाटने के लिए अनुवाद की भूमिका महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद अपेक्षाकृत उपेक्षित रही है। विक्टोरियन युग के उद्विकासवाद से लेकर उत्तर-आधुनिकतावाद तक, मानवशास्त्रियों ने अनुवाद की चुनौतियों को एक तकनीकी कार्य के रूप में लिया, बजाय इसके कि इसे एक प्रमुख सैद्धांतिक विषय माना जाए।

उद्विकासवाद : 19वीं शताब्दी में उद्विकासवादी मानवशास्त्री जैसे एडवर्ड टायलर, लुईस हेनरी मॉर्गन और जोहान बचोफेन ने मुख्य रूप से मानव संस्कृति के अपने सिद्धांत मिशनरियों, व्यापारियों और औपनिवेशिक अधिकारियों द्वारा उपलब्ध कराए गए द्वितीयक विवरणों पर आधारित किए (एरिक्सन और नीलसन, 2013)। इन 'आर्मचेयर थ्योरिस्ट' ने तथाकथित 'आदिम' समाजों का विवरण एक औपनिवेशिक दृष्टिकोण से लिया, जो अक्सर रिपोर्टिंग करने वालों की पूर्वधारणाओं से प्रभावित था। सांस्कृतिक अर्थों के अनुवाद की अनदेखी की गई और इसके बजाय इन विवरणों को मानवशास्त्रियों के मौजूदा ढाँचों में फिट कर दिया गया, जिसमें स्वदेशी संस्कृतियों को एक सार्वभौमिक मानव उद्विकास के सिद्धांत में आँकड़ों के रूप में माना गया। इस दृष्टिकोण ने अध्ययन की गई संस्कृतियों की जटिलताओं को अनदेखा किया और उन्हें औपनिवेशिक दृष्टिकोण से छानकर सरलित कथाओं में सीमित कर दिया।

प्रसारवाद : 20वीं शताब्दी में मानवशास्त्रियों ने खुद क्षेत्रकार्य करना शुरू किया, जिसमें फ्रांज बोआस जैसी हस्तियों ने शोधकर्ताओं से विदेशी समाजों में गहरी पकड़ के लिए स्थानीय भाषाएँ सीखने का आग्रह किया। बोआस ने भाषा को संस्कृति का अभिन्न अंग माना और अपने छात्रों से स्वदेशी भाषाओं में प्रवीण होने का आग्रह किया, जिसका उदाहरण उनके किवाकियूटल (1913-14) के अध्ययन में देखा जा सकता है। हालाँकि, बोआस ने भाषाई सटीकता को महत्त्व दिया, लेकिन अनुवाद के सैद्धांतिक निहितार्थों को संबोधित नहीं किया। उन्होंने भाषा को एक शोध उपकरण के रूप में देखा, लेकिन सांस्कृतिक अनुवाद की गहन व्याख्या नहीं की, जो व्याख्या की गहराई को सीमित कर देता है।

प्रकार्यवाद : बोआस की क्षेत्रकार्य परंपरा को आगे बढ़ाते हुए ब्रोनिस्लाव मेलिनोवस्की ने स्थानीय भाषा को नृजातिविज्ञान शोध का एक महत्त्वपूर्ण घटक माना। अपनी पुस्तक 'अर्गोनॉट्स ऑफ द वेस्टर्न पैसिफिक' (1922) में मेलिनोवस्की ने मूल भाषा में दक्षता का समर्थन किया, यह समझते हुए कि भाषा और संस्कृति के साथ सीधे संपर्क से ही सार्थक अंतर्दृष्टि मिल सकती है। ब्रिटिश प्रकार्यवादी जैसे रेडक्लिफ-ब्राउन, इवांस-प्रिचर्ड और फोर्ट्स ने भी इस दृष्टिकोण को अपनाया और स्थानीय भाषाओं को सटीक सांस्कृतिक समझ के लिए आवश्यक माना (एरिक्सन और नीलसन, 2013)। हालाँकि, प्रकार्यवादियों ने अनुवाद को एक सैद्धांतिक मुद्दे के रूप में शायद ही कभी देखा। भाषाई अनुवाद में जटिलताओं, संभावित विकृतियों और सांस्कृतिक पूर्वग्रहों को अक्सर अनदेखा किया गया और अनुवाद को एक तकनीकी आवश्यकता के रूप में माना गया।

संरचनावाद और उत्तर-आधुनिकतावाद : संरचनावादी जैसे क्लाउड लेवी-स्ट्रॉस ने सांस्कृतिक प्रतीकों और अर्थों पर आधारित जटिल सिद्धांत बनाए, लेकिन संस्कृतियों की तुलना में शामिल अनुवाद प्रक्रिया का विश्लेषण नहीं किया। हालाँकि संरचनावाद ने मानव संस्कृति के सार्वभौमिक पहलुओं पर जोर दिया, सांस्कृतिक संदर्भों के अनुवाद में निहित चुनौतियों और पूर्वग्रहों की अनदेखी की गई। इसके विपरीत, जेम्स क्लिफोर्ड जैसे उत्तर-आधुनिक आलोचकों ने बाद में अनुवाद के प्रति मानवशास्त्र के दृष्टिकोण की आलोचना की और कहा कि अनुवाद की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से विकृतियाँ उत्पन्न करती है और इसके प्रभावों के प्रति आलोचनात्मक जागरूकता की आवश्यकता होती है। क्लिफोर्ड की 'ट्राडुटोरे, ट्रेडिटोरे' (अर्थात् 'विश्वासघाती, अनुवादक') दृष्टिकोण ने सांस्कृतिक व्याख्या को आकार देने में अनुवाद की भूमिका को उजागर किया, यह मानते हुए कि अनुवाद तटस्थ नहीं, बल्कि एक रूपांतरकारी कार्य है, जिसमें नैतिक निहितार्थ होते हैं।

इन विभिन्न दृष्टिकोणों के बावजूद अनुवाद मानवशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण, लेकिन कम खोजा गया हिस्सा बना रहा है। उद्विकासवाद में औपनिवेशिक मध्यस्थों पर निर्भरता से लेकर प्रकार्यवाद में भाषाई समावेश तक अनुवाद की प्रक्रिया ने संस्कृतियों को समझने और उन्हें प्रस्तुत करने के तरीके को आकार दिया है। उत्तर-आधुनिक आलोचनाओं ने अंततः अनुवाद पर एक अधिक आत्म-चिंतनशील दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर जोर दिया।

मानवशास्त्रीय अनुवाद में जटिलता

मानवशास्त्रीय अनुवाद स्वाभाविक रूप से जटिल होता है, क्योंकि इसमें विभिन्न भाषाओं और सांस्कृतिक संदर्भों में अर्थों का संप्रेषण

शामिल होता है। विशेष रूप से भारत में अनुवाद अध्ययन इन जटिलताओं से निपटने के लिए मूल्यवान रूपरेखाएँ प्रदान करते हैं। इस बहस का केंद्र - मूल पाठ और अनुवाद के बीच संबंध : क्या मानवशास्त्री, एक अनुवादक की तरह, सांस्कृतिक अंतराल को पाटते हुए, अपने दृष्टिकोण को अनिवार्य रूप से थोपते हैं? जैसे कि बैसनेट (1980) का तर्क है, सभी पुनर्लेखन विचारधाराओं को प्रतिबिंबित करते हैं, जो अक्सर लक्ष्य समाज के सांस्कृतिक दृष्टिकोण के अनुरूप मूल अर्थ को सूक्ष्म रूप से बदलते हैं। क्रोनिन (1996) यह भी नोट करते हैं कि असमान शक्ति वाली भाषाओं के बीच अनुवाद अक्सर प्रबल संस्कृति की राजनीतिक और वैचारिक एजेंडों को दर्शाते हैं, जिससे मानवशास्त्रीय अनुवाद में प्रतिनिधित्व और शक्ति के संतुलन पर सवाल उठते हैं।

अनुवाद की क्रिया, जो पहली नजर में सीधी लगती है, विकल्पों और परिणामों के एक जाल को खोलती है, विशेष रूप से जब यह सांस्कृतिक समझ के परिदृश्य को पार करती है। वेनुति (1998), जो अनुवाद सिद्धांत में एक प्रमुख विद्वान् हैं, दो विपरीत मार्गों का प्रस्ताव करती हैं—लेखक-केंद्रित 'विदेशीकरण' (फोरेनाइजेशन) और पाठक-केंद्रित 'घरेलूकरण' (डोमेसटिकेशन) दृष्टिकोण। विदेशीकरण अनुवाद लक्ष्य भाषा के सुगम क्षेत्र को बाधित करता है तथा सांस्कृतिक जटिलता को चुनौती देता है। उनका कहना है कि यह विधि प्रभुत्व भाषाओं जैसे कि अँग्रेजी द्वारा लगाए गए 'सांस्कृतिक संकेंद्रित हिंसा' को बाधित करती है और लेखक की आवाज और सांस्कृतिक बारीकियों को प्राथमिकता देती है। यह मानवशास्त्रीय लक्ष्यों के साथ मेल खाती है, जो अध्ययन की गई संस्कृतियों की अखंडता को बनाए रखने की कोशिश करती हैं, बजाय उन्हें पाठक के ढाँचे में समाहित करने के। दूसरी ओर, 'घरेलूकरण' पाठक की समझ को प्राथमिकता देता है, अक्सर सांस्कृतिक जटिलताओं को सरल कर देता है, ताकि वे आसानी से समझ में आ सकें। वेनुति (1998) इस दृष्टिकोण की आलोचना करती हैं, क्योंकि यह पश्चिमी प्रभुत्व को बढ़ावा देता है और 'सीमांत' संस्कृतियों की आवाज को वैश्विक बाजार के बल से दबा देता है। यह विपरीत दृष्टिकोण सांस्कृतिक अनुवाद की बहुआयामी प्रकृति को उजागर करता है। इसमें मार्गनिर्देशन हेतु सत्ता गतिशीलता, सांस्कृतिक बारीकियों और भाषाई सीमाओं को समझने की आवश्यकता होती है। 'विदेशीकरण' और 'घरेलूकरण' के बीच चयन अनुवाद के माध्यम से विविध संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करने के नैतिक और राजनीतिक प्रभावों से स्वतंत्र नहीं होता है।

1970 के दशक में मानवशास्त्र में एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक परिवर्तन देखा गया, जहाँ सांस्कृतिक और भाषाई सापेक्षता के सिद्धांत ने नए संवाद की शुरुआत की। इस नवीन दृष्टिकोण ने यह स्वीकार किया कि प्रत्येक संस्कृति एक अद्वितीय और जटिल संरचना है, जिसे पूर्णतः अनुवादित करना लगभग असंभव है। हालाँकि, इस चुनौती के बावजूद, यह विचारधारा अनुवाद की महत्ता पर बल देती है—एक ऐसी प्रक्रिया, जो सांस्कृतिक संवाद और आपसी समझ के लिए अत्यंत आवश्यक है, भले ही वह पूर्ण न हो। जो लोग सांस्कृतिक और भाषाई सार्वभौमिकताओं में विश्वास करते हैं, वे इस दृष्टिकोण का विरोध करते हैं और विदेशी पाठों को परिभाषित भाषाई श्रेणियों के माध्यम से समझने का समर्थन करते हैं। जैकोबसन (1969), जो एक अग्रणी भाषाविद् थे, ने इस दृष्टिकोण की सीमाओं को पहचाना और भाषा के भीतर (इंट्रा-लिंगुअल), भाषाओं के बीच (इंटर-लिंगुअल) और भाषा से गैर-मौखिक प्रणालियों (इंटर-सेमियोटिक) के अनुवाद में भेद किया। उन्होंने यह स्वीकार किया कि भाषाई अंतराल को पाटने के लिए अतिरिक्त जानकारी की आवश्यकता होती है और यह भी दर्शाया कि व्याकरणिक संरचनाएँ यह निर्धारित करती हैं कि क्या व्यक्त किया जा सकता है और क्या नहीं। उदाहरण के तौर पर, निर्जीव संज्ञाओं के लिंग-आधारित रूपकों, जैसे भारत का 'मातृभूमि' और ऑस्ट्रेलिया का 'पितृभूमि', के लिए संदर्भित जानकारी आवश्यक होती है, ताकि सटीक समझ सुनिश्चित हो सके।

अनुवाद की क्रिया स्वयं में सांस्कृतिक संदर्भ, अर्थ और समझ की सीमाओं के बारे में सवालों का पैंडोरा बॉक्स खोल देती है। निडा (1964) का यह कथन कि आदर्श अनुवाद एक मृगमरीचिका है, क्योंकि भाषाओं के बीच अंतर्निहित भिन्नताएँ होती हैं। लेकिन सांस्कृतिक अर्थ के बारे में क्या कहा जा सकता है? क्या विश्लेषणात्मक अवधारणाएँ, जिन्हें अक्सर मानवविज्ञानी उपयोग करते हैं, कभी भी किसी अन्य संस्कृति की दृष्टि को पूरी तरह से पकड़ सकती हैं? यहाँ सापिर-व्हॉर्फ और चॉम्स्की के बीच बहस केंद्र में आती है। सापिर-व्हॉर्फ का कहना है कि भाषा हमारे वास्तविकता को समझने के तरीके को आकार देती है, प्रत्येक संस्कृति के लिए अद्वितीय 'दुनिया' का निर्माण करती है। यह भाषाई निर्धारणवाद चॉम्स्की के उन विश्वासों के विपरीत है, जो सभी भाषाओं के पीछे सार्वभौमिक मानसिक संरचनाओं का समर्थन करते हैं। यह स्पष्ट विरोधाभास सांस्कृतिक अनुवाद को और जटिल बनाता है (हुसैन, 2012)। क्या अनुवाद फिर सापिर-व्हॉर्फ के सिद्धांत को अस्वीकार करता है? या क्या हम केवल संस्कृतियों के बीच अनुमानित 'निर्देशांकों' को खोज रहे हैं, जैसा कि वर्नर और कैंपबेल (1970) के 'अंतर-केंद्रित अनुवाद' ने सुझाव किया था? यह एक और जटिलता का स्तर जोड़ता है। जैसा कि सिल्वरस्टीन (2003) ने उल्लेख किया है, शब्द अपने सांस्कृतिक संदर्भ से अपरिहार्य रूप से जुड़े होते हैं। केवल विचारों का अनुवाद करने से उनके पीछे के विचार और उद्देश्य को समझने में चूक हो जाती है।

गैर-मौखिक संकेत, जो अनुवाद की जटिल प्रक्रिया में अक्सर अदृश्य रह जाते हैं, अर्थ की व्याख्या को और भी चुनौतीपूर्ण बना देते हैं। क्या हम वास्तव में इन सूक्ष्म सांस्कृतिक संदर्भों के बिना किसी वक्ता के मूल अभिप्राय को पूरी तरह समझ सकते हैं? सिल्वरस्टीन (2003) के अनुसार, अनुवाद एक सामान्य भाषाई कार्य से कहीं अधिक है—यह एक जटिल सांस्कृतिक संवाद है, जो व्यक्तिगत भाव और मानसिकताओं से परे जाता है। यह एक गतिशील सामाजिक क्रिया है, जो भाषाई सीमाओं को पार करती है, सांस्कृतिक रिश्तों को पुनःपरिभाषित करती है और नई अंतर्दृष्टि के द्वार खोलती है। रॉबिन्सन (1997) की अवधारणा और अधिक गहराई लाती है, जो अनुवादक को एक सीमा-क्षेत्र के रूप में देखते हैं—एक ऐसे मध्यस्थ के रूप में, जो 'स्वयं' और 'अन्य' के बीच की रेखा को धुँधला करता है। यह अनुवाद एक जटिल बौद्धिक कार्य है, जो एक ही समय में दो विपरीत कार्य करता है—वह भाषाई और सांस्कृतिक शैलियों की सीमाओं को तोड़ता है और साथ ही अनिवार्य रूप से उन्हें पुनर्निर्मित भी करता है।

इन चुनौतियों के बीच एक बात स्पष्ट है—अनुवाद, भले ही अपूर्ण हो, लेकिन वह संस्कृतियों के बीच समझ के लिए एक महत्त्वपूर्ण सेतु प्रदान करता है। यह हमें अपनी भाषा और दृष्टिकोण की सीमाओं से जूझने के

लिए मजबूर करता है, हमें दुनिया को विभिन्न लेंस के माध्यम से देखने के लिए प्रेरित करता है।

मानवशास्त्रीय अनुवाद में सांस्कृतिक संप्रेषण की चुनौतियाँ

अनुवाद अपने मूल स्वरूप में भाषाओं के बीच सेतु बनाने का एक सरल प्रयास है, परंतु जब यह मानवशास्त्रियों के सूक्ष्म विश्लेषण और गहन समझ के माध्यम से गुजरता है, तो एक परिष्कृत बौद्धिक यंत्र में परिवर्तित हो जाता है। यह केवल शब्दों का अंतरण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अर्थों की एक जटिल और बहुस्तरीय यात्रा बन जाता है। इस अर्थ की यात्रा को सामान्य रेखीय पथ के रूप में नहीं देखा जा सकता। यह एक जटिल और बहुआयामी जाल है, जहाँ हर मोड़ पर अप्रत्याशित चुनौतियाँ और रहस्यमय संभावनाएँ प्रतीक्षारत हैं। अनुवादक एक ऐसे अन्वेषक की भाँति होता है, जो अज्ञात सांस्कृतिक परिदृश्यों में गहराई से प्रवेश करता है।

अनुवाद की पहली और सबसे जटिल चुनौती है, आदर्श भाषिक समकक्षता की अनिश्चित खोज। भाषाएँ अपने आप में विशिष्ट होती हैं; जैसे हिमकण की तरह, जहाँ प्रत्येक अनूठी संरचना और शब्दावली एक अलग सांस्कृतिक संसार को प्रतिबिंबित करती है। 'माना' जैसी पोलिनेशियन अवधारणाएँ इसकी उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जो आध्यात्मिक शक्ति की एक गहन अनुभूति को व्यक्त करती हैं। अँग्रेजी में इसका सटीक अनुवाद करना लगभग असंभव है—यह केवल एक भाषाई चुनौती नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक अनुवाद की जटिलता है। इसी प्रकार, जापानी की 'वाबी-साबी' अवधारणा, जो अपूर्णता और क्षणभंगुरता में सौंदर्य देखती है, उन भाषाओं में अनुवाद करने में कठिनाई उत्पन्न करती है, जिनके पास इसके लिए कोई सीधा समकक्ष नहीं होता (कापचान, 1997)। यह भाषाई अंतर न केवल शब्दों की कमी को दर्शाता है, बल्कि सांस्कृतिक अनुभव की गहराई को भी प्रकट करता है। इस प्रक्रिया में अनुवादक को भाषिक अर्थों के एक जटिल जाल में नेविगेट करना पड़ता है, जहाँ शब्द केवल माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति के दूतों की भूमिका निभाते हैं।

अर्थ की संदर्भ आधारित प्रकृति भी एक और चुनौती है। एक मजाक, जो एक संस्कृति में हँसी का कारण बनता है, दूसरी संस्कृति में उलझन पैदा कर सकता है। वक्ता का इरादा, सूचनादाताओं के बीच संबंध और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—सभी शब्दों के पीछे वास्तविक अर्थ को आकार देने में जटिल भूमिका निभाते हैं (अल-माइताह और अल-साकिती, 2017)।

इन बाधाओं से विचलित हुए बिना, मानवशास्त्रियों ने इस जाल में मार्गनिर्देशन करने के लिए विभिन्न रणनीतियों को विकसित किया है। उदाहरण के लिए, फुटनोट एक महत्त्वपूर्ण तकनीक है, जो लक्षित भाषा में शब्दों और वाक्यांशों के बारे में अतिरिक्त जानकारी प्रदान करके मदद करती है। कल्पना करें कि 'माना' को केवल 'आध्यात्मिक शक्ति' के रूप में नहीं, बल्कि एक शक्ति के रूप में समझाया जाता है, जो जीवन, प्राणशक्ति और पूर्वजों के संबंधों को समाहित करती है। प्रतिभागी अवलोकन एक और महत्त्वपूर्ण उपकरण बन जाता है, जो मानवशास्त्री को सांस्कृतिक परिदृश्य में डुबोकर यह देखने का मौका देता है कि भाषा संदर्भ के साथ कैसे जुड़ती है। लोगों के साथ समय बिताना, उनके दैनिक संवादों का अवलोकन करना और उनके गैर-मौखिक संकेतों को समझना अनुवाद प्रक्रिया में गहराई और संरचना जोड़ते हैं। इसके अलावा, बैक-ट्रांसलेशन और मूल वक्ताओं से परामर्श जैसी अन्य विधियाँ सटीकता की खोज को मजबूत करती हैं। बैक-ट्रांसलेशन अनुवादित पाठ को स्रोत भाषा में पुनः परिलक्षित करने का कार्य करता है, ताकि किसी भी विकृति का पता चल सके। इसी तरह, मूल वक्ता एक अमूल्य भूमिका निभाते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि सांस्कृतिक संदर्भ और संवेदनाएँ अनुवाद में खो न जाएँ। ड्यूरन और ड्यूरन (1995) ने इस विधि का उपयोग करके चिकित्सा सहमति प्रपत्रों के अनुवाद का अध्ययन किया, ताकि सांस्कृतिक संवेदनशीलता और सटीकता सुनिश्चित हो सके।

एक नैतिक दृष्टिकोण में स्थानीय समुदायों पर संभावित प्रभाव पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता होती है। प्रत्येक विशिष्ट संदर्भ के भीतर मानवशास्त्री को अनुवाद के लिए किसे, क्यों और कैसे पर निर्णय लेना होता है, जिसमें सत्ता गतिशीलता और संभावित हानि को उनके निर्णयों में प्रमुख रूप से रखना होता है। अनुवाद एक ब्रिज (सेतु) या बैरीयर (बाधा) हो सकता है, जो मानवशास्त्री के अपने लोगों के बीच भी नाराजगी और अविश्वास को बढ़ावा देता है।

जब साहित्यिक अनुवाद लक्षित भाषा की सौंदर्यशास्त्र और शैली पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो मानवशास्त्रीय अनुवाद का एक अलग ध्यान केंद्र होता है। महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं :

- **भाषाई क्षमता :** क्या मानवशास्त्री के पास उन सांस्कृतिक संदर्भों और जटिलताओं को सही रूप से अनुवाद करने की गहरी समझ है?
- **नृजातीय बोलियाँ और बहुभाषावाद :** मानवशास्त्री विविध भाषाई परिदृश्यों में कैसे मार्गनिर्देशन करते हैं खासकर एक विषम समुदाय में?
- **लक्ष्य दर्शक :** क्या अनुवाद में स्रोत भाषा की विश्वसनीयता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए या लक्षित दर्शक की समझ को?
- **संकल्पनात्मक ढाँचे :** मानवशास्त्री का सैद्धांतिक दृष्टिकोण अनुवादित संस्कृति को कैसे प्रस्तुत करता है?

ये चुनौतियाँ यह दर्शाती हैं कि अनुशासनात्मक दृष्टिकोणों के बीच अनुवाद में मूलभूत अंतर है। साहित्यिक आलोचक मुख्य रूप से अनुवादित पाठ के सौंदर्य और 'काव्यशास्त्र' पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जबकि मानवशास्त्रियों को अपने काम के नैतिक, राजनीतिक और समाज-सांस्कृतिक पहलुओं से जूझना पड़ता है।

निष्कर्ष

प्राचीन मिथकों को सुलझाने से लेकर रोजमर्रा की बातचीत को रिकॉर्ड करने तक अनुवाद मानवशास्त्रियों के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह उन्हें विभिन्न संस्कृतियों को समझने और प्रस्तुत करने की अनुमति देता है और मानव जीवन के ताने-बाने के बारे में नया ज्ञान उत्पन्न करता है। मानवशास्त्र में मौखिक प्रस्तुतियों का अनुवाद केवल शब्दों का खेल नहीं है; यह एक जटिल संतुलन कृत्य है, जिसमें क्रिया, संदर्भ और उन रीतियों में बुने गए नैतिक पहलुओं को संतुलित करना होता है। किसी भी अनुवाद की तरह, यहाँ भी सत्ता गतिशीलता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, विशेषकर उपनिवेशिक संदर्भ में, जहाँ मानवशास्त्री अक्सर प्रभुत्व और सांस्कृतिक निष्कर्ष की नाजुक दुनिया में मार्गनिर्देशन करते थे।

मानवशास्त्री किसके प्रति जवाबदेह हैं? यह एक गूँजती हुई नैतिक और राजनीतिक अनुगूँज बन जाती है। क्या मानवशास्त्रियों को अनुवाद

करना चाहिए? क्या समुदाय द्वारा कुछ पवित्र पहलू ऐसे होते हैं, जिन्हें 'अनुवादित' नहीं किया जा सकता और जो उजागर होने पर गंभीर परिणामों का कारण बन सकते हैं? क्या अनुवाद को 'विश्वासघात' की एक क्रिया माना जा सकता है, जो इन रीतियों से उनकी अंतर्निहित शक्ति और अर्थ को छीन लेता है?

क्षेत्रकार्य, जो मानवशास्त्रीय अनुसंधान के लिए आवश्यक है, शोधकर्ताओं को अपरिचित संस्कृतियों के मूल में डुबो देता है। इस भाषाई परिदृश्य के मार्गनिर्देशन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि मानवशास्त्री पहले स्थानीय भाषाओं से जूझते हैं। वे अनुवादकों या क्षेत्र सहायकों पर निर्भर रहते हैं। देस्कोला (1996) ने अमेजन वर्षावन में आदिवासी समुदायों के बीच क्षेत्र कार्य करते हुए भाषाई चुनौतियों का सामना किया। उन्होंने अनुवादकों पर निर्भरता और सांस्कृतिक प्रथाओं और रीतियों के अनुवाद की जटिलताओं को भी उजागर किया। ये प्रारंभिक अनुवाद, जो अक्सर मूल भाषा में नोट किए जाते थे, बाद में शोधकर्ता की मातृभाषा में बदले जाते थे। चुनौती इस बात की है कि दूसरी संस्कृति के शब्दों और विचारों का सार सही रूप से पकड़ना, जो अक्सर शोधकर्ता द्वारा प्रयुक्त विश्लेषणात्मक अवधारणाओं की संज्ञानात्मक सीमाओं से टकराते हैं। ये अवधारणाएँ, जो शायद 'शासक उपनिवेशवादी मानसिकता' से उत्पन्न होती हैं, सांस्कृतिक अर्थों की विशिष्टता को भ्रमित कर सकती हैं। अनुवाद की क्रिया सिर्फ एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्दों को रूपांतरित करने से कहीं अधिक है। कुछ परिदृश्य में यह पहचान का सार है, जबकि दूसरों में इसे ज्ञान को अवैध रूप से ग्रहण करने के रूप में माना जा सकता है। अंततः, आदर्श अनुवाद की खोज एक 'यूटोपियाई सपना' बनी रहती है।

सांस्कृतिक सूक्ष्मताएँ, भावनात्मक गहराइयाँ और रीतियों का असल अर्थ अक्सर सटीक रूप से पुनरुत्पादन से परे होते हैं। सैमुएल (1993) ने तिब्बती बौद्ध समुदायों के धार्मिक समारोहों में रचनात्मक प्रस्तुतियों के अनुवाद का विश्लेषण करते हुए रीतियों के आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक आयामों के अनुवाद में कठिनाइयों को उजागर किया। फिर भी, भाषा की सीमाओं के भीतर समझ के सेतुओं का निर्माण करने की शक्ति निहित है, जो पार-सांस्कृतिक संवाद को बढ़ावा देती है और नृजातिकेंद्रित दृष्टिकोणों को चुनौती देती है। इस प्रकार, मानवशास्त्रीय अनुवाद भाषाई कौशल से अधिक की माँग करता है; यह सूक्ष्म रूप से फुटनोट और संदर्भीकरण की माँग करता है, जिससे अनुवादित संस्करण मूल इरादे के साथ गूँजता है।

मानवशास्त्र में अनुवाद की भूमिका को प्राथमिकता देना मानव अनुभव की जटिलताओं को समझने की क्षेत्र की क्षमता को बढ़ाता है। विधियों से परे जाकर, सहानुभूति, विनम्रता और सम्मान की ओर बढ़ते हुए अनुवाद विभिन्न और जटिल मानव संस्कृतियों की सराहना को गहरा करता है। इससे मानवशास्त्र को एक ऐसा अनुशासन बनाने में मदद मिलती है, जो विभाजनों को पाटने और सांस्कृतिक विविधता के प्रति वैश्विक सम्मान को बढ़ावा देने के लिए समर्पित है। मानवशास्त्र में अनुवाद का वास्तविक जादू इसके ज्ञान निर्माण में निहित है। इस जटिल प्रक्रिया के माध्यम से मानवशास्त्री नई अवधारणाओं, विचारों और जीवन के तरीकों के द्वार खोलते हैं। अन्य संस्कृतियों से प्राप्त ज्ञान हमारे मानव विविधता के बारे में आलोचनात्मक विचार को प्रेरित करता है, जो हमारी समझ को चुनौती देता है और समृद्ध करता है।

संदर्भ

अबू-लुहद, एल. (1991). राइटिंग अगेंस्ट कल्चर. इन आर. जी. फॉक्स (एड.), रिकैप्चरिंग एंथ्रोपोलॉजी : वर्किंग इन द प्रेजेंट (पृ. 137–162). सैंटा फे, एनएम : स्कूल ऑफ अमेरिकन रिसर्च प्रेस.

अल-मआ'इता, एम. ए., एवं अल-साकिति, ए. ए. (2017). क्रॉस-कल्चरल कम्युनिकेशन : ह्युमर ट्रांसलेशन इन सिटकॉम्स. जर्नल ऑफ लिंग्विस्टिक एंड इंटरकल्चरल एजुकेशन, 10(1), 9-22.

एरिक्सन, टी.एच और नीलसन, एफ.एस. (2013). *ए हिस्ट्री ऑफ एंथ्रोपोलॉजी*. लंदन : प्लूटो प्रेस.

डेवी, जे. (1969). *ओंटोलॉजिकल रिलेटिविटी एंड अदर एसेस*. न्यूयॉर्क : कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.

कापचान, डी. (2003). *ट्रांसलेटिंग फोक थ्योरीज ऑफ ट्रांसलेशन इन एथ्नोग्राफिक डिस्कोर्स इन ट्रांसलेटिंग कल्चर्स पर्सपेक्टिव्स ऑन ट्रांसलेशन एंड एंथ्रोपोलॉजी*. संपादन, पौला जी. रुबेल एंड अब्राहम रोस्मन. ऑक्सफोर्ड : न्यूयॉर्क.

क्वाइन, डब्ल्यू.वी.ओ. (1960). *वर्ड एंड ऑब्जेक्ट*. कैंब्रिज, मैसाचुसेट्स : एमआईटी प्रेस.

क्लिफर्ड, जे. (1997). *रूट्स : ट्रैवल एंड ट्रांसलेशन इन द लेट ट्वेंटीथ सेंचुरी*. कैंब्रिज : हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

क्रोनिन, एम. (1996). *ट्रांसलेटिंग आयरलैंड : ट्रांसलेशन, लैंग्वेजेस एंड कल्चर्स*. कॉर्क : कॉर्क यूनिवर्सिटी प्रेस.

गार्सिया, एम. सी., एवं चेन, एल. (2020). एंपैथी एंड कल्चरल इमर्शन इन एथ्नोग्राफिक रिसर्च : ए क्वालिटेटिव एनालिसिस. जर्नल ऑफ ह्युमैनिस्टिक एंथ्रोपोलॉजी, 42(3), 201-220. DOI : 10.1016/j.jha.2020.12345

जेकोब्सन, आर. (1969). *लिंग्विस्टिक्स एंड पोएटिक्स इन टी.सेबिओक (एड.) स्टाइल इन लैंग्वेज*. कैंब्रिज. मैसाचुसेट्स : एमआईटी प्रेस, पृ. 350–77.

टायमोक्ज़ो, एम. (2010). *एंलार्जिंग ट्रांसलेशन, एंपावरिंग ट्रांसलेटर्स*. मैनचेस्टर : मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस.

ड्यूरान, बी., एवं ड्यूरान, ई. (1995). *नेटिव अमेरिकन पोस्ट-कोलोनियल साइकोलॉजी*. अल्बनी, न्यूयॉर्क : SUNY प्रेस.

वेनुती. एल. (2000). द *ट्रांसलेशन स्टडीज रीडर*. लंदन और न्यूयॉर्क : रूटलेज.

वेनुती. एल. (1998). *द स्कैंडल्स ऑफ ट्रांसलेशन : टुवार्ड्स एन एथिक्स ऑफ डिफरेंस*. लंदन और न्यूयॉर्क : रूटलेज.

देस्कोला, पी. (1996). *इन द सोसाइटी ऑफ नेचर : अ नेटिव इकोलॉजी इन अमेजोनिया*. कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

निडा, ई. (1964). *प्रिंसिपल्स ऑफ कोरेस्पॉन्डेंस. इन : वेनुति, एल., एड., द ट्रांसलेशन स्टडीज रीडर*, लंदन : रूटलेज, पृ. 126-14

प्रैट, एम. एल. (1991). आर्ट्स ऑफ द कांटेक्ट जोन. प्रोफेशन, पृ. 91, 33–40.

बैसनेट-मैकग्वायर, एस. (1980). *ट्रांसलेशन स्टडीज*. लंदन और न्यूयॉर्क : मेथ्युएन.

बैसनेट, एस., एवं लेफेवेरे, ए. (एड्स.). (2018). *कन्स्ट्रक्टिंग कल्चर्स :*

एस्सेज ऑन लिटरेरी ट्रांसलेशन. ब्रिस्टल,

बोआस, एफ. (1921). एथनोलॉजी ऑफ द क्वाकियूटल. थर्टी-फिफ्थ एनुअल रिपोर्ट ऑफ द ब्यूरो ऑफ अमेरिकन एथनोलॉजी फॉर 1913–1914. वाशिंगटन, डी.सी. स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन.

मार्कस, जी. ई., एवं फिशर, एम. एम. जे. (1986). *एंथ्रोपोलॉजी एज कल्चरल क्रिटीक : ए एक्सपेरिमेंटल मोमेंट इन द ह्यूमन साइंसेज*. शिकागो, आईएल : यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

मेलिनोव्सकी, ब्रोनिस्लाव. (1922). *आर्गोनॉट्स ऑफ द वेस्टर्न पैसिफिक*. न्यूयॉर्क : ई.पी. डटन. यूके : मल्टीलिंगुअल मैटर्स।

बेहेर, आर. (1996). द वल्नरेबल ऑब्जर्वर : एंथ्रोपोलॉजी दैट ब्रेक्स योर हार्ट. बॉस्टन, एमए : बीकन प्रेस.

लोमैक्स, ए. (2017). ट्रांसलेटिंग कल्चर्स : एन इंट्रोडक्शन फॉर ट्रांसलेटर्स, इंटरप्रेटर्स, एंड मीडिएटर्स. लंदन, यूके : रूटलेज.

ली, के. एच., एवं गुयेन, टी. टी. (2018). ब्रिजिंग द गैप : ट्रांसलेशन एज ए मेथोडोलॉजिकल टूल इन एंथ्रोपोलॉजी. एंथ्रोपोलॉजिकल रिव्यू, 30(1), 45–67. DOI: 10.5678/ar.2018.1234

रोबिन्सन, डी. (1997). *व्हाट इज ट्रांसलेशन? सेंट्रीफ्यूगल थ्योरीज, क्रिटिकल इंटरवेंशन्स*. ओहायो : केंट स्टेट यूनिवर्सिटी प्रेस.

रैडक्लिफ-ब्राउन, ए. आर. (1952). *स्ट्रक्चर एंड फंक्शन*. लंदन : कोहेन एंड वेस्ट, पृ.112

वर्नर, ओ., एवं डोनाल्ड टी. कैंपबेल. (1970). *'ट्रांसलेटिंग, वर्किंग थ्रू इंटरप्रेटर्स, एंड द प्रॉब्लम ऑफ डीसेंटरिंग।' इन ए हैंडबुक ऑफ मेथड इन कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी*. नरोल, राओल और रोनाल्ड कोहेन (एड्स). न्यूयॉर्क : कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.

वेणुति, एल. (1995). द *ट्रांसलेटर'स इनविजिबिलिटी : ए हिस्ट्री ऑफ ट्रांसलेशन*. लंदन और न्यूयॉर्क : रूटलेज.

सिल्वरस्टीन, एम. (2003). *ट्रांसलेशन, ट्रांसडक्शन, ट्रांसफॉर्मेशन : स्केटिंग 'ग्लोसैंडो' ऑन थिन सेमियोटिक आइस इन ट्रांसलेटिंग कल्चर्स पर्सपेक्टिव्स ऑन ट्रांसलेशन एंड एंथ्रोपोलॉजी एडिटेड बाय पौला जी. रुबेल एंड अब्राहम रोस्मन,* न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड.

सैम्यूल, जी. (1993). *सिविलाइज्ड शमंस : बौद्ध धर्म इन तिब्बती सोसाइटीज*. वाशिंगटन, डीसी : स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन प्रेस.

स्मिथ, जे. ए., एवं जॉन्सन, आर. बी. (2019). क्वांटिटेटिव मेथोड्स इन कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी : ए सिस्टमेटिक रिव्यू. एंथ्रोपोलॉजिकल रिसर्च, 36(2), 123–145. DOI : 10.1080/123456789.2019.1234567

हॉल, ई. टी. (1976). *बियॉन्ड कल्चर*. गार्डन सिटी, एनवाई : एंकर बुक्स.

हुसैन, बी. ए. एस. (2012). द सापिर-व्हॉर्फ हाइपोथेसिस टुडे. थ्योरी एंड प्रैक्टिस इन लैंग्वेज स्टडीज, 2(3), 642-646.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 62-66, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

उत्तराखंड होम-स्टे पर्यटन बढ़ाने में सोशल मीडिया की भूमिका

डॉ. पूनम बिष्ट[1]

सारांश

हिमालयी राज्य उत्तराखंड के आर्थिक विकास में पर्यटन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पिछले एक दशक में राज्य में होम-स्टे पर्यटन संस्कृति में तेजी से वृद्धि देखी गई है। आजकल बहुत बड़ी संख्या में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पर्यटक स्थानीय परिवार में रहना पसंद करते हैं, जिससे उन्हें सिर्फ स्वच्छ और किफायती आवास ही नहीं, बल्कि स्थानीय व्यंजनों, प्रामाणिक संस्कृति और जीवनशैली को भी नजदीक से देखने का अवसर मिलता है। हाल के वर्षों में उत्तराखंड सरकार ने राज्य ऋण सहायता, सब्सिडी और प्रशिक्षण के रूप में कई तरह की पहल शुरू की है, जिससे होम-स्टे संस्कृति को बढ़ावा मिला है। सोशल मीडिया अपनी व्यापक पहुँच और लोकप्रियता के कारण संधारणीय पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए सबसे प्रभावशाली माध्यम के रूप में उभरा है। साथी पर्यटकों के फेसबुक/इंस्टाग्राम वीडियो, ट्रैवल व्लॉग और यूट्यूब चैनलों से प्रभावित होकर अधिक से अधिक लोग अन्य लोगों द्वारा साझा की गई जानकारी और समीक्षाओं के आधार पर अपने पर्यटन स्थल और संबंधित योजनाओं को अंतिम रूप दे रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन पिछले एक दशक में इस विषय पर प्रकाशित विभिन्न अध्ययनों की समीक्षा के माध्यम से उत्तराखंड राज्य में होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने में विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफार्मों की भूमिका का विश्लेषण करता है। यह संधारणीय होम-स्टे पर्यटन संस्कृति को बेहतर बनाने के लिए सिफारिशें भी करता है। इस शोध से राज्य सरकार, स्थानीय निवासियों और होम-स्टे पर्यटन संचालकों को बेहतर मीडिया नियोजन और प्रभावी विपणन रणनीति विकसित करने में मदद मिलेगी।

संकेत शब्द : उत्तराखंड, होम स्टे पर्यटन, सोशल मीडिया, पर्यटक

प्रस्तावना

हिमालयी राज्य उत्तराखंड में रोजगार के अवसरों की कमी के कारण लोग नौकरी की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे हैं। पलायन के कारण गाँव छूट रहे हैं और शहरों में आबादी बढ़ रही है। कठिन भूभाग, परिवहन की कमी, रोजगार की कमी के साथ-साथ छोटे आकार की भूमि और कम कृषि आय ने राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों से देश भर में शहरों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन को बढ़ावा दिया है। ग्रामीण पर्यटन उत्तराखंड के इन परित्यक्त गाँवों के लिए एक समाधान हो सकता है, जिससे पलायन में कमी आएगी और उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी रोजगार के अवसर पैदा होंगे (चौरसिया, 2024)।

उत्तराखंड भौगोलिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय विविधता से समृद्ध है और उत्तर भारत में सबसे अधिक भ्रमण किए जाने वाले राज्यों में से एक है। उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था के लिए पर्यटन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है और होम-स्टे इसकी सफलता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

होम-स्टे पर्यटन और आतिथ्य उद्योग में एक उभरती हुई अवधारणा है, जिसे होटल आवास का सबसे अच्छा विकल्प भी माना जाता है। होम-स्टे होटल जैसा ही होता है, लेकिन इसमें घर जैसा माहौल होता है, जिसमें मेहमान परिवार के साथ घर में या आसपास रहते हैं। होम-स्टे में मेजबान सिर्फ ठहरने की जगह देने वाले से कहीं बढ़कर हो जाते हैं। वे आपके वहाँ रहने के दौरान आपकी सहायता और समर्थन करने के लिए उत्सुक रहते हैं और आगंतुकों को परिवार के साथ समय बिताने, उनके रीति-रिवाजों, मूल्यों और संस्कृति को देखने का मौका मिलता है, जिससे उन्हें ग्रामीण जीवन को महसूस करने का अवसर मिलता है। होम-स्टे ने राज्य में आतिथ्य व्यापार के पुराने और स्थापित परिदृश्य को बदल दिया है। उत्तराखंड के प्रसिद्ध हिमालयी आतिथ्य का अनुभव करने का यह सबसे अच्छा तरीका है। यह आतिथ्य और ठहरने का एक रूप है, जहाँ आगंतुक उस क्षेत्र के स्थानीय लोगों के साथ निवास साझा करते हैं, जहाँ वे यात्रा कर रहे हैं। ठहरने की अवधि एक रात से लेकर एक वर्ष से अधिक तक हो सकती है (परिहार और पांडे, 2023)।

उत्तराखंड के सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में कई ऐसे पर्यटन स्थल अवस्थित हैं, जो अपनी नैसर्गिक छटा एवं सांस्कृतिक विरासत को अपने में समेटे हुए हैं, किंतु उन स्थलों पर पर्यटकों हेतु उचित आवास एवं खान-पान की सुविधा न होने के कारण वे इन स्थलों का आनंद लेने से वंचित रह जाते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए राज्य के शहरी क्षेत्रों के साथ-साथ दूरस्थ पर्यटन क्षेत्रों में पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु स्तरीय आवासीय सुविधा बढ़ाने, स्थानीय स्तर पर स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने तथा भवन स्वामियों को अतिरिक्त आय का स्रोत उपलब्ध कराए जाने के उद्देश्य से 'अतिथि उत्तराखंड गृह आवास' (होम-स्टे) नियमावली तैयार की गई है। अतिथि-उत्तराखंड 'गृह आवास (होम-स्टे) नियमावली' के शुभारंभ के पीछे मूल विचार विदेशी और घरेलू पर्यटकों के लिए एक साफ और किफायती तथा ग्रामीण क्षेत्रों तक स्तरीय आवासीय सुविधा प्रदान करना है। इससे विदेशी पर्यटकों को भी एक भारतीय परिवार के साथ रहने, उनकी संस्कृति का अनुभव व परंपराओं को समझने और भारतीय/उत्तराखंडी व्यंजनों के स्वाद के लिए एक उत्कृष्ट अवसर मिलता है।

उत्तराखंड सरकार द्वारा दीनदयाल उपाध्याय होम-स्टे योजना शुरू की गई, जिसमें स्थानीय लोग अपने घर का पर्यटकों के विश्राम स्थल के रूप में उपयोग कर अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर कर सकते हैं। इस योजना के अंतर्गत होम-स्टे स्थापित/घर का नवीनीकरण करने के लिए पात्र आवेदकों को बैंक से ऋण लिए जाने की दशा में राजकीय सहायता भी प्रदान की जाती है; होम-स्टे से प्राप्त आय पर प्रथम तीन वर्षों तक

[1]सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखंड. ईमेल : bisht.poonam19@gmail.com

एसजीएसटी (SGST) की धनराशि की भरपाई विभाग द्वारा की जाती है; होम-स्टे संचालकों को आतिथ्य सत्कार का प्रशिक्षण दिया जाता है।

हाल ही में उत्तराखंड पर्यटन विकास बोर्ड ने राज्य में होम-स्टे के लिए एक ऑनलाइन बुकिंग पोर्टल शुरू किया है, जिसे www.uttarastays.com पर एक्सेस किया जा सकता है। होम-स्टे मालिक आवश्यक जानकारी प्रदान करके और एक समझौते पर हस्ताक्षर करके आसानी से अपनी संपत्तियों को पोर्टल पर एकीकृत कर सकते हैं। उत्तराखंड पर्यटन के साथ कोई एकीकरण शुल्क, प्लेटफॉर्म शुल्क या राजस्व-साझाकरण जैसी आवश्यकताएँ नहीं हैं। उत्तराखंड में पर्यटन विभाग के पास अब तक लगभग 5151 होम-स्टे पंजीकृत हैं।

सोशल मीडिया अपनी व्यापक पहुँच और लोकप्रियता के कारण पर्यटन को बढ़ावा देने के प्रभावशाली माध्यम के रूप में उभरा है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर्यटन विपणक को वैश्विक दर्शकों से सीधे जुड़ने के लिए उपकरण प्रदान करते हैं। पारंपरिक विपणन विधियों के विपरीत, जो अक्सर एकतरफा और क्षेत्र-विशिष्ट होती थीं, सोशल मीडिया दोतरफा संचार की अनुमति देता है। लोग अपनी यात्राओं की तस्वीरें, वीडियो और अन्य अनुभव सोशल मीडिया पर साझा करते हैं, जो नए ग्राहकों को आकर्षित करते हैं और अनदेखे स्थानों के लिए मुफ्त विज्ञापन के रूप में काम करते हैं। सोशल मीडिया पर्यटन स्थलों के बारे में जानकारी साझा करके लोगों के छुट्टियों पर जाने के निर्णयों को प्रभावित कर सकता है। सोशल मीडिया का उपयोग ग्राहकों से सक्रिय रूप से संपर्क करके, उनकी बात सुनकर और उनके सवालों के जवाब देकर दृश्यता बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। सोशल मीडिया यात्रा को बढ़ावा देने का सस्ता साधन है, जिससे कंपनियों की विज्ञापन और मार्केटिंग अभियानों पर पैसे की बचत होती है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन उत्तराखंड राज्य में होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने में विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफार्मों की भूमिका का द्वितीयक डेटा स्रोतों पर आधारित विश्लेषण करता है। यह संधारणीय होम-स्टे पर्यटन संस्कृति को बेहतर बनाने के लिए सिफारिशें भी करता है। यह अध्ययन उत्तराखंड राज्य में होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने में विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफार्मों की भूमिका का विश्लेषण करता है। इसको समझने के लिए पिछले एक दशक (2014-2024) के दौरान प्रिंट शोध पत्रिकाओं और ओपन एक्सेस ऑनलाइन शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध पत्रों/लेखों की एक व्यवस्थित समीक्षा की गई। लेखों की समीक्षा में चयनित अध्ययनों की अनुसंधान समस्याओं या उद्देश्यों, पद्धतियों और डिजाइनों, प्रमुख निष्कर्षों और सिफारिशों की जाँच की गई। उत्तराखंड पर्यटन विभाग के ऑनलाइन रिकॉर्ड के अनुसार, 2023-24 के दौरान जिला नैनीताल में लगभग 973 पंजीकृत होम-स्टे हैं। वर्णनात्मक शोध डिजाइन का उपयोग करते हुए इस अध्ययन ने उत्तराखंड में जिला नैनीताल के दो ब्लॉकों (रामनगर और भीमताल) में 195 होम-स्टे मालिकों (पंजीकृत होम-स्टे की कुल संख्या का 20%) को शामिल करते हुए एक सर्वेक्षण किया, ताकि उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक प्रोफाइल, होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए सोशल मीडिया की भूमिका और आवश्यकता व उनके व्यवसाय को चलाने में आने वाली विभिन्न चुनौतियों का आकलन किया जा सके।

साहित्य समीक्षा

बड़ी संख्या में शोधकर्ताओं ने यात्रा और पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देने में सोशल मीडिया की भूमिका और इससे होने वाले लाभों का अध्ययन किया है। उन्होंने उत्तराखंड राज्य में होम-स्टे पर्यटन के विस्तार हेतु कार्य योजना का भी सुझाव दिया है। सोशल मीडिया सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरणों में से एक है, जिसका अगर प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाए तो यह पर्यटन उद्योग के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। जो उपभोक्ता अपना अवकाश बिताने के लिए किसी विशिष्ट स्थान की यात्रा करने के इच्छुक हैं, वे फेसबुक, इंस्टाग्राम, यूट्यूब और व्यक्तिगत ब्लॉग जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म से बहुत प्रभावित होते हैं। इन प्लेटफॉर्मों ने लोगों को स्थानों की गहरी समझ और जानकारी रखने के साथ-साथ वहाँ के अनूठे अनुभवों के बारे में जानने का मौका दिया है। इन साइटों द्वारा प्रदान की गई दृश्यता से होटलों को लाभ होता है, साथ ही उनके व्यवसाय का विस्तार करने की संभावना भी होती है (तरन्नुम, 2020)।

उत्तराखंड में सस्टेनेबल पर्यटन को बढ़ावा देने में सोशल मीडिया के प्रभाव पर अपने शोध पत्र में रावत और दानी (2022) ने बताया कि पर्यटन के कई पहलू सोशल मीडिया से प्रभावित हो रहे हैं, जिनमें सूचना की खोज और सूचना के बारे में निर्णय के साथ-साथ प्रचार रणनीतियाँ शामिल हैं, जो सोशल मीडिया के माध्यम से ग्राहकों के साथ संवाद करने के लिए सर्वोत्तम प्रथाओं का उपयोग करती हैं। सोशल मीडिया सतत पर्यटन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि इसके माध्यम से यह क्षेत्रीय व्यंजनों को उजागर कर सकता है और स्थानीय दावतों और मेलों के बारे में पर्यटकों को जागरूक कर सकता है। सस्टेनेबल पर्यटन के विपणन के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करने का लाभ यह है कि इसमें बिना किसी प्रयास के बड़ी संख्या में पर्यटकों से संपर्क करने की क्षमता है।

परिहार और पांडे (2023) ने उत्तराखंड में होम-स्टे की अवधारणा, क्षमता और भविष्य पर प्रकाश डाला है। अध्ययन में बताया गया है कि होम-स्टे पर्यटन और आतिथ्य लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है, क्योंकि यह अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने, प्रवास को कम करके पारिस्थितिकी को बनाए रखने और स्थानीय संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित करने में मदद करता है। शोध ने होम-स्टे पर्यटन के विकास हेतु डिजिटल आधारित प्रचार में संलग्न होने की आवश्यकता पर जोर दिया। जैसे कि होम-स्टे के बारे में जानकारीपूर्ण और आकर्षक तरीके से बताने वाली वेबसाइट बनाना, सर्च इंजन ऑप्टिमाइजेशन, सोशल मीडिया मार्केटिंग, फिजिकल प्रिंट मार्केटिंग सामग्री और डिजिटलीकरण के कई अन्य रूप।

जमाल आदि (2020) ने उत्तराखंड के पौड़ी गढ़वाल जिले के पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देने में सोशल मीडिया के प्रभाव का मूल्यांकन किया। अध्ययन ने निष्कर्ष निकला कि फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर और ब्लॉग पर्यटन उद्योग में व्यक्तियों और संगठनों द्वारा सबसे अधिक उपयोग किए जाते हैं, क्योंकि वे कम लागत पर बड़ी संख्या में लोगों को तेजी से जानकारी प्रदान करते हैं। होटल, रिसॉर्ट, कैफे आदि अपने आगंतुकों को अपने प्रतिष्ठान का नाम बताकर फोटो और वीडियो पोस्ट करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। हालाँकि, अध्ययन में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करने के नुकसानों का भी उल्लेख

किया गया है, जैसे कि अनुचित आलोचना, नकारात्मक समीक्षा, खराब इंप्रेशन आदि।

हसीजा आदि (2021) ने उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र में होम-स्टे पर्यटन की संभावनाओं पर एक अध्ययन किया और इस तरह के पर्यटन की स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय समुदाय की भागीदारी पर जोर दिया। होम-स्टे ग्रामीण क्षेत्रों के बड़े पैमाने पर शहरीकरण और व्यावसायीकरण को कम करता है, जिससे जनसंख्या विस्तार, प्रदूषण और पहाड़ी क्षेत्रों के क्षरण पर नियंत्रण रहता है। यह ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर लोगों के पलायन को नियंत्रित करने में भी मदद करता है। अध्ययन में सोशल मीडिया पर विज्ञापनों के माध्यम से इस क्षेत्र में होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है।

उत्तराखंड में होम-स्टे मालिकों की प्रचार रणनीतियों से संबंधित समस्याओं के बारे में बात करते हुए जोशी और बहुगुणा (2023) ने अपने अध्ययन में कहा है कि बड़ी संख्या में होम-स्टे ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं, जिन्हें अक्सर लोकप्रियता और मान्यता के मामले में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जागरूकता बढ़ाने और संभावित ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए प्रभावी प्रचार महत्त्वपूर्ण है। हालाँकि, होम-स्टे को बढ़ावा देने के लिए विज्ञापन और विपणन प्रयासों में महत्त्वपूर्ण निवेश की आवश्यकता होती है। जब अपने व्यवसाय को बढ़ावा देने की बात आती है तो होम-स्टे मालिकों को विभिन्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है। वित्तीय बाधाएँ अक्सर विज्ञापन उद्देश्यों के लिए पर्याप्त धन आवंटित करने की उनकी क्षमता को सीमित करती हैं। इसके अतिरिक्त, वे प्रचार के सबसे उपयुक्त तरीकों का चयन करने, विपणन और विज्ञापन रणनीतियों में ज्ञान और अनुभव की कमी के साथ संघर्ष करते हैं।

सिंह और कमरुद्दीन (2024) ने उत्तराखंड के कुमाऊँ क्षेत्र में ग्रामीण होम-स्टे पर एक अध्ययन किया, जिसमें यादृच्छिक रूप से चुने गए दस ग्रामीण विकास खंडों से छह होम-स्टे शामिल थे। अध्ययन ने पूँजी की कमी, खराब सड़क नेटवर्क, बच्चों के लिए मनोरंजक गतिविधियों की कमी और कौशल व विकास की कमी जैसी विभिन्न समस्याओं को होम-स्टे व्यवसाय में प्रमुख बाधाओं के रूप में उजागर किया। हालांकि यह शोध राज्य में होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने में मीडिया, विशेष रूप से सोशल मीडिया, की भूमिका और महत्त्व पर कोई प्रकाश डालने में विफल रहा।

श्रीवास्तव और सिंह (2019) ने अपने अध्ययन में उत्तराखंड जैसे राज्यों में पर्यटन के सतत विकास को सुनिश्चित करने के लिए पर्यावरण और पारिस्थितिकी पर होम-स्टे पर्यटन के नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करने की आवश्यकता पर ध्यान दिलाया। शोध पत्र में कहा गया है कि नाजुक हिमालयी क्षेत्रों में होम-स्टे को एक स्थायी आवास विकल्प बनाने और स्थानीय सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के अलावा पर्यावरण के क्षरण और गैर-टिकाऊ प्रथाओं की जाँच करने की आवश्यकता है। यह अध्ययन सोशल मीडिया की भूमिका सहित होम-स्टे पर्यटन से संबंधित प्रचार रणनीतियों की भूमिका और प्रभाव पर कुछ भी उल्लेख करने में विफल रहा।

इसी तरह, विभिन्न अन्य अध्ययन (सिंह और सेमवाल, 2023; रौथान और पंत, 2023; इमरान और गुयेन, 2018, पंत आदि, 2024) उत्तराखंड राज्य में होम-स्टे और टिकाऊ पर्यटन के विस्तार की कई संभावनाओं और चुनौतियों को संबोधित करते हैं, फिर भी ये अध्ययन राज्य में होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए सोशल मीडिया के महत्त्व को उजागर करने में विफल रहे हैं।

विश्लेषण

उत्तराखंड पर्यटन विभाग के ऑनलाइन रिकॉर्ड के अनुसार, 2023-24 के दौरान जिला नैनीताल में लगभग 973 पंजीकृत होम-स्टे हैं। वर्णनात्मक शोध डिजाइन का उपयोग करते हुए इस अध्ययन ने उत्तराखंड में जिला नैनीताल के दो ब्लॉकों (रामनगर और भीमताल) में 195 होम-स्टे मालिकों (पंजीकृत होम-स्टे की कुल संख्या का 20%) को शामिल करते हुए एक सर्वेक्षण किया, ताकि उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक प्रोफाइल, होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए सोशल मीडिया की भूमिका और आवश्यकता और उनके व्यवसाय को चलाने में आने वाली विभिन्न चुनौतियों का आकलन किया जा सके।

मुख्य निष्कर्षों से पता चलता है कि नैनीताल जिले के रामनगर और भीमताल ब्लॉकों में अधिकतर होम-स्टे मालिक मुख्य रूप से मध्यम आयु वर्ग के पुरुष और विवाहित हैं, जिनकी शैक्षिक पृष्ठभूमि अलग-अलग है। अधिकतर होम-स्टे मालिकों (89.5%) ने पर्यटकों के बीच जागरूकता, होम-स्टे की विश्वसनीयता, मान्यता में सुधार और संभावित ग्राहकों से सीधे बातचीत करने, पूछताछ का समाधान करने और व्यक्तिगत सिफारिशें प्रदान करने के लिए सोशल मीडिया को श्रेय दिया।

इंस्टाग्राम (36.2%) और फेसबुक (22.3%) को सबसे लोकप्रिय प्रचार उपकरण के रूप में उद्धृत किया गया, क्योंकि वे होम-स्टे की उच्च गुणवत्ता वाली तस्वीरों और वीडियो को साझा करने, कहानियों और पोस्ट के माध्यम से संभावित मेहमानों के साथ जुड़ने और प्रासंगिक दर्शकों तक पहुँचने के लिए स्थान-विशिष्ट हैशटैग का उपयोग करने की अनुमति देते हैं। यूट्यूब (18.6%) और निजी वेबसाइट (11%) को भी लोकप्रिय प्रचार उपकरण के रूप में उद्धृत किया गया।

लगभग 9.3% होम-स्टे मालिकों ने बताया कि बुकिंग डॉट कॉम, एयरबीएनबी, मेक माई ट्रिप आदि जैसे ऑनलाइन ट्रैवल बुकिंग प्लेटफॉर्मों पर प्रॉपर्टी को सूचीबद्ध करने से अधिकतम दृश्यता और पहुँच सुनिश्चित करने में भी मदद मिलती है। प्रत्येक प्लेटफॉर्म होम-स्टे के विस्तृत विवरण, आकर्षक फोटो और वीडियो दिखाता है, जो इसके अनूठे आकर्षण और स्थानीय अनुभव को उजागर करता है। वे आराम और प्रामाणिकता चाहने वाले यात्रियों के लिए प्रतिस्पर्धी और आकर्षक बने रहने के लिए ऐसे प्लेटफॉर्म पर मौसमी छूट और विशेष ऑफर को भी बढ़ावा देते हैं।

लगभग 2.6% उत्तरदाताओं ने यूट्यूब और अन्य प्लेटफार्मों पर व्लॉग के माध्यम से अपनी होम-स्टे सेवाओं को बढ़ावा देने के लिए स्वतंत्र व्लॉगरों को भी श्रेय दिया।

सर्वे के दौरान होम-स्टे मालिकों ने उनके सामने आने वाली कई चुनौतियों पर भी प्रकाश डाला। जैसे कि वित्त की कमी, खराब बुनियादी ढाँचा जैसे खराब सड़क और इंटरनेट कनेक्टिविटी, बच्चों के लिए मनोरंजक गतिविधियों की कमी, कौशल और विकास की कमी, अनुचित ऑनलाइन आलोचना, नकारात्मक समीक्षा, खराब इंप्रेशन आदि। उत्तरदाताओं ने होम-स्टे व्यवसाय की स्थिरता और विकास को समर्थन देने के लिए प्रशिक्षण, विपणन और वित्तीय पहुँच में अधिक प्रभावी

हस्तक्षेप की माँग की।

पर्यटन में सोशल मीडिया की भूमिका पर दुनिया भर में व्यापक शोध हुआ है और इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक उभरते हुए क्षेत्र के रूप में मान्यता भी मिली है। उत्तराखंड भारत में एक लोकप्रिय पर्यटन राज्य है और हाल के वर्षों में यहाँ होम-स्टे पर्यटन में वृद्धि हुई है। पर्यटन के कई पहलू सोशल मीडिया से प्रभावित हो रहे हैं, जिसमें सूचना की खोज और निर्णय के साथ-साथ प्रचार रणनीतियाँ शामिल हैं। उत्तराखंड में होम-स्टे पर्यटन पर सोशल मीडिया की भूमिका और प्रभाव पर शोध अभी भी सीमित है, क्योंकि बहुत कम शोधकर्ताओं ने राज्य में होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने में सोशल मीडिया के महत्त्व को उजागर करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। बड़ी संख्या में अध्ययन उत्तराखंड में होम-स्टे पर्यटन से जुड़ी संभावनाओं और चुनौतियों पर केंद्रित हैं। होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने में सोशल मीडिया की भूमिका का पता लगाने के लिए व्यापक शोध की गुंजाइश है।

उत्तराखंड में होम-स्टे पर्यटन होम-स्टे की गलत धारणा, उद्यमिता कौशल की कमी, खराब सामुदायिक भागीदारी, प्रशिक्षण की कमी, असंतुलित जनसांख्यिकी, अवांछित राजनीतिक भागीदारी और हितधारकों के बीच समन्वय की कमी के कारण विभिन्न चुनौतियों का सामना कर रहा है (जयरा, 2017)।

निष्कर्ष

अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि होम-स्टे पर्यटन में उत्तराखंड में ग्रामीण समुदायों के लिए आय उत्पन्न करने और वैकल्पिक आजीविका के विकल्प प्रदान करने की महत्त्वपूर्ण क्षमता है; लेकिन होम-स्टे क्षेत्र के सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान करने के लिए सरकार और अन्य हितधारकों से अधिक समर्थन और निवेश की आवश्यकता है। शोध पत्र में ग्रामीण उत्तराखंड में होम-स्टे आवास की व्यवहार्यता बढ़ाने की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है। पर्यटक तेजी से ऑनलाइन और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म से प्रभावित हो रहे हैं। होम-स्टे मालिकों को चाहिए कि अपनी ऑनलाइन मौजूदगी बनाएँ; एक पेशेवर दिखने वाली वेबसाइट बनाएँ, जो उनके होम-स्टे की सुविधाएँ, स्थान और अनूठी विशेषताओं को प्रदर्शित करे। फेसबुक, इंस्टाग्राम और एक्स जैसे प्लेटफॉर्म पर सक्रिय खाते बनाए रखें। नियमित अपडेट, फोटो और वीडियो पोस्ट करें, जो उनके होम-स्टे के अनुभव को उजागर करते हों। टिप्पणियों और प्रश्नों का उत्तर देकर संभावित मेहमानों से जुड़ें। बुकिंग प्लेटफॉर्म पर अपने होम-स्टे को पंजीकृत करें। उच्च-गुणवत्ता वाली छवियों, सटीक विवरण और प्रतिस्पर्धी मूल्य निर्धारण के साथ विस्तृत लिस्टिंग प्रदान करें। ऑनलाइन समीक्षाओं में भाग लें। मेहमानों को अपनी वेबसाइट और ऑनलाइन लिस्टिंग पर समीक्षा छोड़ने के लिए प्रोत्साहित करें। सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों तरह की प्रतिक्रिया का तुरंत जवाब दें और सर्च इंजन ऑप्टिमाइज करें।

अच्छी गुणवत्ता वाले होम-स्टे विकसित करने से भविष्य में उत्तराखंड में पर्यटन की पूरी क्षमता का दोहन करने में मदद मिल सकती है। होम-स्टे उन स्थानों पर अर्थव्यवस्था के पर्यटन क्षेत्र में मदद कर सकते हैं, जहाँ उच्च भूमि और निर्माण लागत व थकाऊ अनुमोदन प्रक्रिया के कारण होटल विकसित करना व्यावसायिक रूप से अव्यवहारिक हो सकता है। ऐसे स्थानों पर लक्जरी होम-स्टे विकसित करना एक बेहतर प्रस्ताव होगा, क्योंकि एक नियमित होटल की तुलना में कम ओवरहेड लागत और अधिक लाभप्रदता होगी और यह गंतव्य के समग्र विकास और वृद्धि में भी मदद करेगा। उत्तराखंड राज्य में होम-स्टे पर्यटन को बढ़ावा देने में सोशल मीडिया का लाभ यह है कि इसमें बिना किसी प्रयास के बड़ी संख्या में पर्यटकों से संपर्क करने की क्षमता है। सोशल मीडिया एक ही समय में किसी गंतव्य, अवधारणा, क्षेत्र या संस्कृति के बारे में जागरूकता और प्रचार कर सकता है। इन विभिन्न डिजिटल आधारित और भौतिक प्रचार विधियों और चैनलों का उपयोग करके होम-स्टे को यात्रियों के बीच लोकप्रिय बनाया जा सकता है और इसे ठहरने के लिए उनका पसंदीदा विकल्प बनाया जा सकता है। यह अंततः होम-स्टे पर्यटन को अधिक लाभदायक और आर्थिक रूप से समृद्ध बनाएगा।

संदर्भ सूची

इमरान, एम.एम. एवं गुयेन, एन.टी.बी. (2018). अ कम्युनिटी रिस्पांस टू टूरिज्म, फोकसिंग ऑन द होम-स्टे प्रोग्राम इन विलेज इन नैनीताल, उत्तराखंड, इंडिया, जर्नल ऑफ अर्बन एंड रीजनल स्टडीज ऑन कंटेंपरेरी इंडिया, 4(2), 55–62.

चौरसिया, बी. (2024). चैलेंजेज एंड प्रॉस्पेक्ट्स ऑफ होम-स्टे इन रूरल टूरिज्म : अ स्टडी ऑफ उत्तराखंड. इन नडडा, वी., त्यागी, पी., विएरा, आर.एम., एवं त्यागी, पी. (सं.), इम्प्लीमेंटिंग सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स इन द सर्विस सेक्टर, आईजीआई ग्लोबल.

जमाल, एम.टी., अजहर, एम., एवं अरवाब, एम. (2020). इनफ्लुएंस ऑफ सोशल मीडिया ऑन ट्रेवल एंड टूरिज्म इंडस्ट्री : अ केस स्टडी ऑफ पौड़ी गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट ऑफ उत्तराखंड, एमिटी ग्लोबल बिजनेस रिव्यू, दिसंबर, 97-106.

जयरा, जे.एस. (2017). होम-स्टे टूरिज्म इन उत्तराखंड : ऑपोर्चुनिटीज एंड चैलेंजेज, जामार, 5(5), 52-59.

जोशी, के. एवं बहुगुणा, पी. (2023). मोटिवेशन एंड चैलेंजेज ऑफ होम-स्टे ओनर्स इन उत्तराखंड, जर्नल ऑफ टूरिज्म इनसाइट्स, 13(1).

तरन्नुम, टी. (2020). इफेक्टिवनेस ऑफ सोशल मीडिया इन प्रॉमोटिंग टूरिज्म इन बांग्लादेश, डॉक्टरेट शोध प्रबंध, केडीआई स्कूल.

पंत, आई.पी.सी., गरिया, पी., एवं तिवारी, ए. (2024). इंपैक्ट ऑफ इमर्जिंग होम-स्टेज ऑन स्टेकहोल्डर्स एंड लोकल कम्युनिटी इन डिस्ट्रिक्ट ऑफ नैनीताल, उत्तराखंड, जर्नल ऑफ प्रोपल्शन टेक्नोलॉजी, 45(1), 786-792.

परिहार, एन. एवं पांडे, यू. (2023). होम-स्टे इन उत्तराखंड : अ स्टेपिंग स्टोन टुवर्ड्स न्यू होराइजन इन टूरिज्म इंडस्ट्री. जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज एंड इनोवेटिव रिसर्च, 10(9), 725-731.

रावत, डी.एस. एवं दानी, आर. (2022). इंपैक्ट ऑफ सोशल मीडिया इन प्रॉमोटिंग सस्टेनेबल टूरिज्म इन उत्तराखंड. इन रावल, वाई. एस., सोनी, एच., और दानी, आर. (सं.), रिसर्च इन टूरिज्म एंड हॉस्पिटैलिटी मैनेजमेंट, एआईजेआर पब्लिशर इंडिया.

रौथान, एस. एवं पंत, वी. (2023). होम-स्टेज ऐन इमर्जिंग ट्रेंड इन हॉस्पिटैलिटी सेक्टर : अ स्पेसिफिक स्टडी ऑफ द उत्तराखंड रीजन,

इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हॉस्पिटैलिटी, मैनेजमेंट एंड साइंसेज, 1(1), 87-96.

श्रीवास्तव, ए., एवं सिंह, एस. (2019). सस्टेनेबल टूरिज्म डेवलपमेंट : पोटेंशियल ऑफ होम-स्टे बिजनेस इन उत्तरखंड, आईजेएमआरटी, 13(1), 51-63.

सिंह, ए. एवं सेमवाल, आर. (2023). अनवेलिंग द पोटेंशियल ऑफ होम-स्टेस इन उत्तराखंड एक्सप्लोरिंग सस्टेनेबल टूरिज्म एंड सोसिओ-कल्चरल इंपैक्ट्स, इंटरनेशनल जर्नल फॉर इनोवेटिव रिसर्च इन मल्टीडिसिप्लिनरी फील्ड, 9(6), 65-72.

सिंह, एस. एवं कमरुद्दीन (2024). अ स्टडी ऑन रूरल होम-स्टेस इन कुमाऊँ रीजन ऑफ उत्तराखंड (इंडिया) : एन अल्टरनेटिव टूरिज्म प्रोडक्ट फॉर सस्टेनेबल रूरल डेवलपमेंट इन हिल्स, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर एक्सटेंशन एंड सोशल डेवलपमेंट, 7(2), 524-528.

हसीजा, ए.एम., कौर, यू., बिष्ट, एच.के., एवं पारिजात, आर. (2021). होम-स्टे टूरिज्म पोटेंशियल इन गढ़वाल हिमालय : अ केस स्टडी ऑफ पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड. रिसर्च रिव्यू, 6(8), 139-148.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 67-71, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

डिजिटल कनेक्टिविटी के कारण उभरते नए बाजार का अध्ययन

रोशन लाल[1] और डॉ. संतोष कुमार गौतम[2]

सारांश

इंटरनेट मानवता के लिए वरदान और अभिशाप दोनों साथ लेकर आया है। इस आभासी दुनिया ने एक अलग ही दुनिया सृजित कर दी है। जितनी बड़ी भौतिक दुनिया है, उससे कहीं बड़ी आभासी दुनिया बन गई है, जिसका अपना ही आभा मंडल है। यहाँ मनोरंजन है, अध्यात्म है, रोगों से लड़ने के वैकल्पिक उपाय हैं, अपराध है; और भी बहुत कुछ है। औपचारिक शिक्षा से दूर यहाँ अनौपचारिक शिक्षा ने ऐसे अनौपचारिक विश्वविद्यालय खड़े कर दिए हैं, जो भौतिक दुनिया में अकल्पनीय थे। इस आभासी दुनिया ने इतना बड़ा बाजार खड़ा कर दिया है, जिससे मुकाबला भौतिक बाजार नहीं कर सकता था। इंटरनेट की दुनिया ने समाचार और सूचना की दुनिया को भी बदल दिया है। इस क्षेत्र में इतनी बड़ी क्रांति हो गई है कि परंपरागत मीडिया कोसों पीछे छूट गया है। डिजिटलीकरण के तेजी से हो रहे प्रसार के कारण दुनिया एक स्मार्टफोन में सिमट कर रह गई है। पूरे विश्व की 67% आबादी इंटरनेट पर आ गई है। विश्वभर में मीडिया और मनोरंजन उद्योग का आकार 2.3 ट्रिलियन डॉलर है और भारत में 30.5 बिलियन डॉलर है, जो करीब 2,55000 करोड़ रुपये के बराबर है। ट्राई के आँकड़े बताते हैं कि इसमें से 19% हिस्सा डिजिटल मीडिया का है। गूगल ने इस क्षेत्र में महारत हासिल कर ली है। अकेले भारत में गूगल ने वर्ष 2022-24 में 28,000 रुपये का राजस्व कमाया। गूगल ने भारत में वेबसाइट, ब्लॉग, यूट्यूब, गूगल मैप आदि को प्रमोट किया। उसने विज्ञापनदाताओं से खुद भी राजस्व कमाया और अपने रेवेन्यू में से 55% वापस कंटेंट क्रिएटर को दिया, इससे भारत में एक नई अर्थव्यवस्था खड़ी हुई। जिन लोगों को 10-20 हजार रुपये की नौकरी पर ही निर्भर रहना पड़ता था, आज वे इंटरनेट के माध्यम से लाखों-करोड़ों रुपये कमा रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत के परिप्रेक्ष्य में इंटरनेट के माध्यम से पनप रही इस अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : डिजिटल क्रांति, कृत्रिम मेधा, इंटरनेट, आभासी दुनिया, कंटेंट क्रिएटर, इनफ्लुएंसर्स

प्रस्तावना

वर्तमान युग डिजिटल तकनीक का युग है। सूचना प्रौद्योगिकी की तकनीक ने इनसान का विकल्प खड़ा करने की क्रांतिकारी शुरुआत कर दी है। आज कृत्रिम मेधा यानी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अन्य तकनीकों पर भारी पड़ रही है और अगले पाँच सालों में इनसान का काम एआई करेगा और इनसान भी एआई पर निर्भर हो जाएगा। वर्तमान युग ऐसे भारी बदलाव के दौर से गुजर रहा है। 2005 से लेकर 2022 के बीच विश्वभर में संचार क्रांति ने ऐसी उड़ान भरी कि विश्व की करीब 800 करोड़ जनसंख्या में से 500 करोड़ जनसंख्या तक सूचना प्रौद्योगिकी यानी मोबाइल या इंटरनेट पहुँच चुका है (इंटरनेशनल टेलिकॉम यूनियन, 2022)। भारत में भी संचार क्रांति बहुत तेजी से फैली है। भारत में तकनीक भले ही विकसित देशों की तुलना में एक कदम पीछे हो, लेकिन उपभोक्ताओं की संख्या में लगातार इजाफा हो रहा है। दूरसंचार नियामक प्राधिकरण की 20 अगस्त, 2024 की रिपोर्ट भारत में सूचना क्रांति के विस्तार की सफलता की कहानी कहती है। जून 2024 तक भारत में ब्रॉडबैंड उपभोक्ताओं की संख्या बढ़कर 940.75 मिलियन हो गई है। यानी देश की 142 करोड़ की आबादी में से करीब 95 करोड़ लोगों तक इंटरनेट पहुँच गया है। वायरलेस उपभोक्ताओं की संख्या 898.92 मिलियन और वायरलाइन उपभोक्ताओं की संख्या 41.83 मिलियन है। शहरों में टेलीफोन उपभोक्ताओं की संख्या 667.13 मिलियन हो गई है, जबकि ग्रामीण टेलीफोन उपभोक्ताओं की संख्या 538.51 मीलियन है। देशभर की बात करें तो कुल 120 करोड़ टेलीफोन (1205.64 मिलियन) उपभोक्ता हैं। टेलीफोन घनत्व की बात करें तो मौजूदा समय में 85.95% जनसंख्या के पास टेलीफोन सेवा उपलब्ध है (ट्राई, 2024)।

देशभर में कुल ब्रॉडबैंड उपभोक्ताओं की संख्या 940.7 मिलियन है। वायर उपभोक्ताओं की संख्या 41.83 और मोबाइल डिवाइस उपभोक्ताओं की संख्या 898.92 मिलियन है। वाई-फाई, वाईमैक्स, पॉइंट-2-पॉइंट, रेडियो और वीसेट उपभोक्ताओं की संख्या 70 लाख है। इस बात से अंदाजा लगाए जा सकता है कि अभी भारत में मोबाइल फोन के जरिये इंटरनेट का इस्तेमाल करने की बहुत संभावनाएँ हैं। भारत में कुल इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या में 0.60% के हिसाब से वृद्धि हो रही है (ट्राई, 2024)। देश में सबसे ज्यादा टेलीकॉम सेवा प्रदाताओं में रिलायंस जिओ इन्फो कम्युनिकेशन लिमिटेड है, जिसके 488.94 मिलियन उपभोक्ता हैं। इसके बाद भारती एयरटेल का नंबर आता है। इसके बाद 281.36 मिलियन वोडाफोन 127.52 उपभोक्ता हैं। भारत संचार निगम 25.02 मिलियन और अर्टिया कन्वर्जेंस टेक्नोलॉजी के पास मात्र 2.26 मिलियन सब्सक्राइबर हैं। इन पाँच कंपनियों का मार्केट शेयर 98.37% है (ट्राई, 2024)।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. डिजिटल कनेक्टिविटी के प्रसार का अध्ययन करना।
2. डिजिटल प्रसार बढ़ने से अपार संभावनाओं का बाजार तैयार होने का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-पत्र गुणात्मक प्रकृति का है। इसमें डिजिटल कनेक्टिविटी

[1]शोधार्थी, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश. ईमेल : roshangaur@gmail.com
[2]सह-आचार्य, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश. ईमेल : santosh.gautam@mangalayatan.edu.in

बढ़ने से डिजिटल मीडिया के अनेक प्लेटफार्म तैयार होने का विश्लेषण किया गया है, जिनका फायदा लोग उठा रहे हैं। इंटरनेट कनेक्टिविटी के कारण आज समानांतर अर्थव्यवस्था खड़ी हो गई है।

इंटरनेट की शुरुआत

20वीं सदी की सबसे बड़ी खोज हवाई जहाज और इंटरनेट ने विश्व में ऐसी क्रांति पैदा की कि आज पूरा विश्व एक 'ग्लोबल विलेज' बन गया है। इंटरनेट के अन्वेषण का श्रेय किसी एक वैज्ञानिक को नहीं दिया जा सकता। लेकिन निकोला टेस्ला को वायरलेस प्रणाली के विचार को जन्म देने और शुरू करने का श्रेय दिया जा सकता है। उसके बाद के वैज्ञानिकों ने इस कारवाँ को आगे बढ़ाया। इसमें पॉल आउटलेट और वन्नेवर बुश के नाम जुड़े। वर्ष 1960 में जेसीआर लिक्लीदर ने इस विचार को गति दी और 1969 में अमेरिका के डिफेंस डिपार्टमेंट ने एडवांस्ड रिसर्च प्रोजेक्ट एजेंसी नेटवर्क को फंडिंग की और फिर मामला आगे बढ़ा (एंड्रयूज, 2019)। लगभग 83 वर्षों के अथक प्रयास के बाद इंटरनेट कामयाब हो सका। आज सारी दुनिया वेब पर आ गई है। भारत में 1986 में पहली बार इंटरनेट आया, लेकिन बहुत ही सीमित स्तर पर इसकी शुरुआत हुई। 1995 में विदेश संचार निगम लिमिटेड ने गेटवे स्थापित कर विदेशी कंपनियों के जरिये भारत में इंटरनेट को लोकप्रिय बनाया। इसके बाद बैंकिंग सिस्टम और अन्य सुविधाओं के लिए धीरे-धीरे इंटरनेट का इस्तेमाल होने लगा (ईटी ऑनलाइन, 2020)। महज सरकारी संस्थाओं और कुछ साइबर कैफे से शुरू हुई इंटरनेट सेवा 25 वर्षों में देश के 85% हिस्से तक पहुँच गई हैं।

भारत में मीडिया और मनोरंजन उद्योग

मीडिया और मनोरंजन क्षेत्र में टेलीविजन, फिल्म, आउट आफ होम, रेडियो, एनीमेशन, विजुअल इफेक्ट, संगीत, गेमिंग, डिजिटल विज्ञापन, लाइव इवेंट, मनोरंजन और प्रिंट शामिल हैं। भारत में मीडिया और मनोरंजन उद्योग बहुत तेजी से फैल रहा है। भारतीय मीडिया और मनोरंजन क्षेत्र 2023 में 8% की दर से बढ़कर 2.3 ट्रिलियन रुपये पर पहुँच गया (फिक्की, 2024)। डिजिटल और ऑनलाइन गेमिंग सहित नया मीडिया दौड़ में सबसे आगे है। इसने 1220 करोड़ रुपये का योगदान दिया। परिणामस्वरूप मीडिया और मनोरंजन क्षेत्र में इसका योगदान 2019 में 20% से बढ़कर 2023 में 38% हो गया। एक समय भारत में परंपरागत मीडिया यानी आउटडोर मीडिया और प्रिंट मीडिया ही अस्तित्व में था, लेकिन उसके बाद इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आने से टीवी उद्योग ने जबरदस्त छलाँग लगाई और इंटरनेट क्रांति के बाद परंपरागत मीडिया पीछे छूट गया है। सरकारी संस्था इन्वेस्ट इंडिया के आँकड़ों के मुताबिक मीडिया और मनोरंजन उद्योग में परंपरागत मीडिया, अन्य प्रिंट और टेलीविजन का हिस्सा 57%, न्यू मीडिया की भागीदारी बढ़कर 38% और ई-कॉमर्स विज्ञापन की हिस्सेदारी बढ़कर 15% हो गई है। विश्वभर में गेमिंग इंडस्ट्री सबसे ज्यादा रेवेन्यू कमा रही है। भारत में भी गेमिंग इंडस्ट्री 1.6 बिलियन डॉलर की है। इसमें ऑनलाइन गेमिंग 500 मिलियन डॉलर की है, जो करीबन 21% की दर से बढ़ रहा है। इन्वेस्ट इंडिया के मुताबिक भारत में लोग अपने कुल समय में से 78% समय मोबाइल पर व्यतीत कर रहे हैं। यानी वे सोशल मीडिया पर फिल्मों से लेकर मनोरंजन, समाचार, खेल आदि देख रहे हैं (फिक्की, 2024)।

55% विज्ञापन डिजिटल मीडिया के हिस्से में

यह इंटरनेट और स्मार्टफोन की ताकत है कि भारत का विज्ञापन बाजार बहुत तेजी से छलाँग मार रहा है। भारत की आर्थिक प्रगति के साथ ही बाजारवाद भी बहुत तेजी से पनप रहा है। भारत में 2023 तक 93,166 करोड़ रुपये का विज्ञापन बाजार था, जो 2025 में बढ़कर 1,12,000 करोड रुपये का हो जाएगा। यह वृद्धि दर 9.86% है (देन्त्सू इंडिया एंड एक्सचेंज4मीडिया, 2024)। इंटरनेट घर-घर पहुँचने के कारण विज्ञापनदाताओं को भी लगता है कि विज्ञापनों को डिजिटल मीडिया के जरिये प्रसारित किया जाए। 2023 में भारत में डिजिटल मीडिया में विज्ञापन का प्रतिशत 23.49 प्रतिशत था। देश का कुल 40,000 करोड़ रुपये का विज्ञापन डिजिटल मीडिया को गया। 2024 में डिजिटल मीडिया का हिस्सा बढ़कर 50% हुआ और अनुमान है कि 2025 तक यह बढ़कर 62,045 करोड़ रुपये हो जाएगा। यानी कुल विज्ञापनों का 55% हिस्सा डिजिटल मीडिया के हिस्से में चला जाएगा। इसके बाद 28% टीवी को और प्रिंट का हिस्सा मात्र 18% रह जाएगा। डिजिटल मीडिया के अंदर भी ऑनलाइन वीडियो और सोशल मीडिया सेगमेंट में सबसे ज्यादा विज्ञापन दिया जा रहा है। ऑनलाइन वीडियो को 11,363 करोड़ रुपये और सोशल मीडिया को 11,962 करोड़ रुपये का विज्ञापन मिला। डिस्प्ले बैनर विज्ञापन 6579 करोड़ रुपये और पेडसर्च के रूप में 9419 करोड़ रुपये का विज्ञापन जारी किया गया। एफएमसीजी ने सबसे अधिक 31,428 करोड़ रुपये, इसके बाद ई-कॉमर्स कंपनियों ने 12,830 करोड़ रुपये और फिर उपभोक्ता वस्तुओं के लिए 5540 करोड़ रुपये विज्ञापन के रूप में खर्च किए (देन्त्सू इंडिया एंड एक्सचेंज4मीडिया, 2024)।

सबसे ज्यादा विज्ञापन गूगल को

दुनिया की प्रतिष्ठित आईटी कंपनी गूगल ने विज्ञापन की एक नई प्रणाली तैयार की है। उसने यूट्यूब चैनल गूगल मैप ब्लॉक वेबसाइट जैसी सेवाएँ उपलब्ध कराईं, लोगों को अपने साथ जोड़ा और फिर विज्ञापनदाताओं से विज्ञापन लेकर उपभोक्ताओं के साथ शेयर किया। इसका नतीजा यह है कि केवल भारत में ही देखें तो गूगल का विज्ञापन का आँकड़ा 2023 में 28,000 करोड़ के पार चला गया, यानी गूगल को भारत से 12.49 प्रतिशत विज्ञापन मिला और इसमें लगातार वृद्धि हो रही है (फारूकी, 2024)। इसके बाद फेसबुक ऑनलाइन इंडिया सर्विस को 18,308 करोड़ रुपये का विज्ञापन मिला।

संचार क्रांति का लाभ

सूचना प्रौद्योगिकी के प्रसार के कारण परंपरागत मीडिया यानी समाचार पत्र, पत्रिका और टीवी चैनल सभी को डिजिटल रूप में आना पड़ा। अखबारों और टेलीविजन चैनलों को डिजिटल माध्यम से ज्यादा दर्शक और विज्ञापन मिल रहे हैं। आज मार्केट में वही जिंदा बचा है, जो डिजिटल स्वरूप में आ गया। जिन समाचार पत्रों ने डिजिटल फॉर्म नहीं अपनाया, वे उसी तरह बर्बाद हो गए, जिस तरह कोडक फोटो फिल्म डिजिटलीकरण के कारण खत्म हो चुकी है। इंटरनेट के माध्यम से रेवेन्यू कमाने के कुछ माध्यम बेहद लोकप्रिय बने। इनमें सोशल मीडिया सबसे आगे रहा।

यूट्यूब : राजस्व कमाई में सबसे आगे

सोशल मीडिया में भी यूट्यूब ने बाजी मारी और उसने सबसे ज्यादा रेवेन्यू कमाया और लोगों को भी राजस्व कमाने का अवसर दिया। आज दुनिया भर में बड़े-बड़े लोग यूट्यूब पर अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं और करोड़ों रुपये की आमदनी कर रहे हैं। गूगल को देखकर मेटा ने भी फेसबुक को मोनेटाइज कर दिया। आज इंस्टाग्राम मोनेटाइज नहीं है, लेकिन इंस्टाग्राम के माध्यम से लोग करोड़ों रुपये कमा रहे हैं। यूट्यूब पर कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्ति और संस्थाएँ हैं, जिनके सब्सक्राइबर लाखों-करोड़ों में है। सबसे पहला नाम मिस्टर बीस्ट का आता है, उनके 315 मिलियन सब्सक्राइबर हैं। उनकी कमाई 700 मिलियन प्रति वर्ष है। इसके बाद टी-सीरीज का नंबर आता है, जिसके 273 मिलियन सब्सक्राइबर, सेट इंडिया के 177 और सोनी सब के 95 मिलियन सब्सक्राइबर हैं (सोशल ब्लेड, 2024)। भारत में यूट्यूब उपयोगकर्ताओं की संख्या 2024 में 222.2 मिलियन थी, जो 34.88 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। भारत में 2029 में यूट्यूब उपयोगकर्ता 859.26 मिलियन तक पहुँचने का अनुमान है (स्टैटिस्टा, 18 मार्च, 2024)।

भारत में व्यक्तिगत यूट्यूबरों की बात करें तो सौरभ जोशी, अजीत अंजुम, हिमिश मदान, डॉ. विवेक बिंद्रा, संदीप माहेश्वरी, अंकुर वारिकू, भुवन बाम, अमित भड़ाना, करीमन, निशा मधुलिका, गौरव चौधरी, अमित शर्मा, आशीष चंचलानी, खान सर, ध्रुव राठी, एलविश, राज शमानी, शिवम मालिक जैसे काफी यूट्यूबर हैं, जो लाखों-करोड़ों में लोगों तक पहुँच रहे हैं और लाखों रुपये महीना रेवेन्यू पैदा कर रहे हैं। भारत में कुल 8 करोड़ यूट्यूबर हैं।

फेसबुक/इंस्टाग्राम

भारत में सोशल मीडिया क्षेत्र में सबसे अधिक 62.55 प्रतिशत लोग फेसबुक इस्तेमाल करते हैं और फिर 28% लोग इंस्टाग्राम का उपयोग करते हैं। यूट्यूब को मात्र 6.59 प्रतिशत लोग देख रहे हैं, लेकिन यूट्यूब की पॉलिसी के कारण यूट्यूब इस्तेमाल करने वाले लोग ज्यादा कमा रहे हैं, जबकि फेसबुक और इंस्टाग्राम पर देर से मोनेटाइजेशन होने के कारण रेवेन्यू आज भी कम है। इंस्टाग्राम पर ब्रांड प्रमोशन और ई-कॉमर्स के जरिये लोग रेवेन्यू जेनरेट कर रहे हैं।

ब्लॉगिंग

गूगल ने भारत में रिवेन्यू जेनरेशन का सबसे पहला तरीका ब्लॉगिंग शुरू किया। भारत के युवा, जो नौकरी तलाश कर रहे थे, ब्लागिंग में गए और वहाँ से लाखों रुपये महीना कमाने लगे। ब्लागिंग में एडसेंस के जरिये पैसा कमा सकते हैं, लेकिन इसके साथ ही ब्रांड प्रमोशन, गेस्ट आर्टिकल, डायरेक्ट एडवरटाइजमेंट लेकर भी पैसा कमाया जाता है। ब्लागिंग में सबसे लोकप्रिय एफिलिएट मार्केटिंग है। ब्लॉगर किसी कंपनी का सामान बेचने के लिए उसका एफिलिएट मार्केटर बनता है और अपनी वेबसाइट पर विज्ञापन या प्रमोशन करके कमीशन प्राप्त करता है (एएचआरइएफ, 2024)। भारत में ब्लॉगिंग की शुरुआत करने वाले अमित अग्रवाल 60,000 डॉलर प्रतिमाह कमाते हैं। इनके अलावा हर्ष अग्रवाल, श्रद्धा शर्मा, मालिनी अग्रवाल, फैजल फारूकी, श्रीनिवास तामड़ा, वरुण कृष्णा, आशीष सिंह, अमित गोस्वामी, प्रीतम नगराले, कुशाल, सतीश कुशवाहा, सद्दाम कासिम, पवन अग्रवाल के नाम ब्लॉगिंग क्षेत्र में बड़े सम्मान से लिए जाते हैं।

ऑनलाइन कोचिंग

इंटरनेट का अगर सबसे ज्यादा किसी ने फायदा उठाया है तो उसमें ऑनलाइन कोचिंग का नाम आता है। कोविड काल के दौरान जब स्कूल-कॉलेज बंद हो गए थे तो कोचिंग सेंटरों ने ऑनलाइन कोचिंग शुरू कर दी। इनकी देखा-देखी विश्वविद्यालय और स्कूलों ने भी ऑनलाइन क्लास लेनी शुरू कर दी। बच्चों को होमवर्क वगैरह ऑनलाइन मिलने लगा। ऑनलाइन कोचिंग का बूम इतना जबरदस्त था कि एक छोटा-सा कोचिंग सेंटर 'फिजिक्स वाला' कोविड लॉकडाउन के बाद 8000 करोड़ रुपये की कंपनी बन गया (अलाइड मार्किट रिसर्च, 2023)। खान सर की ऑनलाइन कोचिंग बहुत प्रसिद्ध है। कुछ चर्चित चेहरे हैं, जिन्होंने ऑनलाइन कोचिंग में नाम कमाया है। इनमें राजीव तलरेजा, सिद्धार्थ राजशेखर, ईश्वर सुंदरम और सौरभ भटनागर शामिल हैं। वर्तमान में ऑनलाइन कोचिंग सबसे अच्छा बिजनेस है, क्योंकि इसमें कम संसाधनों में आप कोचिंग कर सकते हैं। आजकल डॉक्टर, इंजीनियर, टीचर, डांसर, म्यूजिशियन, फिटनेस, योगाचार्य, सभी ऑनलाइन कोचिंग दे रहे हैं। ऑनलाइन कोचिंग सेंटर रातोंरात अमीर बन गए हैं।

भविष्य के लिए एआई

परिवर्तन सृजन की जननी है। ओपन एआई ने विश्व में कृत्रिम मेधा की क्रांति की। कृत्रिम मेधा का बाजार 456 बिलियन डॉलर का हो गया है। 2032 में एआई का बाजार बढ़कर 2700 बिलियन डॉलर हो जाएगा (एआईपीआरएम, 2024)। आज गूगल जेमिनी, मेटा एआई, अमेजॉन और ओपन एआई के बीच बेहतर एआई के सृजन की होड़ मची है। टेस्ला के अलोन मस्क ने अपने को इस दौड़ से अलग रखा है। इस बदलाव में जो शामिल नहीं हुआ वह पीछे छूट गया। जिन लोगों ने इंटरनेट को स्वीकार किया, वे फल-फूल रहे हैं और जो लोग बदलाव स्वीकार नहीं कर पाए, वे कंपनियाँ बर्बाद हो गई। इंटरनेट के सुलभ होने के बाद सबसे पहले वेबसाइट और ब्लॉग का युग आया, जिसमें अनेक ब्लॉगर करोड़पति हो गए। जियो रिलायंस ने संचार की इस क्रांति में एक नई क्रांति की और लोगों को मुफ्त में डाटा उपलब्ध करा दिया। इससे इंटरनेट आदमी की पहुँच में आ गया। बहुत सारे लोग अपना समय मोबाइल फोन पर गँवाते चले गए, लेकिन कुछ लोग ऐसे भी रहे जिन्होंने इस अवसर का फायदा उठाया और अपना साम्राज्य खड़ा कर दिया। यह समय कृत्रिम मेधा यानी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का है। जो व्यक्ति इस वक्त का लाभ उठा लेगा, आने वाले समय में ताज उसी के सिर होगा।

कंटेंट क्रिएशन

बिल गेट्स ने 1996 में कहा था कि 'कंटेंट इज द किंग'। उस वक्त लोगों ने गंभीरता से नहीं लिया, लेकिन आज वाकई कंटेंट क्रिएटर राजा बन गया है। वीडियो, ऑडियो, स्क्रिप्ट, एडवरटाइजमेंट, ग्राफिक डिजाइन या जिस हुनर में जो मास्टर है, वह उसी में ही नाम कमा रहा है। यूट्यूब, ब्लॉग, इंस्टाग्राम, फेसबुक, लिंक्डइन ने कंटेंट क्रिएटर के लिए अपार संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। आज कृत्रिम मेधा एआई के युग में कंटेंट

राइटिंग का काम एआई कर रहा है। कंटेंट राइटिंग का बाजार 6.10 % की दर से आगे बढ़ रहा है और इसका आकार 412 बिलियन डॉलर तक पहुँच जाएगा (बाली, 2024)। इसका मतलब यह नहीं है कि सब काम एआई ही करेगा, बल्कि लेखक एआई की मदद से ज्यादा अच्छा और ज्यादा तेजी से कंटेंट राइटिंग कर सकता है। इस काम में ओपन एआई, गूगल जेमिनी, मर्लिन कंटेंट क्रिएटरों की मदद कर रहे हैं। एआई की मदद से वीडियो बनाना, वीडियो एडिट करना, ब्लॉगिंग करना, ब्लॉग लिखना बेहद आसान हो गया है।

वेबसाइट, ब्लॉग, ग्राफिक डिजाइनिंग

वेबसाइट और ब्लागिंग का मार्केट 2023 में 1.83 बिलियन डॉलर था, जो 2030 तक बढ़कर 3.31 बिलियन डॉलर हो जाएगा। यह 7% सीजीपीआर की दर से बढ़ रहा है। हमारे देश में लगभग 85 करोड़ इंटरनेट यूजर हैं और 2030 तक इनकी संख्या 130 करोड़ से ऊपर हो जाएगी। इसका मतलब है कि अभी हमारे देश में इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ेगी। इसलिए लोग वेबसाइट और ब्लॉग पर कंटेंट ढूँढ़ेंगे। एआई की मदद से वेबसाइट या ब्लॉग बनाए जा सकते हैं। दूसरों के लिए भी वेबसाइट या ब्लॉग बना सकते हैं। डोमेन और होस्टिंग सेवा उपलब्ध कराने वाली कंपनियों जैसे कि होस्टिंगर अब एआई की मदद से वेबसाइट बनाने का अवसर दे रही है (एएचआरइएफ, 2024)। ग्राफिक डिजाइन का बाजार बहुत तेजी से बढ़ रहा है और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने इस मार्केट में चार चाँद लगा दिए हैं। बाजार में ऐसे एप्लीकेशन और एआई टूल आ गए हैं, जिनसे कुछ ही मिनट में बेहतरीन ग्राफिक तैयार किया जा सकता है। एक अनुमान है कि 2032 तक ग्राफिक डिजाइनिंग का मार्केट 83 बिलियन डॉलर हो जाएगा। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की मदद से बहुत सारे लोग डिजिटल प्रोडक्ट तैयार कर रहे हैं और बहुत अच्छी कमाई कर रहे हैं।

ई-बुक और संगीत उद्योग

डिजिटल मार्केट और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने ई-बुक का बहुत बड़ा बाजार खड़ा कर दिया है। एक समय किंडल इलेक्ट्रॉनिक बुक जब बाजार में उतरी थी तो सब भौचक्के रह गए थे और आज किंडल से भी आसान एप्लीकेशन आ गए हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के जरिये बुक राइटिंग की जा सकती है और इंटरनेट पर ही उसे बेचा जा सकता है। अब लोग इंटरनेट पर किंडल को नहीं, ई-बुक ढूँढ़ते हैं। एक अनुमान लगाया गया है कि 2027 तक ई-बुक उपभोक्ताओं की संख्या बढ़कर एक बिलियन हो जाएगी और यह बाजार 32 बिलियन डॉलर का हो जाएगा (स्टैटिस्टा, 2024)। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने संगीत उद्योग में एक नई क्रांति पैदा कर दी है। ऐसे टूल आ गए हैं, जिसमें न कवि चाहिए न संगीतकार की जरूरत है, बस आपको एप्लीकेशन को कमांड देना है और वह आपके लिए गीत भी लिखेगा और यूनीक संगीत भी तैयार कर देगा। संगीत भी वैसा, जैसा आप उसे कमांड देंगे। आपके मूड के हिसाब से गीत तैयार हो जाएगा। फिल्म इंडस्ट्री के संगीतकार भी एआई का इस्तेमाल कर अपने संगीत में वैल्यू ऐड कर रहे हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस संगीत उद्योग का आकार 2027 तक बढ़कर एक बिलियन डॉलर हो जाएगा। यह 41% वार्षिक वृद्धि दर के हिसाब से बढ़ रहा है। कवि नाम का एक लड़का एआई से म्यूजिक बनाकर अब तक 5 करोड़ रुपये कमा चुका है (मदान, 2024)।

ई-कॉमर्स और ड्राप शिपिंग

जब भी हम ई-कॉमर्स का नाम सुनते हैं तो जेहन में फ्लिपकार्ट, मिंत्रा और अमेजॉन जैसे प्लेटफार्म के नाम याद आ जाते हैं। लेकिन इंटरनेट और एआई की क्रांति ने लोगों को अपने ई-कॉमर्स प्लेटफार्म तैयार करने का अवसर दे दिया है। आज बहुत सारे युवा डिजिटल प्रोडक्ट या फिजिकल प्रोडक्ट के लिए अपना ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म और स्टोर तैयार कर रहे हैं और अच्छा-खासा व्यवसाय कर रहे हैं। आईटी सेवा उपलब्ध कराने वाली कंपनी 'सेमरूश' का अनुमान है कि ई-कॉमर्स का आकर 112 बिलियन डॉलर का है। 2029 तक इसका आकार बढ़कर $300 बिलियन डॉलर हो जाएगा (मदान, 2024))। ड्रॉप शिपिंग ई-कॉमर्स का ही एक रूप है। ड्रॉप शिपिंग में एक व्यक्ति किसी कंपनी का सामान उपभोक्ताओं को बेचता है और वह बीच में कमीशन ले लेता है। न उसे कोई प्रोडक्ट बनाने की जरूरत है और न ही स्टोरेज की जरूरत है। इंटरनेट ने उसे यह सुविधा उपलब्ध करा दी है और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने ड्रॉप शिपिंग के बाजार को बहुत तेजी से बढ़ा दिया है। सुधांशु द्विवेदी, याशिका ड्राप शिपिंग से पैसे कमा रहे हैं।

ऑनलाइन कोचिंग में एआई

परंपरागत और ऑफलाइन कोचिंग का जमाना अब इतिहास बनने वाला है। आज डिजिटल माध्यम से कोचिंग करने वालों की बाढ़ आ गई है। यदि किसी व्यक्ति के अंदर थोड़ा-सा भी टैलेंट है तो वह अपने ऑडियंस को कुछ-न-कुछ सिखाकर पैसे कमा रहा है। बिजनेस सीखने वालों में देव गढ़वी, सिद्धार्थ राजशेखर, विनय असधीर जैसे बड़े कोच ऑनलाइन कोचिंग के गुरु एआई से कोचिंग कराकर खुद भी करोड़ों की आय कमा रहे हैं और अपने शिष्यों को भी पैसा कमाने का मौका दे रहे हैं। कोविड लॉकडाउन के बाद ऑफलाइन कोचिंग सेंटर भी ऑनलाइन हो गए हैं। दृष्टि आईएएस, फिजिक्स वाला, खान सर समेत अनेक लोग ऑनलाइन कोचिंग में शामिल हो गए हैं। इनके अलावा यूट्यूब चैनल बनाना, इंस्टाग्राम पर सब्सक्राइबर बढ़ाना, डिजिटल मार्केटिंग करना, मेडिकल एडवाइस देना, योग सिखाना, फिटनेस सिखाना न जाने क्या-क्या सिखा रहे हैं। आजकल सब ऑनलाइन सिखा रहे हैं और अच्छा-खासा पैसा कमा रहे हैं। अलायड मार्किट रिसर्च की रिपोर्ट के अनुसार ग्लोबल कोचिंग मार्केट का आकार 2032 तक बढ़कर 11.7 बिलियन डॉलर हो जाएगा। यह क्षेत्र 14% सीजीएआर की दर से बढ़ रहा है (अलाइड मार्किट रिसर्च, 2023)।

एफिलिएट मार्केटिंग

डिजिटल साक्षरता के कारण एफिलिएट मार्केटिंग में भारी उछाल आया है। भारत में कंपनियाँ अपनी डिजिटल मार्केटिंग का 10-12 % खर्च एफिलिएट मार्केटिंग पर कर रही हैं। भारत में 2023 में एफिलिएट मार्केटिंग का आकार 331 मिलियन डॉलर था, जो 2025 में बढ़कर 420 मिलियन डॉलर हो जाएगा (इंडिया एफिलिएट मार्केटिंग, 2023), जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में 57% और कनाडा में 10% खरीद-फरोख्त एफिलिएट मार्केटिंग से होती है। भारत में भी एफिलिएट मार्केटिंग बहुत तेजी से बढ़ रहा है। अमरीका की तरह ही भारत में भी ई-कॉमर्स और ड्रॉप शिपिंग का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। भारत में एफिलिएट मार्केटिंग 96 मिलियन

डॉलर का है। यदि कोई वेबसाइट ब्लॉग यूट्यूब या फेसबुक पर एक्टिव है, तो वह किसी प्रोडक्ट का एफिलिएट लिंक लेकर उसे अपने ऑडियंस को खरीदने के लिए कह सकता है और वह बीच में कमीशन कमाता है। कुछ वेबसाइटें ऐसी भी हैं, जो केवल एफिलिएट मार्केटिंग के लिए बनी हैं। जैसे 'क्लिकबैंक', 'वॉरियरप्लस' वेबसाइटें एफिलिएट मार्केटिंग के लिए प्लेटफार्म उपलब्ध कराती हैं। भारत में जिस तरह से इनफ्लुएंसरों की संख्या बढ़ रही है, उससे एफिलिएट मार्केटिंग भी बहुत तेजी से बढ़ रहा है।

इनफ्लुएंसर

इंटरनेट की सहूलियत के कारण आज इनफ्लुएंसर की एक नई जमात तैयार हो गई है। भारत में 2022 तक इनफ्लुएंसर मार्केटिंग उद्योग का मूल्य 12 बिलियन भारतीय रुपये से अधिक था। यह उद्योग 25 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रहा है। अनुमान है कि 2027 तक इस उद्योग का बाजार मूल्य 105 अरब भारतीय रुपये से अधिक हो जाएगा (स्टैटिस्टा, 2024)। अगर किसी व्यक्ति के सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म यूट्यूब, लिंकडइन, फेसबुक, इंस्टाग्राम आदि पर अच्छे-खासे सब्सक्राइबर या फॉलोअर हैं, तो उन्हें अच्छे-खासे ब्रांड डील, एफिलिएट मार्केटिंग, मोटिवेशनल स्पीच और कॉलेज आदि में लेक्चर देने का मौका मिल जाता है। यहाँ से वे अच्छा-खासा पैसा कमा रहे हैं। भारत का इनफ्लुएंसर मार्केट 2023 में 1900 करोड़ रुपये का था, जो 2026 तक बढ़कर 3400 करोड़ हो जाएगा (फिक्की, 2023)।

निष्कर्ष

फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री की मीडिया एंड एंटरटेनमेंट रिपोर्ट 2024 के अनुसार भारत में मीडिया और एंटरटेनमेंट सेक्टर 8 प्रतिशत की दर से विकास कर रहा है। कोविड आपदा के बाद न्यू मीडिया का बहुत तेजी से उदय हुआ और डिजिटल की दुनिया आज लगभग 2400 करोड़ रुपये की हो गई है। सस्ता डाटा और बढ़ती तकनीक ने आम आदमी को भी डिजिटल माध्यमों का उपयोग कर रोजगार सृजन का अवसर दे दिया है। जरा-सी भी समझ रखने वाला व्यक्ति आज बेरोजगार नहीं रह सकता है। वह डिजिटल माध्यम से छोटे से लेकर एक बड़ा साम्राज्य खड़ा कर सकता है। यह ऐसा समय आया है जो उज्ज्वल भविष्य की तरफ देख रहा है और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने अपार संभावनाएँ खोल दी हैं। इस वक्त इस दौड़ में यदि कोई पीछे रह गया तो उसे डूबने से कोई नहीं बचा सकता। यह वक्त भविष्य की तरफ देखने का है। एक नए युग में प्रवेश करने का है।

संदर्भ

अलाइड मार्किट रिसर्च. (2023). ऑनलाइन कोचिंग मार्किट साइज, शेयर, कॉम्पिटिशन, सिचुएशन एंड ट्रेंड एनालिसिस रिपोर्ट एंड इंडस्ट्री फोरकास्ट, 2023-2032 https://www.alliedmarketresearch.com/online-coaching-market-A06528 से पुन:प्राप्त.

इंटरनेशनल टेलिकॉम यूनियन. (2022). ग्लोबल कनेक्टिविटी रिपोर्ट 2022. https://www.itu.int/dms_pub/itu-d/opb/ind/D-IND-GLOBAL.01-2022-SUM-PDF-E.pdf से पुन : प्राप्त.

इंडिया एफिलिएट मार्केटिंग. (2023) https://cdn.sites.admitad.com/www.admitad.com/2023/10/affiliate-marketing-report.pdf से पुन:प्राप्त.

ईटी ऑनलाइन. (2020, 17 अगस्त). इंटरनेट टर्न 25 इयर्स इन इंडिया https://economictimes.indiatimes.com/tech/internet/the-internet-turns-25-in-india-a-timeline/the-1990s/slideshow/77589559.cms से पुन:प्राप्त.

एआईपीआरएम. (2024). https://www.aiprm.com/ai-statistics/ से पुन:प्राप्त.

एएचआरइएफस. (2024). ब्लॉगिंग स्टैटिक्स. Ahrefs. https://ahrefs.com/blog/blogging-statistics/ से पुन:प्राप्त.

एंड्रूयूज, ई. (2019, 28 अक्टूबर). हु इनवेंटेड इंटरनेट? हिस्ट्री. https://www.history.com/news/who-invented-the-internet से पुन:प्राप्त.

देन्त्सू इंडिया एंड एक्सचेंज4मीडिया. (2024, 8 फरवरी). https://www.dentsu.com/sg/en/insights/digital-advertising-report-dentsu-india-e4m से पुन:प्राप्त.

ट्राई. (2024). प्रेस रिलीज नं. 54/2024. https://trai.gov.in/sites/default/files/PR_No.54of2024_0.pdf से पुन:प्राप्त.

फारूकी, जे. (2024, 9 फरवरी). गूगल इंडिया ग्रॉस एड रेवेन्यू ग्रो 12.49% टू 28,000. द इकोनॉमिक टाइम्स. https://economictimes.indiatimes.com/tech/technology/google-indias-gross-ad-revenue-grows-12-49-to-rs-28000-crore/articleshow/106873471.cms से पुन:प्राप्त.

फिक्की. (2024). मीडिया एंड इंटरटेनमेंट सेक्टर रिपोर्ट 2024. https://ficci.in/api/sector_details/13 से पुन:प्राप्त.

बाली, वी. (2024). राइटिंग इंस्ट्रूमेंटस मार्किट रिपोर्ट 2024 (वर्ल्ड एडिशन). Cognitive Market Research. https://www.cognitivemarketresearch.com/writing-instruments-market-report से पुन:प्राप्त.

मदान, एच. (2024). 12 इनकम आईडिया टू अर्न रूपी 1 लाख पर मंथ फ्रॉम एआई I बाय हिमिश मदान https://www.youtube.com/watch?v=3lKiXdtPEWI से पुन:प्राप्त.

सोशल ब्लेड (2024). टॉप यूट्यूबर. https://socialblade.com/youtube 2024 से पुन:प्राप्त.

स्टैटिस्टा. (2024). ई-बुक्स–वर्ल्ड वाइड | स्टैटिस्टा मार्केट. 2024, https://www.statista.com/outlook/amo/media/books/ebooks/worldwide से पुन:प्राप्त.

स्टैटिस्टा. (2024). यूट्यूब यूजर नंबर इन इंडिया 2020-29. https://www.statista.com/forecasts/1146150/youtube-users-in-india#:~:text=The%20number%20of%20Youtube%20users,a%20new%20peak%20in%202029. से पुन:प्राप्त.

स्टैटिस्टा. (2024). वैल्यू ऑफ इनफ्लुएंसर मार्केटिंग इंडस्ट्री इन इंडिया फ्रॉम 2021 टू 2022, विद प्रोजेक्शन अंटिल 2026. https://www.statista.com/statistics/1294803/india-influencer-marketing-industry-value से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 72-76-72, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

सोशल मीडिया के माध्यम से युवाओं में गलत सूचना के प्रभाव को कम करने में मीडिया साक्षरता की भूमिका

पूजा[1] और डॉ. अर्चना कुमारी[2]

सारांश

समाज में सूचनाओं का एक विस्तृत बाजार है, जिसमें यह पता कर पाना संभवतः कठिन हो जाता है कि कौन-सी सूचना गलत है और कौन-सी सही। इसलिए मीडिया साक्षरता वर्तमान की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक है। मीडिया साक्षरता व्यक्तियों को गलत सूचना की पहचान और सही सूचना के बारे में सूचित करने का कार्य करता है। गलत सूचनाओं को असुरक्षित संचार माना जाता है। इनके प्रसार से किसी व्यक्ति का जीवन भी प्रभावित हो सकता है। मीडिया साक्षरता के चलते गलत सूचनाओं का प्रसार कम होने की संभावना है। साथ ही, मीडिया साक्षर लोगों को मीडिया से जुड़ने के रचनात्मक अवसर प्राप्त होते हैं। 1960 के दशक में मार्शल मैकलुहान ने एक परिकल्पना करते हुए सुझाव दिया था कि लोगों में मीडिया के प्रति जागरूकता विकसित होने से उन्हें अधिक मानवीय रूप से कार्य करने में मदद मिलती है। मीडिया प्रौद्योगिकियों को पहचानने की क्षमता लोगों को इसका चयनात्मक, रणनीतिक उपयोग करने में सक्षम बनाती है। प्रस्तुत शोध में गलत सूचना के प्रभाव को कम करने के लिए मीडिया साक्षरता की भूमिका का अध्ययन किया गया है। शोध में मीडिया क्षेत्र के युवाओं में मीडिया साक्षरता की समझ और कौशल का पता लगाने का प्रयास है। डेटा संग्रह के लिए मात्रात्मक दृष्टिकोण में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। मीडिया साक्षरता में ऐसी पारदर्शिता समाहित है, जिससे दुनिया को देखने के तरीके को बदला जा सकता है। यह व्यक्ति को सूचना तक पहुँचने, विश्लेषण करने, मूल्यांकन करने और संवाद करने की क्षमता प्रदान करता है। मीडिया साक्षरता की प्रमुख विशेषता जागरूकता का विकास है। शोध में संग्रहीत डेटा के आधार पर मीडिया की पढ़ाई कर रहे युवा और मीडिया जगत् से जुड़े युवाओं का मानना है कि मीडिया साक्षरता से गलत सूचनाओं के प्रभाव को कम किया जा सकता है। सोशल मीडिया के माध्यम से गलत सूचनाएँ तेजी से फैल रही हैं। प्रस्तुत शोध मीडिया साक्षरता की समझ को बढ़ावा देने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

संकेत शब्द : गलत सूचना, मीडिया साक्षरता, सोशल मीडिया, युवा

प्रस्तावना

मीडिया समाज को आकार देने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। ऐसे में, विभिन्न प्रकार से मीडिया की समझ, मूल्यांकन और उपयोग करने की कला जानना समाज के लिए आवश्यक है। कोविड महामारी के दारौन विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का व्यापक रूप से प्रसार हुआ, जिससे सही और गलत सूचना में भेद करना मुश्किल हो गया। गलत सूचना और लोगों में भ्रामक जानकारी के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए उस समय विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने मिथबस्टर्स वेबसाइट बनाई, जहाँ बताया गया कि 'विटामिन सी' लेना कोरोना वायरस का इलाज नहीं है और उबला हुआ लहसुन का पानी पीने से कोरोना से बचाव नहीं होगा (होब्स,2021)। सूचना का प्रवाह तकनीक के विस्तार के साथ फलता-फूलता जा रहा है। अब जब कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी तकनीक लोगों की दिनचर्या में शामिल होने लगी है तो और भी सर्तकता के साथ सूचना को ग्रहण करने की जरूरत है। समस्या है कि लोगों को सही और गलत सूचना की जानकारी ही नहीं है। बिना किसी पड़ताल और जाँच के सोशल मीडिया पर एक संदेश फॉरवर्ड कर दिया जाता है। पहली आवश्यकता गलत सूचना को समझना है, जो इसके अँग्रेजी विस्तार से समझना आसान होगा। अँग्रेजी में गलत सूचना को मिसइनफोर्मेशन, डिसइनफोर्मेशन और मालइनफोर्मेशन कहा जाता है और इन सभी के अर्थ भिन्न होते हैं। मिसइनफोर्मेशन यानी ऐसी सूचना जो असत्य तो है, परंतु नुकसान की स्थिति उत्पन्न नहीं करती है। वहीं डिसइनफॉर्मेशन वह सूचना है, जिससे किसी उद्देश्य के साथ जानबूझकर नुकसान पहुँचाने के लिए फैलाया जा रहा है। वहीं मालइनफोर्मेशन का तात्पर्य ऐसी सत्य जानकारियों से है, जिनका उपयोग किसी को नुकसान पहुँचाने के लिए किया जाता है (शुक्ला, 2023)। सोशल मीडिया के माध्यम से इन सभी गलत सूचनाओं का उपयोग विशेष उद्देश्य से और अनजाने में हो रहा है। कुछ साइटें और संस्थान अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए डिसइनफॉर्मेशन को फैलाने का अनुचित कार्य करते हैं, जिससे लोगों को नुकसान तो होता ही है, लंबे समय तक इसका प्रभाव और डर भी बना रहता है।

डिजिटल उपकरण और प्रौद्योगिकियाँ मनुष्य जीवन और सामाजिक संबंधों के पहलुओं को आकार देती हैं। इसलिए मीडिया साक्षरता को पर्यावरण के रूप में मीडिया के अध्ययन के साथ जोड़ा जाता है और इसे कभी-कभी मीडिया पारिस्थितिकी कहा जाता है (हॉब्स,2021)। मीडिया के प्रति साक्षरता शब्द वह संपूर्ण परिभाषा है, जो गलत और भ्रामक सूचनाओं से बचने का एकमात्र उपाय है। यह एक अज्ञात भविष्य के लिए तैयार रहने में मदद कर सकती है। मीडिया साक्षरता विश्लेषण और मूल्यांकन की ऐसी क्षमता है, जिससे लोगों में मीडिया के सही उपयोग की समझ प्राप्त होती है। विद्यालय और महाविद्यालय ही नहीं, एक बड़े पैमाने पर पाठ्यक्रम में मीडिया साक्षरता को अनिवार्य रूप से शामिल करने की जरूरत है (डहेरिया व श्रीवास्तव, 2023)।

[1]शोधार्थी, सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय. नई दिल्ली. ईमेल : poojashaniya23@gmail.com
[2]एसोसिएट प्रोफेसर, सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली. ईमेल : archanaiimc@gmail.com

स्कूली शिक्षा की उम्र के बच्चे और युवा ऐसे समूह हैं, जो मीडिया के प्रभाव की ताकतों के लिए सबसे अधिक संवेदनशील हैं। परिस्थिति और परिवेश में उनकी विविधता की परवाह किए बिना, दुनिया के सभी कोनों के युवा आचरण, आकांक्षाओं और सांस्कृतिक उपभोग पैटर्न के मॉडल की पहचान साझा करते हैं जो विश्व मीडिया परिदृश्य द्वारा विकसित होती हैं (यूनेस्को,1999)। युवाओं को गलत सूचनाओं और भ्रामक संदेशों की पहचान करने के लिए साक्षरता पर ध्यान केंद्रित करना होगा। आईआईएम, रोहतक द्वारा 2023 में किए गए सर्वे में बताया गया कि भारतीय युवा औसतन 7 घंटे सोशल मीडिया पर समय बिता रहे हैं। युवा इंस्टाग्राम पर 32.27%, व्हाट्सएप पर 28.32%, स्नैपचैट पर 19.78% , फेसबुक पर 17.20% और अन्य प्लेटफॉर्मों पर 3.43% समय देते हैं। पिछले कुछ सालों में सोशल मीडिया की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि यह सरकार बना और बिगाड़ सकता है। सोशल मीडिया पर अराजकता को बढ़ावा देकर लोकतंत्र को कमजोर भी किया जा सकता है। इसे कंट्रोल करना संभव नहीं है (शुक्ला, 2023)।

सूचना का चयन करते समय सावधानी बरतनी आवश्यक है। किसी भी संदेश को बिना देखे फॉरवर्ड करना और वायरल खबरों को किसी भी जानकारी के बिना सच मानना खतरनाक साबित हो सकता है। मीडिया साक्षरता युवाओं की सूचना के विश्लेषण और उन तक सही पहुँच की क्षमता को मजबूत करती है। युवा नेतृत्व, स्वतंत्र, जिम्मेदार और आम सहमति बनाने के कौशल के अभ्यास से चुनौतियों से निपटने में सक्षम हो पाएँगे, जिससे वे एक लोकतांत्रिक समाज में भागीदारी सुनिश्चित करते हैं (हॉब्स, 2008)। इंटरनेट और प्रौद्योगिकी का बाजार बहुत बड़ा हो गया है। इसमें न कंटेट की कमी है और न ही उपभोक्ताओं की। कोई भी कुछ भी बिना किसी नियम और आज्ञा के पोस्ट कर सकता है। अंधविश्वास को बढ़ावा देने में भी डिजिटल प्लेटफॉर्मों की बड़ी भूमिका रही है। ऑनलॉइन प्लेटफॉर्म के अच्छे और बुरे पक्ष को डिजिटल साक्षरता और समाचार साक्षरता के माध्यम से देखा जा सकता है। साक्षरता और कौशल को बढ़ाकर किसी भी संदेश के बारे में धारणा बनाने से पहले तथ्यों की जाँच से दुष्प्रचार और गलत सूचना को कम किया जा सकता है (लूथफिया एवं अन्य, 2023)। मीडिया साक्षरता के महत्त्व को समझते हुए कहा जा सकता है कि यह केवल लोगों को मीडिया के प्रति साक्षर नहीं बनाती, अपितु लोकतंत्र के विकास, सामाजिक कल्याण, सांस्कृतिक भागीदारी और एक सक्रिय नागरिक के लिए भी महत्त्वपूर्ण है (कोल्टे, 2011)।

साहित्य समीक्षा

शुक्ला (2023) ने अपने शोध 'ट्विटर पर हैशटैग एक्टिविज्म और फेक न्यूज का अध्ययन' में कहा है कि तकनीकी का विस्तार बड़ी तेजी से हो रहा है, ऐसे में दुनिया पर इसके असर को समझना आवश्यक है। हैशटैग(#) जैसा तकनीक चिह्न अपनी बात को व्यवस्थित तरीके से कहने का नया साधन बन गया है। दिल्ली में हुए किसान आंदोलन का जिक्र करते हुए डॉ. शुक्ला ने कहा कि हैशटैग के जरिये ही उन्मादी विचारों को विस्तार दिया गया। एक्स (ट्विटर) के माध्यम से भ्रामक सामग्री का फैलना चिंतनीय है। भारत इंटरनेट के सबसे अधिक उपभोक्ताओं वाली सूची में पहले तीन देशों में शामिल है। भारत में एक विशाल इंटरनेट आबादी की उत्पत्ति के साथ फेक न्यूज कारोबार पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। शोधकर्ता के अनुसार, "सोशल मीडिया को सँभालना सीमाओं से परे होता जा रहा है। गलत सूचनाओं को समझना आज के दौर में सबसे बड़ा सबक है।" फेक न्यूज को समझने के लिए डिसइनफार्मेशन और मिसइनफार्मेशन के अंतर को जानना जरूरी है। निष्कर्ष में बताया है कि दुष्प्रचार की रोकथाम के लिए नीतियाँ निर्धारित करनी चाहिए, ताकि पारदर्शिता आ सके, साथ ही मौजूदा कानूनों और नीतियों की समीक्षा करने की जरूरत है।

डहेरिया व श्रीवास्तव ने 'छात्रों में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों के प्रति मीडिया साक्षरता का अध्ययन' शोध में बताया है कि सोशल मीडिया का छात्रों पर बुरा असर पड़ रहा है। यह एक गुणात्मक शोध है, जिसमें सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों के लिए विद्यार्थियों का व्यवहार और मीडिया साक्षरता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है। शोधकर्ता ने साक्षरता की आवश्यकता का जिक्र करते हुए कहा है कि बड़े पैमाने पर इस कार्य को करने की जरूरत है। विद्यार्थियों ने सर्वे में माना है कि सोशल मीडिया पर धोखाधड़ी होती है। छात्रों को इन प्लेटफार्मों का उपयोग कम और समय सीमा के भीतर ही करना चाहिए। सोशल मीडिया की प्रभावशीलता का मीडिया साक्षरता के प्रति योगदान प्रदर्शित नहीं हो रहा है, जो एक चिंतनीय विषय है।

लूथफिया एवं अन्य (2023) ने अपने शोध पत्र 'नेविगेटिंग द साइबर फ्रंटियर : यूथ कैपेबलिटीज टू कंफ्रंट डिस/मिसइंफॉर्मेशन विद डिजिटल लिटरेसी एंड डिजिटल सिक्योरिटी' में कहा है कि युवा डिजिटल मीडिया का इस्तेमाल तेजी से कर रहे हैं। युवाओं में डिजिटल साक्षरता, कंप्यूटर साक्षरता, सूचना साक्षरता की समझ भी है, परंतु उन्हें संचार साक्षरता को बढ़ाने की आवश्यकता है। गलत सूचना और दुष्प्रचार की समझ की कमी के कारण लोग आसानी से इन सूचनाओं से प्रभावित हो जाते हैं। शोध इंडोनेशिया के युवाओं पर आधारित है। वहाँ युवा मानते हैं कि इंटरनेट के माध्यम से गलत सूचना का प्रसार तेजी से हो रहा है। गलत सूचनाओं को नेविगेट करने के लिए फिल्टर, विश्सनीय स्रोत और डबल चेकिंग का इस्तेमाल किया जाता है।

रेनी हॉब्स (2021) ने अपनी पुस्तक 'मीडिया लिटरेसी इन एक्शन (क्वश्चिंग द मीडिया)' में पहले अध्याय 'व्हाट इज मीडिया लिटरेसी' में मीडिया साक्षरता पर विस्तार से प्रकाश डाला है। मीडिया साक्षरता दुनिया को देखने के तरीके को बदल देता है। मीडिया साक्षरता किसी भी संदेश तक पहुँचने, उसका विश्लेषण और मूल्यांकन करने की क्षमता है। कोरोना काल के बाद से इसकी आवश्यकता बढ़ गई है। उस समय गलत और भ्रामक संदेशों का व्यापक रूप से प्रसार हुआ। लेखक के अनुसार जैसे-जैसे संचार मीडिया और प्रौद्योगिकी में बदलाव होता है, वैसे ही मीडिया साक्षरता भी बदलती है। मीडिया साक्षरता सीखने और कई तरह के संदर्भों को समझने में प्रभावी रही है।

शोध प्रश्न

1. मीडिया साक्षरता के प्रभाव से किस प्रकार गलत सूचनाओं को कम किया जा सकता है?
2. युवा सोशल मीडिया पर प्रसारित गलत सूचनाओं का सामना कैसे करते हैं?
3. गलत सूचनाओं का युवाओं पर क्या असर पड़ता है?

4. सोशल मीडिया पर गलत सूचनाओं के प्रवाह से बचने के उपाय कौन-से हैं?

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. युवाओं में मीडिया साक्षरता की समझ का अध्ययन
2. युवाओं में गलत सूचना का प्रभाव कम करने में मीडिया साक्षरता की भूमिका का अध्ययन
3. सोशल मीडिया के माध्यम से युवाओं द्वारा प्रसारित गलत सूचना के प्रवाह की जाँच करना

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध प्राथमिक आँकड़ों के साथ किया गया एक मात्रात्मक शोध है, जिसमें भारत में मीडिया से संबंधित युवा छात्रों, मीडियाकर्मियों, शोधकर्ताओं और शिक्षाविदों आदि को शामिल किया गया है। शोध में 15-29 साल के युवाओं को ही चयनित किया गया है। समंक चयन करते समय गैर-संभाव्यता उद्देश्यपूर्ण, स्नोबॉल नमूनाकरण को अपनाया गया है। 17 प्रश्न वाली एक प्रश्नावली को उद्देश्य और शोध प्रश्नों के आधार पर तैयार किया गया है। शोध के लिए डेटा एकत्र करने के लिए 15 दिन का समय लिया गया है और इस दौरान 205 उत्तरदाताओं से प्रतिक्रिया प्राप्त हुई।

शोध सीमाएँ

मीडिया साक्षरता और गलत सूचना के प्रभाव को समझने के लिए इस शोध में केवल मीडिया के छात्रों, मीडियाकर्मियों, शोधकर्ताओं और शिक्षाविदों को शामिल किया गया है। साथ ही शोध में केवल 15-29 साल के युवा ही शामिल हैं। इससे यह निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है कि 29 साल से अधिक या 15 साल से कम उम्र के लोगों के लिए मीडिया साक्षरता और गलत सूचना का प्रभाव कैसा होता है। डेटा को गूगल फॉर्म के जरिये इकट्ठा किया गया है, जो विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के युवाओं को समान रूप से कवर नहीं करता। इससे निष्कर्ष क्षेत्रीय रूप से सीमित हो सकते हैं।

आँकड़ों की प्रस्तुति और विश्लेषण

शोध के दौरान डेटा संग्रहण में 45.8% युवकों, 54.2% युवतियों ने भागीदारी की, जिसमें 43.2% स्नातक, 48.7% परास्नातक, जबकि 8% पीएचडी युवा सर्वेक्षण में शामिल हुए। डिजिटल युग में प्रवेश करने के

आप मीडिया साक्षरता को कैसे परिभाषित करेंगे?
204 प्रतिक्रियाएँ

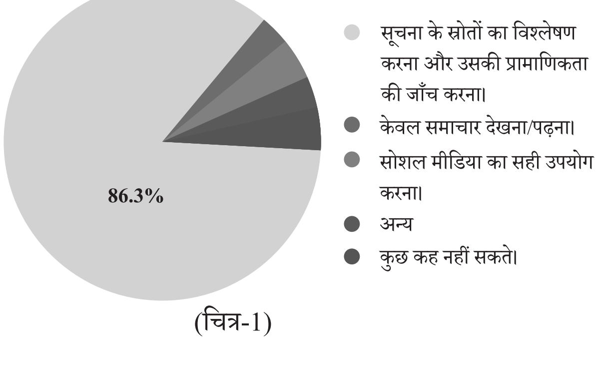

(चित्र-1)

बाद भी कहा जा सकता है कि अभी भी ऐसे युवा लोग हैं, जिन्हें मीडिया साक्षरता शब्द की जानकारी नहीं है। शोध में 93.1% उत्तरदाता मीडिया साक्षरता के बारे में अवगत थे, जबकि 6.9% उत्तरदाताओं को मीडिया साक्षरता की जानकारी नहीं थी। मीडिया साक्षरता के विषय की गंभीरता को देखते हुए कई संस्थानों के माध्यम से इस विषय पर कोर्स आदि कराए जाते हैं। 61.3% उत्तरदात्ताओं ने मीडिया साक्षरता से संबंधित कोर्स किया था और 38.7% युवाओं ने इससे संबंधित कोर्स नहीं किया था।

मीडिया साक्षरता को परिभाषित करने को लेकर अलग-अलग प्रतिक्रिया सामने आई। 86.3% युवाओं का मानना है कि सूचना के स्रोतों का विश्लेषण करना और उसकी प्रामाणिकता की जाँच करना ही मीडिया साक्षरता है। कुछ ने माना कि सोशल मीडिया का सही उपयोग एवं केवल समाचार/देखना ही मीडिया साक्षरता है। अधिकतर प्रतिभागियों का मानना है कि मीडिया साक्षरता उनकी शिक्षा और उनके जीवन के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। संग्रहीत डेटा के अनुसार 44.9% ही प्रतिभागी ऐसे हैं, जो हमेशा समाचार स्रोत की प्रामाणिकता की जाँच करते हैं। 31.2% अक्सर और 23.4% ऐसे हैं, जो कभी-कभी ही प्रामाणिकता पर ध्यान देते हैं। गलत सूचना से बचाव के प्रति सत्यापन के लिए विभिन्न स्रोतों का उपयोग करने पर अधिकतर प्रतिभागियों ने सहमति जताई है।

खबरों को पढ़ते समय आप निम्न से किसे अधिक विश्वसनीय मानते हैं?
204 प्रतिक्रियाएँ

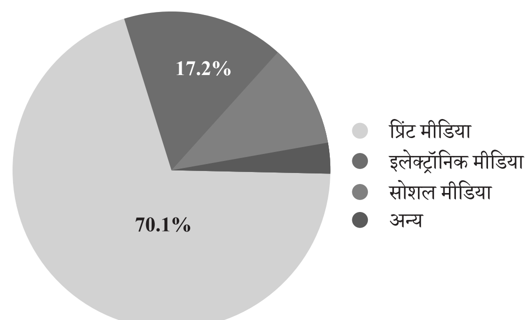

(चित्र-2)

किसी भी सूचना और ग्रहण करने के लिए लोगों की अपनी-अपनी विश्वसनीयता होती है। 70.1% युवा प्रिंट मीडिया को अत्यधिक विश्वसनीय मानते हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर 17.2 % और सोशल मीडिया पर बहुत कम केवल 10.3 % युवा भरोसा करते हैं।

क्या सोशल मीडिया के माध्यम से गलत सूचनाएँ फैलाई जाती हैं?
205 प्रतिक्रियाएँ

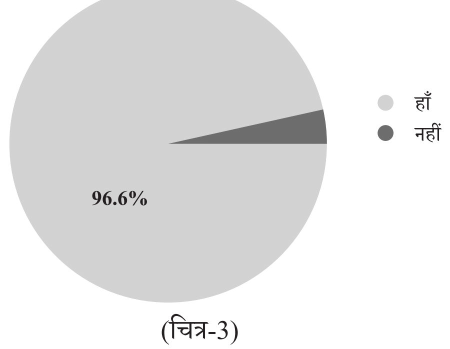

(चित्र-3)

सोशल मीडिया के द्वारा गलत सूचनाएँ फैलाई जाती हैं, इस सवाल पर सर्वसम्मति सामने आई है। 96.6% उत्तरदाताओं ने माना है कि सोशल मीडिया के माध्यम से गलत सूचनाओं को फैलाया जाता है (चित्र-3)।

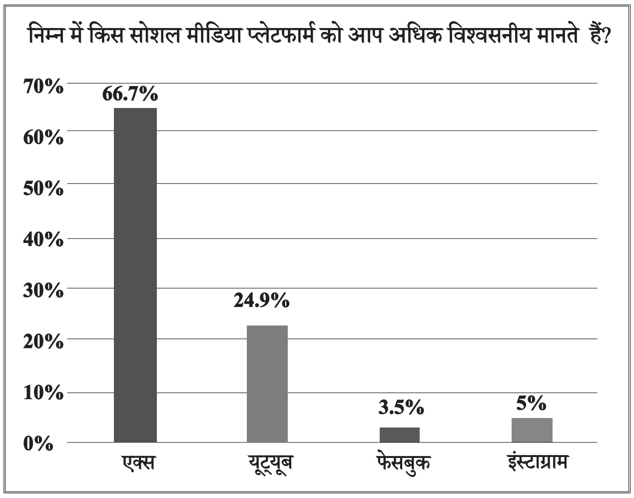

(चित्र-4)

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म एक्स, फेसबुक, इंस्टाग्राम और यूट्यूब की विश्वसनीयता की तुलना की जाए तो युवाओं ने एक्स को अत्यधिक विश्वसनीय माना और उसके बाद यूट्यूब, फेसबुक और इंस्टाग्राम को स्थान दिया है (चित्र-4)।

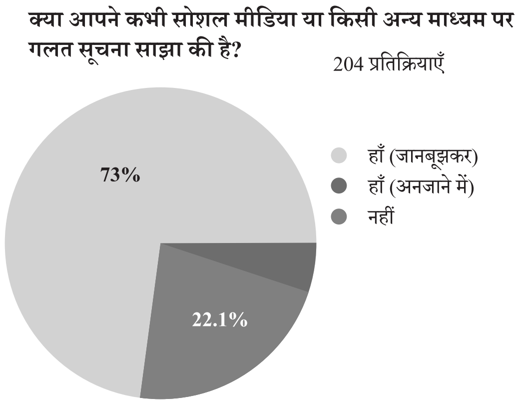

(चित्र-5)

सोशल मीडिया के माध्यम से गलत सूचनाओं का प्रचार-प्रसार जानबूझकर तो किया ही जाता है, अनजाने में भी होता है। सोशल मीडिया या अन्य माध्यमों पर गलत सूचना साझा करने के सवाल पर 204 उत्तरदाताओं ने प्रतिक्रिया दी। इनमें से 73% ऐसे हैं, जिन्होंने कभी भी सोशल मीडिया या किसी अन्य माध्यम से गलत सूचना को साझा नहीं किया है, जबकि 22.1% युवाओं ने माना कि कई बार अनजाने में गलत सूचना साझा की गई। 4.9% ऐसे भी हैं, जिन्होंने स्वीकार किया है कि उनके द्वारा जानबूझकर भी गलत सूचनाओं को प्रसारित किया गया था (चित्र-5)।

गलत सूचना और दुष्प्रचार आदि को पहचानने के लिए टूल या विशेष तकनीक के इस्तेमाल पर 60.8% ने कहा कि वे गलत सूचना की पहचान के लिए टूल आदि का उपयोग करते हैं, जबकि 39.2% ने कहा कि वे ऐसा नहीं करते हैं। सामाजिक मुद्दों, राजनीतिक समाचार, स्वास्थ्य संबंधित समाचार और अन्य में क्रमश: बहुत अधिक, अधिक, कम और सबसे कम

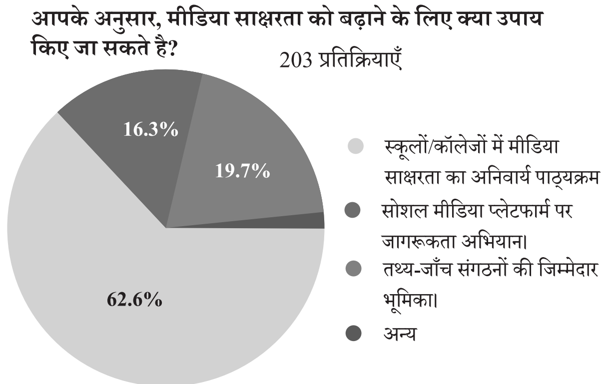

(चित्र-6)

अविश्वसनीय प्रतिक्रियाएँ दर्ज की गई हैं।

मीडिया से संबंधित उत्तरदाताओं के अनुसार, मीडिया साक्षरता को बढ़ाने के लिए स्कूलों और कॉलेजों में मीडिया साक्षरता को एक अनिवार्य पाठ्यक्रम के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। कुछ उत्तरदाताओं का मानना है कि सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के प्रति जागरूकता अभियान और तथ्य-जाँच संगठनों को जिम्मेदार भूमिका निभाने की आवश्यकता है। डेटा स्पष्ट रूप से दिखाता है कि मीडिया साक्षरता गलत सूचना को प्रभावी ढंग से कम कर सकतीहै (चित्र-6)।

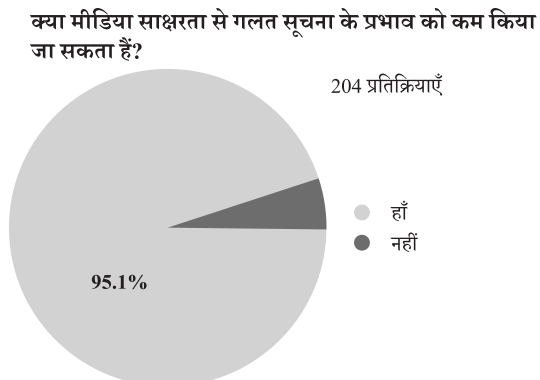

(चित्र-7)

95.1% उत्तरदाताओं के अनुसार मीडिया साक्षरता के माध्यम से गलत सूचना के प्रभाव को कम किया जा सकता है (चित्र-7)। अधिकतर प्रतिभागियों का मानना है कि मीडिया साक्षरता के माध्यम से लोगों की जानकारी और निर्णय लेने की क्षमता में सुधार होता है। इसलिए 94.6% प्रतिभागियों के अनुसार युवाओं को मीडिया साक्षरता से संबंधित प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। ऐसा करने से लोगों में सही और गलत सूचना के चयन करने की क्षमता विकसित होगी और मीडिया के प्रयोग की उचित जानकारी भी बढ़ेगी।

निष्कर्ष और सुझाव

डिजिटल युग में आगे बढ़ते हुए दौर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का आ गया है, तो ऐसे में डेटा के साथ खिलवाड़ करना भी बेहद आसान हो गया है।

गलत सूचनाओं, दुष्प्रचार और फेक न्यूज के बाजार में भी तेजी से वृद्धि हो रही है। इन सभी से निपटने के सरल उपायों में से एक मीडिया साक्षरता को बढ़ाना है। मीडिया के प्रति साक्षर होने से सूचना को ग्रहण करने की कला में विकास होता है। शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि युवाओं को मीडिया साक्षरता की समझ तो है, परंतु इसे विस्तार देने की आवश्यकता है। मिसइनफॉर्मेशन और डिसइनफॉर्मेशन के प्रति जागरूकता स्कूल, कॉलेज के पाठ्यक्रम में मीडिया साक्षरता को शामिल करके बढ़ाई जा सकती है। फैक्ट चेकिंग वर्कशॉप और सेमिनार में ट्रेनिंग देकर गलत सूचना के प्रभाव को रोका जा सकता है। वर्तमान समय में सोशल मीडिया के दुरुपयोग को रोका जाना तो कठिन हो सकता है, लेकिन साक्षरता बढ़ने से गलत सूचनाओं के प्रसार-प्रचार पर प्रतिबंध लगना संभव है। युवा काफी समय सोशल मीडिया को दे रहे हैं और डेटा विश्लेषण से स्पष्ट है कि गलत सूचनाओं को फैलाने में सोशल मीडिया की बड़ी भूमिका है।

अध्ययन से स्पष्ट है कि युवाओं को मीडिया साक्षरता की विशेष आवश्यकता है। उन्हें इससे संबंधित ट्रेनिंग आदि देने से नए तकनीकी के बेहतर उपयोग में सहायता मिलेगी और गलत सूचनाओं की पहचान भी आसानी से की जा सकेगी। भारत में मीडिया साक्षरता पर कार्यक्रम को बढ़ावा देना चाहिए। इस क्षेत्र पर काम करने की वर्तमान समय में सबसे अधिक आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

कुमार, संदीप. (2024, फरवरी 13). सेहतनामा- इंस्टाग्राम, वॉट्सऐप चेक करने से दिल-दिमाग कमजोर : रोज 7 घंटे सोशल मीडिया पर युवा, रील के चक्कर में...दैनिक भास्कर. https://www.bhaskar.com/lifestyle/news/instagram-whatsapp-reel-side-effects-social-media-addiction-causes-132577741. :~:text=%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%B2%20%E0%A4%B9%E0%A5%80%20%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82%20%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%B9%E0%A4%A4%E0%A4%95%20%E0%A4%95%E0%A5%87 से पुन:प्राप्त.

कुंडू, वी. (2015). मीडिया एंड इंफॉर्मेशन लिटरेसी : डेफिनिशन, नीड एंड पर्पस, रॉल ऑफ एमआईएल इन द सोसाइट–मीडिया एंड इंफॉर्मेशन लिटरेसी.Inflibnet.ac.in. https://ebooks.inflibnet.ac.in/lisp20/chapter/media-and-information-literacy-definition-need-and-purpose-role-of-mil-in-the-society/ से पुन:प्राप्त.

कोल्टे, टी. (2011). द मीडिया एंड द लिटरेसीज : मीडिया लिटरेसी, इनफॉर्मेशन लिटरेसी, डिजिटल लिटरेसी. मीडिया, कल्चर & सोसाइटी, 33(2), 211–221. https://doi.org/10.1177/0163443710393382

डहेरिया, पी. & श्रीवास्तव, पी. (2023). छात्रों में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों के प्रति मीडिया साक्षरता का अध्ययन. संचार माध्यम, 1(35). https://www.researchgate.net/publication/370498158_chatrom_mem_sosala_midiya_pletaphormsa_ke_prati_midiya_saksarata_ka_adhyayana से पुन:प्राप्त.

लुथ्फिया, ए., हंडायनी, एफ., गासा, एफ. एम., रमादांटी, एस., & रिजवान, ए. आर. (2023). नेविगेटिंग द साइबर फ्रंटियर : युथ कैपेबिलिटीज टू कंफ्रंट डिस/मिसइनफॉर्मेशन विद डिजिटल लिटरेसी एंड डिजिटल सिक्योरिटी. IEEE Xplore. https://doi.org/10.1109/contel58387.2023.10198919

शुक्ला, एस. (2023). ट्विटर पर हैशटैग एक्टिविज्म और फेक न्यूज का अध्ययन. संचार माध्यम, 1(35).

हॉब्स, आर. (2011). मीडिया लिटरेसी एजुकेशन : कनेक्टिंग द क्लासरूम टू कंटेंपरेरी कल्चर (पृ. 40-90). कॉर्विन प्रेस.

हॉब्स, आर. (2021). *मीडिया लिटरेसी इन एक्शन*. रोमन एंड लिटिलफील्ड पब्लिशर्स.

हॉब्स, आर. (2008). *डिबेट एंड चैलेंजेस फैसिंग न्यू लिटरेसीज इन द 21स्ट सेंचुरी*. सोनिया लिविंगस्टोन और क्रिस्टिन ड्रॉटनर (संपा.), इंटरनेशनल हैंडबुक ऑफ चिल्ड्रेन, मीडिया एंड कल्चर (पृ. 431-447). लंदन : सेज.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 77-80, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

सोशल मीडिया का युवाओं पर प्रभाव

डॉ. आलोक चौहान[1]

सारांश

मीडिया संचार का वह माध्यम है, जिसकी लोगों तक व्यापक पहुँच व प्रभाव है। लोकतांत्रिक देशों में मीडिया को चौथा स्तंभ माना जाता है। संचार साधनों के विकास की वजह से ग्लोबल विलेज की अवधारणा को बढ़ावा मिला है। आज की दुनिया में, सोशल मीडिया का उपयोग मनुष्य के रोजमर्रा के जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। सोशल मीडिया समाज के प्रत्येक पहलू को प्रभावित कर रहा है। विशेषकर युवाओं के नैतिक और सामाजिक मूल्यों के साथ यह युवाओं की जीवनशैली और विचारों को भी प्रभावित कर रहा है। युवा सोशल मीडिया पर अपनी निजी जिंदगी खोलने लगा है, साथ ही अन्य अप्रमाणित खबरों को वह सच मानने लगा है। सोशल मीडिया ने युवा पीढ़ी को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से प्रभावित किया है। एक संतुलित जीवन, परिवार, समाज, संस्कृति और देश के लिए सोशल मीडिया के दोनों पक्षों पर हमें खुले मन से विचार करना चाहिए। यह अध्ययन राजस्थान की शिक्षा नगरी कोटा शहर में सोशल मीडिया के उपयोग के प्रतिरूप और युवाओं पर इसके प्रभाव पर प्रकाश डालता है।

संकेत शब्द : सोशल मीडिया, सोशल नेटवर्किंग, ग्लोबल विलेज, ई-कॉमर्स

प्रस्तावना

सोशल मीडिया की परिभाषा में कहा गया है कि यह इंटरनेट आधारित अनुप्रयोगों का एक ऐसा समूह है, जो प्रयोक्ता-जनित सामग्री के सृजन और आदान-प्रदान की अनुमति देता है। इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकी से ऐसे क्रियाशील मंचों का निर्माण करता है, जिनके माध्यम से व्यक्ति और समुदाय प्रयोक्ताजनित सामग्री का संप्रेषण एवं सह-सृजन कर सकते हैं, उस पर विचार-विमर्श कर सकते हैं। यह संगठनों, समुदायों और व्यक्तियों के बीच संचार में महत्त्वपूर्ण और व्यापक परिवर्तनों को अंजाम देता है (सिद्दकी एवं सिंह, 2016)।

सोशल मीडिया व्हाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर, लिंक्डइन और यूट्यूब आदि जैसे अनुप्रयोगों और वेबसाइटों को संदर्भित करता है, जिनके माध्यम से लोग जानकारी साझा करते हैं और उनके आसपास होने वाली प्रमुख घटनाओं की सराहना करते हैं (मीणा, 2023)। सोशल मीडिया 21 वीं सदी की शुरुआत से प्रगति पर है। सोशल मीडिया उपकरण विभिन्न विदेशी भाषाओं को सीखने के अवसर और बातचीत का बेहतर तरीका प्रदान करते हैं। सोशल मीडिया के आगमन के बाद दुनिया एक वैश्विक गाँव बन गई है। सोशल मीडिया प्लेटफार्मो के माध्यम से उपयोगकर्ता एक सेकेंड में अन्य लोगों से जुड़ सकते हैं, अपने विचारों को साझा कर सकते हैं और रुचि के मुद्दों पर टिप्पणियाँ कर सकते हैं। विभिन्न संस्कृति के लोग किसी भी मुद्दे पर बात कर सकते हैं और अन्य देशों के बारे में जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं।

राष्ट्रीय युवा नीति-2014 में 'युवाओं' को 15-29 वर्ष के आयु वर्ग के व्यक्तियों के रूप में परिभाषित किया गया है। युवा और छात्र सीखने, मनोरंजन और नवाचार जैसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं (देवी, 2023)।

सोशल मीडिया के युवाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने से पूर्व संक्षेप में इसके सकारात्मक एवं एवं नकारात्मक प्रभावों की चर्चा आवश्यक है :

सोशल मीडिया के सकारात्मक प्रभाव

1. **सकारात्मक प्रेरणा :** सोशल नेटवर्क 'सहकर्मी प्रेरणा' (Peer Motivation) का सृजन कर सकते हैं और युवाओं को नई एवं स्वस्थ आदतें विकसित करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। किशोर ऑनलाइन माध्यम से अपने लिए सकारात्मक रोल मॉडल भी ढूँढ़ सकते हैं।
2. **अभिव्यक्ति प्रदान करना :** सोशल मीडिया ने किशोरों को एक-दूसरे के पक्ष में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का अवसर दिया है। सशक्त भावों, विचारों या ऊर्जा की अभिव्यक्ति और सदुपयोग से यह बेहद सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है।
3. **रचनात्मकता को बढ़ावा :** सोशल मीडिया युवाओं को उनके आत्मविश्वास और रचनात्मकता को बढ़ाने में मदद कर सकता है। यह युवाओं को विचारों की एवं संभावनाओं की दुनिया से जोड़ता है। ये मंच छात्रों को अपने मित्रों के साथ जुड़ने तथा अपने रचनात्मक कौशल का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।
4. **डिजिटल सक्रियता और सामाजिक परिवर्तन :** सोशल मीडिया समुदाय के अंदर प्रभाव उत्पन्न करने का एक माध्यम बन सकता है। यह युवाओं को न केवल अपने समुदाय के अंदर, बल्कि पूरे विश्व में आवश्यक विषयों से अवगत कराता है। 'ग्रेटा थनबर्ग' युवा सक्रियता की ऐसी ही एक उदाहरण है।
5. **संपर्क और संबंध :** फेसबुक और एक्स जैसे सोशल मीडिया मंच किशोरों और युवा वयस्कों को अपनेपन और स्वीकृति की एक भावना प्रदान करते हैं। यह बात विविधतापूर्ण एवं विशिष्ट जैसे समूहों के लिए विशेष रूप से सत्य है, जो अलग-थलग या हाशिये पर मौजूद हैं। कोविड महामारी के दौरान इसका चौतरफा प्रभाव स्पष्ट तौर पर दृष्टिगत हुआ, जब इसने 'आइसोलेशन' में रह रहे लोगों एवं उनके प्रियजनों को आपस में जोड़े रखा एवं सामाजिक संबंधों को जीवंत रखा।
6. **पहचान का निर्माण :** किशोरावस्था ऐसा समय होता है जब युवा

[1]सहायक आचार्य, भूगोल, मानविकी एवं समाज विज्ञान विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान. ईमेल : achauhan@vmou.ac.in

अपनी पहचान को संपुष्ट करने और समाज में अपना स्थान पाने का प्रयास कर रहे होते हैं। सोशल मीडिया किशोरों को अपनी विशिष्ट पहचान विकास हेतु एक मंच प्रदान करता है। एक अध्ययन से पता चला है कि जो युवा सोशल मीडिया पर अपनी राय व्यक्त करते हैं, वे 'बेहतर प्रगति' (Well-Being) का अनुभव करते हैं।

7. **अनुसंधान :** मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ और शोधकर्त्ता सोशल मीडिया का उपयोग प्रायः डेटा एकत्र करने के लिए करते हैं, जो उनके अनुसंधान में योगदान करता है। इसके अलावा, थेरेपिस्ट एवं अन्य पेशेवर लोग ऑनलाइन समुदायों के अंदर परस्पर नेटवर्क स्थापित कर सकते हैं, जिससे उनके ज्ञान और पहुँच का विस्तार हो सकता है।
8. **गेटवे टू टैलेंट :** सोशल मीडिया आउटलेट छात्रों को अपनी रचनात्मकता और विचारों को तटस्थ दर्शकों के साथ साझा करने और एक ईमानदार प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए एक मंच प्रदान करते हैं। प्राप्त प्रतिक्रिया उनके लिए अपने कौशल को बेहतर ढंग से आकार देने में मार्गदर्शक बन सकती है, यदि वे उस कौशल को पेशेवर रूप से आगे बढ़ाना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, कोई फोटोग्राफर या वीडियोग्राफर अपने शॉट को इंस्टाग्राम पर पोस्ट कर शुरुआत करता है। कई युवा पहले से ही इसमें अपना कॅरियर बना रहे हैं।

सोशल मीडिया का नकारात्मक प्रभाव

1. **शारीरिक स्वास्थ्य समस्याएँ :** सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग के परिणामस्वरूप वास्तविक दुनिया की स्वास्थ्यप्रद गतिविधियों पर कम समय व्यय किया जाता है। सोशल मीडिया 'फीड्स' को स्क्रॉल करते रहने की आदत, जिसे 'वैंपिंग' (Vamping) कहा जाता है, के कारण नींद की कमी की समस्या उत्पन्न होती है।
2. **मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ :** कई अध्ययनों में सोशल मीडिया के उपयोग और अवसाद के बीच घनिष्ठ संबंध पाया गया है। एक अध्ययन के अनुसार मध्यम से गंभीर अवसाद लक्षण वाले युवाओं में सोशल मीडिया पर अधिक समय तक रहने की संभावना लगभग दोगुनी थी। सोशल मीडिया पर किशोर अपना अधिकांश समय अपने साथियों के जीवन और तस्वीरों को देखने में बिताते हैं। यह एक निरंतर तुलनात्मकता की ओर ले जाता है, जो आत्म-सम्मान और 'बॉडी इमेज' को नुकसान पहुँचा सकता है और किशोरों में अवसाद एवं चिंता की वृद्धि कर सकता है।
3. **सामाजिक संबंध :** किशोरावस्था सामाजिक कौशल विकसित करने का महत्त्वपूर्ण समय होता है। लेकिन, चूँकि किशोर अपने दोस्तों के साथ आमने-सामने कम समय बिताते हैं, इसलिए उनके पास इस कौशल के अभ्यास के कम अवसर होते हैं।
4. **साइबरबुलिंग या ट्रोलिंग :** इसने गंभीर समस्याएँ पैदा की हैं। यहाँ तक कि किशोरों के बीच आत्महत्या के मामलों को भी जन्म दिया है। इसके अलावा, साइबरबुलिंग जैसे कृत्य में संलग्न किशोर मादक पदार्थों के सेवन, आक्रामकता और आपराधिक कृत्य में संलग्न होने के प्रति भी संवेदनशील होते हैं।
5. **'टेक एडिक्शन' :** वैज्ञानिकों ने पाया है कि किशोरों द्वारा सोशल मीडिया का अति प्रयोग उसी प्रकार के उत्तेजना पैटर्न का सृजन करता है जैसा अन्य एडिक्शन व्यवहारों से उत्पन्न होता है।
6. **पूर्वग्रहों की पुन:पुष्टि :** सोशल मीडिया दूसरों के बारे में उनके पूर्वग्रहों और रूढ़ियों की पुन:पुष्टि का अवसर प्रदान करता है। समान विचारधारा वाले लोगों से ऑनलाइन मिलने से इन प्रवृत्तियों की वृद्धि होती है, क्योंकि उनमें समुदाय की भावना का विकास होता है। उदाहरण के लिए, फ्लैट अर्थ सोसाइटी।
7. **ऑनलाइन बाल यौन उत्पीड़न और शोषण :** संयुक्त राज्य अमेरिका में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि सर्वेक्षण में शामिल सभी अमेरिकी बच्चों में से लगभग आधे ने संकेत दिया कि उन्हें ऑनलाइन रहते हुए असहज महसूस कराया गया। उन्हें धमकाया गया या उनसे यौन प्रकृति का संवाद किया गया। एक अन्य अध्ययन में यह पाया गया कि ऑनलाइन यौन शोषण के शिकार लोगों में से 50 प्रतिशत से अधिक 12 से 15 वर्ष की आयु के बीच के थे।

ऋतिका और सेल्वराज (2013) ने सोशल नेटवर्किंग साइटों का अध्ययन किया एवं बताया कि विद्यार्थियों को बेहतर भविष्य के लिए इसका उपयोग करना चाहिए। सोशल मीडिया छात्रों को ज्ञान, सूचना के साथ भटकाव भी दे रहा है, जिसका प्रभाव उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ रहा है (डहेरिया एवं श्रीवास्तव, 2023)।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य युवाओं पर सोशल मीडिया के प्रभाव का विश्लेषण करना है। इसके दो उद्देश्य है :

1. यह आकलन करने का प्रयास किया गया है कि युवा अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में सोशल मीडिया का उपयोग कैसे करते हैं।
2. शिक्षा, मनोरंजन, नौकरी के अवसरों की तलाश; संचार, कौशल बढ़ाने और ऑनलाइन खरीदारी के संदर्भ में युवाओं पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है।

आँकड़े एवं शोध प्रविधि

यह अध्ययन प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। इस अध्ययन हेतु कोटा शहर के विभिन्न विश्वविद्यालयों, राजकीय महाविद्यालयों में वर्तमान में अध्ययनरत 18-30 आयु-वर्ग के विद्यार्थियों का अनुसूची के माध्यम से सर्वेक्षण किया गया। नमूने का संगठन निर्धारित करते समय विद्यार्थियों के विभिन्न सामाजिक-आर्थिक लक्षणों को आधार बनाया गया।

आँकड़ा विश्लेषण एवं परिणाम

इस अध्ययन में शामिल युवाओं के आयु-वर्ग को तालिका-1 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 1 : उत्तरदाताओं के आयु-समूह का विवरण

आयु-समूह (वर्षों में)	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
18 से कम	20	4%
18-25	340	68%
26-30	140	28%
कुल	500	100%

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 68% उत्तरदाता 18-25 आयु वर्ग

के हैं, 28% और 4% उत्तरदाता क्रमशः 26-30 और 18 से कम आयु वर्ग के हैं।

तालिका 2 : सोशल मीडिया के उपयोग का माध्यम

माध्यम	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
मोबाइल	450	90%
लैपटॉप	35	7%
डेस्कटॉप	15	3%
कुल	500	100%

तालिका 2 से स्पष्ट है कि अधिकतर युवा सोशल नेटवर्किंग अनुप्रयोगों के लिए मोबाइल फोन का उपयोग करते हैं। युवा वर्ग के पास लैपटॉप की कम उपलब्धता एवं डेस्कटॉप का चलन कम होने से युवाओं के मध्य इनका प्रयोग कम हो रहा है।

तालिका 3 : उपयोग किए गए सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म

प्लेटफॉर्म	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
व्हाट्सऐप	100	20%
फेसबुक (मेटा)	150	30%
इंस्टाग्राम	150	30%
एक्स	30	6%
अन्य	70	14%
कुल	500	100%

सर्वेक्षण से यह तथ्य उभर कर सामने आया कि युवाओं के मध्य फेसबुक (मेटा), इंस्टाग्राम एवं व्हाट्सएप सर्वाधिक लोकप्रिय प्लेटफार्म हैं। अधिकतर युवाओं ने इनके लाभों के कारण इनके अधिक उपयोग पर जोर दिया।

तालिका 4 : सोशल मीडिया पर एक दिन में बिताए गए घंटों की संख्या

समय अवधि	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1-2 घंटे	120	24%
3-4 घंटे	200	40%
4 घंटे से अधिक	180	36%
कुल	500	100%

यह अत्यंत चिंता का विषय है कि लगभग तीन-चौथाई युवा एक दिन में लगभग चार घंटे सोशल मीडिया पर व्यतीत करते हैं। यह युवाओं के मध्य खेल मैदानों के खेलों के प्रति उदासीनता का स्पष्ट उदाहरण है। इंटरनेट पर अधिक समय व्यतीत करना युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है।

तालिका 5 : सोशल मीडिया के उपयोग का उद्देश्य

उद्देश्य	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
समाचार/रुझानों से अपडेट रहने के लिए	110	22%
अपनेपन के एहसास के लिए	20	4%
मित्रों और परिवार के साथ संचार एवं संपर्क के लिए	130	26%
पोस्ट साझा करने के लिए	90	18%
सामाजिक जागरूकता के लिए	100	20%
अन्य (ऑनलाइन खरीददारी))	50	10%
कुल	100	100%

तालिका 5 स्पष्ट करती है अकेलेपन की भावना से बचाव सोशल मीडिया से जुड़ने का प्रमुख कारण है। मित्रों और परिवार के साथ संचार एवं संपर्क के लिए एवं सामाजिक जागरूकता हेतु भी अधिकतर युवा इन मीडिया प्लेटफार्मों से जुड़े हुए हैं।

तालिका 6 : सोशल मीडिया के उपयोग के व्यक्तिगत लाभ/सकारात्मक प्रभाव

प्रभाव	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
सीखना/ज्ञान वर्धन	100	20%
मित्रों से जुड़े रहना	100	20%
मनोरंजन	140	28%
डिजिटल प्रतिष्ठा	50	10%
रोजगार की तलाश	90	18%
अन्य	20	4%
कुल	500	100%

अध्ययन में पाया गया कि प्रारंभ में सोशल मीडिया से जुड़ने का प्रमुख कारण मनोरंजन रहा जो धीरे-धीरे लत एवं निर्भरता में परिवर्तित हो गया। नई चीजों को सीखना एवं मित्रों से संपर्क बनाए रखना अन्य महत्त्वपूर्ण कारण रहे।

तालिका 7 : सोशल मीडिया के उपयोग के नकारात्मक प्रभाव

प्रभाव	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
साइबर चोरी	200	40%
स्वास्थ्य समस्या	110	22%
समय की बर्बादी	110	22%
गलत शब्दों का पाठन या उपयोग	50	10%
अन्य (अवांछित विज्ञापन देखना)	30	6%
कुल	500	100%

तालिका 7 से ज्ञात होता है कि साइबर चोरी, स्वास्थ्य समस्या एवं समय की बर्बादी युवाओं के मध्य सोशल मीडिया के प्रमुख नकारात्मक प्रभाव के रूप में दृष्टिगत हुए हैं। इन दुष्प्रभावों से बचाव के तरीकों के बारे में ज्ञान नहीं होने के कारण युवाओं को कई बार सामाजिक, शारीरिक एवं मानसिक नुकसान भी उठाना पड़ा है।

तालिका 8 : सोशल मीडिया के उपयोग के दौरान मानसिक स्थिति

प्रभाव	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
प्रेरणा (Motivation)	110	22%
प्रसन्नता	100	20%
आत्म सम्मान/विश्वास में वृद्धि	70	14%
अकेलेपन के भय से मुक्ति	50	10%
उत्प्रेरणा (Inspiration)	80	16%
अन्य	90	18%
कुल	500	100%

अधिकतर युवाओं ने बताया कि सोशल मीडिया के उपयोग के दौरान उन्होंने अपनी मानसिक स्थिति को प्रेरणामय और प्रसन्नतायुक्त पाया, जिसके कारण इस पर व्यतीत किए गए समय में निरंतर वृद्धि होती रही। आत्मविश्वास में वृद्धि एवं अकेलेपन की समस्या को दूर करना अन्य महत्त्वपूर्ण कारण थे, जिन्होंने युवाओं की मानसिक स्थिति को प्रभावित किया।

तालिका 9 : सोशल मीडिया का प्रमुख प्रभाव

प्रभाव	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
सकारात्मक	350	70%
नकारात्मक	100	20%
दोनों	50	10%
कुल	500	100%

निष्कर्ष और सुझाव

सर्वेक्षण के नतीजों से पता चला है कि 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उन पर सोशल मीडिया का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। 20 प्रतिशत ने स्वीकार किया कि उन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जबकि 10 प्रतिशत ने सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के प्रभावों को स्वीकार किया। अधिकतर युवाओं द्वारा सकारात्मक प्रभाव को इसलिए स्वीकार किया गया, क्योंकि उन्हें नकारात्मक प्रभावों की पहचान एवं उनका ज्ञान नहीं था। वहीं सामाजिक स्वीकरण हेतु भी युवा अनजाने में सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभावों को स्वीकार नहीं करते हैं। सभी प्रौद्योगिकियों के स्पष्ट लाभ और संभावित हानिकारक प्रभाव होते हैं। जैसा कि जीवन के अधिकतर विषयों पर लागू होता है, सोशल मीडिया के उपयोग में भी अति से बचने और संतुलन बनाए रखने में ही समस्या का समाधान निहित हो सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में सामने आए कुछ सुझाव निम्नानुसार हैं :

एक समर्पित सोशल मीडिया नीति : युवाओं को उपभोक्ताओं या भविष्य के उपभोक्ताओं के रूप में लक्षित नहीं करने के लिए उत्तरदायित्व का सृजन कर सोशल मीडिया को विनियमित करने के लिए एक समग्र नीति अपनाई जानी चाहिए।

नैतिक रूपरेखा के मानक : ये मानक तकनीकी कंपनियों के लिए 'डिजिटल डिस्ट्रैक्शन' (Digital Distraction) को रोकने, टालने एवं हतोत्साहित करने तथा नैतिक ह्यूमन लर्निंग को प्राथमिकता देने के सिद्धांत निर्धारित करेंगे।

डिजिटल साक्षरता : यह महत्त्वपूर्ण है कि भारत में विद्यमान 'डिजिटल डिवाइड' को नजरअंदाज नहीं किया जाए, विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में। युवाओं की सुरक्षा के नाम पर नीतिगत निर्णय का परिणाम यह नहीं होना चाहिए कि वंचित पृष्ठभूमि के युवा भविष्य के अवसरों से हाथ धो बैठें।

शासन और विनियमन : कंटेंट, डेटा स्थानीयकरण, थर्ड पार्टी डिजिटल ऑडिट, सशक्त डेटा संरक्षण कानून आदि के लिए इन मंचों के अधिक उत्तरदायित्व हेतु सरकारी विनियमन भी आवश्यक है।

सोशल मीडिया मंचों की भूमिका : 'ऑटो-प्ले' सेशन, पुश अलर्ट जैसे कुछ फीचर पर प्रतिबंध लगाना और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण ऐसे उत्पादों का सृजन करना, जो युवाओं को लक्षित न करें।

सामाजिक एजेंसियों की भूमिका : सोशल मीडिया उपयोग को नियंत्रित करने, सदुपयोगी बनाने और सीमित करने के लिए माता-पिता, शैक्षणिक संस्थानों और समाज को समग्र रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। पैरेंटल कंट्रोल फीचर के उपयोग, स्क्रीन टाइम को सीमित करने, बच्चों के साथ लगातार संवाद करने और बाह्य गतिविधियों को बढ़ावा देकर इस लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है।

संदर्भ

ऋतिका, एम. & सेल्वराज, एस. (2013). द इंपैक्ट ऑफ मीडिया ऑन स्टूडेंट्स एकेडमिक परफोर्मेंस, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लोजिस्टिक एंड सप्लाई चेन मेनेजमेंट पर्सपेक्टिव, 2 (4),पीपी. 636-640.

डहेरिया, पी. & श्रीवास्तव, पी. (2023). छात्रों में सोशल मीडिया प्लेटफोर्मों के प्रति मीडिया साक्षरता का अध्ययन, संचार माध्यम, 35(1), पीपी. 63-68.

डार, एस.ए. & नागरथ, डी. (2023). द इंपैक्ट देट सोशल मीडिया हेज हेड ऑन टुडेज जेनरेशन ऑफ इंडियन यूथ : एन एनेलिटिकल स्टडी, एमओआरएफएआई जर्नल, 3(1), पीपी. 166-176.

देवी, पी. (2023). युवाओं पर सोशल मीडिया के प्रभाव पर एक अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ होम साइंस, 9(3), पीपी. 197-201.

मीणा, आर.के. (2023). सोशल मीडिया का युवाओं पर प्रभाव, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड ह्यूमिनिटीज इन्वेंशन, 12(3), पीपी. 107-113.

सिद्दकी, एस. & सिंह, टी. (2016). सोशल मीडिया इंपैक्ट विद इट्स पोजिटिव एंड नेगेटिव आस्पेक्ट. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंप्यूटर एप्लीकेशन टेक्नोलोजी एंड रिसर्च, 5(2), पीपी. 71-75.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 81-85, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

डिजिटल प्लेटफॉर्मों के माध्यम से परंपराओं को संरक्षित करने में युवाओं की भूमिका

चेतना शर्मा[1] और डॉ. महक जंजुआ[2]

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र डिजिटल मीडिया के माध्यम से पारंपरिक संस्कृति के पुनरुद्धार में युवाओं की भूमिका को परखता है। वैश्वीकरण, शहरीकरण और तकनीकी उन्नयन के साथ समकालीन समय में पारंपरिक सांस्कृतिक रुझान धीरे-धीरे अपनी पकड़ खो रहे हैं। ऐसे में डिजिटल मीडिया एक महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में उभरा है और इन परंपराओं को नए तरीके से संरक्षित करने का काम कर रहा है। यह परिवर्तन सबसे अधिक तकनीकी रूप से सशक्त और सक्रिय युवा पीढ़ी द्वारा संचालित किया जा रहा है। यह माध्यम न केवल युवाओं को अपनी पारंपरिक ज्ञान प्रथाओं और सांस्कृतिक मान्यताओं को संरक्षित करने की अनुमति देता है, बल्कि सोशल मीडिया, ब्लॉग, वीडियो चैनल और इंटरैक्टिव वेबसाइटों के माध्यम से उन्हें व्यापक रूप से फैलाने का भी मौका देता है। युवाओं के लिए संस्कृति में अपनी जड़ों से जुड़ने और अपनी पहचान को मजबूत करने का अवसर है। यह अध्ययन विश्लेषण करता है कि डिजिटल माध्यम सांस्कृतिक शिक्षा के लिए एक शक्तिशाली उपकरण कैसे बन रहा है और वर्तमान पीढ़ी द्वारा पारंपरिक सांस्कृतिक परंपराओं के पुनरुद्धार के लिए इसका उपयोग कैसे किया जा रहा है। डिजिटल मीडिया के माध्यम से सांस्कृतिक परंपराओं को संरक्षित करने और बढ़ावा देने के इन प्रयासों में युवाओं की सक्रिय भागीदारी काफी महत्त्वपूर्ण है, जो उन्हें भविष्य की पीढ़ियों तक पहुँचाने में मददगार होगी।

संकेत शब्द : डिजिटल माध्यम, सांस्कृतिक पुनर्जीवन, सोशल मीडिया, सांस्कृतिक शिक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण, परंपराएँ, युवा

प्रस्तावना

आधुनिक समाज में डिजिटल तकनीक और इंटरनेट ने जीवन के हर पहलू को बदल दिया है। पारंपरिक संस्कृतियाँ, जो कभी सिर्फ पुराने तरीकों और परंपराओं से जुड़ी थीं, अब डिजिटल माध्यमों से नए तरीके से प्रस्तुत और संरक्षित की जा रही हैं। विशेषकर युवा वर्ग, जो तकनीकी प्रगति के प्रमुख उपभोक्ता हैं, पारंपरिक संस्कृति के पुनर्जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र इस बात का विश्लेषण करता है कि कैसे डिजिटल माध्यमों ने पारंपरिक संस्कृति के पुनर्जीवन में योगदान दिया है और इसमें युवाओं की क्या भूमिका है। डिजिटल प्रौद्योगिकियों और सांस्कृतिक विरासत का अंतर्संबंध एक ऐसे युग के दौरान सामुदायिक सशक्तीकरण और परंपरा के संरक्षण के लिए असाधारण अवसर पैदा करता है, जिसमें हम दैनिक जीवन में व्याप्त डिजिटल प्रौद्योगिकी के आदी हो गए हैं। सांस्कृतिक आख्यान तेजी से मानव संचार, शिक्षा और सूचना के आदान-प्रदान के केंद्र में हैं, इसलिए जिस तरह से उन्हें संरक्षित, प्रसारित और बाद में पुनर्जीवित किया जाता है, वह डिजिटल प्लेटफॉर्म द्वारा तेजी से उन्नत हो रहा है। डिजिटल प्लेटफार्मों के उद्भव ने सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और प्रसारित करने के लिए एक आधार प्रदान करने के प्रतिमान को बदल दिया है। फेसबुक, इंस्टाग्राम और एक्स जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म व्यक्तियों और समुदायों के लिए अपने सांस्कृतिक आख्यानों को प्रसारित करने के लिए एक ऐसा साधन प्रदान करते हैं, जो इंटरैक्टिव और सुलभ है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सोशल मीडिया अधिक ऐतिहासिक मौखिक परंपराओं या सांस्कृतिक व्यवहारों की दस्तावेजी अभिव्यक्तियों के बजाय सांस्कृतिक मूल्यवान व्यवहारों के अधिक गतिशील और इंटरैक्टिव संरक्षण को आमंत्रित करता है (कौट्रोमानोस अथवा अन्य, 2023)।

उदाहरण के लिए, फेसबुक समूह अक्सर सामुदायिक निर्माण और साझा इतिहास के बारे में संवाद को बढ़ावा देते हैं। इंस्टाग्राम की दृश्य-आधारित सुविधा उपयोगकर्ताओं को तस्वीरें और वीडियो सबमिट करने की अनुमति देती है, जो सांस्कृतिक अनुभवों का दस्तावेजीकरण करते हैं। अब अधिक लोग सांस्कृतिक नृत्यों, रीति-रिवाजों और अन्य प्रथाओं को स्थानीय संदर्भ से परे और बड़े दर्शकों तक प्रसारित करने के लिए टिकटॉक की लघु-रूप वाली फिल्मों का उपयोग कर रहे हैं। ये प्लेटफॉर्म न केवल सांस्कृतिक प्रथाओं के दस्तावेजीकरण और संरक्षण में सहायता करते हैं, बल्कि वे इसे वैश्विक दर्शकों के लिए सुलभ बनाकर अंतर-सांस्कृतिक प्रशंसा और समझ को भी सक्षम बनाते हैं। इसलिए सोशल मीडिया, समुदायों को अपनी सांस्कृतिक कहानियों को प्रबंधित करने का अवसर देकर महत्त्वपूर्ण सक्षमता प्रदान करता है (जाति, 2023)। अतीत में जब सांस्कृतिक दस्तावेजीकरण में कोई बाहरी पर्यवेक्षक शामिल होता था तो सांस्कृतिक दस्तावेजीकरण के अभ्यास में अक्सर संदर्भ हटाने या सरलीकरण या शायद विरूपण की एक परत शामिल होती थी। सोशल मीडिया का उपयोग समुदायों को अपनी कहानियों को प्रामाणिक और सटीक रूप से कैप्चर करने और साझा करने में सक्षम बनाता है।

साहित्य समीक्षा

पारंपरिक संस्कृति और डिजिटल माध्यमों के संबंध में कई शोध कार्य सामने आए हैं। हालाँकि, इन अधिकतर अध्ययनों का फोकस केवल सांस्कृतिक परिवर्तन पर रहा है, पुनर्जीवन पर कम ध्यान दिया गया है। युवाओं की भूमिका का अध्ययन करते समय यह देखा गया है कि युवा वर्ग तकनीकी साधनों का प्रयोग कर नई तरीकों से पारंपरिक संस्कृति को प्रस्तुत कर रहे हैं। सोशल मीडिया, ब्लॉग, वीडियो और डिजिटल आर्ट

[1]पी.एच.डी. शोधार्थी, जन संचार विभाग, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश. ईमेल : sharmachetna810@gmail.com
[2]प्रोफेसर, जन संचार विभाग, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश. ईमेल : mehak.jonjua@sharda.ac.in

के माध्यम से यह प्रक्रिया हो रही है। हालाँकि इस दिशा में अभी भी और शोध की आवश्यकता है, विशेषकर भारत जैसे देश में जहाँ विविधता से भरी पारंपरिक संस्कृतियों का खजाना है।

सोशल मीडिया, हाशिये पर मौजूद आबादी के लिए व्यापक दर्शकों के सामने अपनी आवाज और सांस्कृतिक विरासत को व्यक्त करने के साधन के रूप में कार्य करता है (दा मिलानो अथवा अन्य, 2023)। सीमांत आबादी, अपने स्वयं के इतिहास को पुनः प्राप्त करने और दूसरों को अपने वंश के बारे में शिक्षित करने के प्रयास में अपनी भाषाओं, इतिहास और रीति-रिवाजों को दूसरों तक पहुँचाने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करती है। डिजिटल मीडिया सशक्तीकरण सांप्रदायिक पहचान और गौरव को बढ़ाता है और सांस्कृतिक परंपराओं को बनाए रखने में काम करता है (जुंटिला अथवा अन्य, 2024)। भारत में जम्मू और कश्मीर के निवासियों के रूप में डोगरा लोग सांस्कृतिक स्थिरता का समर्थन करने का एक उत्कृष्ट उदाहरण साबित होते हैं। डोगरा समुदाय ने अपनी संस्कृति और इतिहास को प्रचारित करने और साझा करने के लिए ऑनलाइन समुदाय बनाने के लिए सोशल मीडिया को संगठित किया है। फेसबुक जैसे स्थान उभरे हैं, जहाँ सदस्य एकत्र हो सकते हैं। समुदाय के सदस्यों को ढूँढना, कहानियाँ या सांस्कृतिक योगदान साझा करना काफी सरल हो गया है। साथ ही गाने, चुटकुले या इतिहास के माध्यम से संस्कृति के बारे में सोचना भी। सोशल मीडिया और यूट्यूब, दोनों के गैर-स्थान-आधारित रूपों ने विस्तारित दर्शकों के लिए डोगरी लोक संगीत और नृत्य रूपों में प्रथाओं को व्यक्त करने में मदद की है, जो स्थानीय-आधारित सदस्यता समुदाय से परे तक फैली हुई है।

भाषा और संस्कृति को बढ़ावा देने और संरक्षित करने के लिए इन डिजिटल प्लेटफार्मों का उपयोग करने का एक अतिरिक्त प्रासंगिक उदाहरण न्यूजीलैंड में माओरी समुदाय है (लिली अथवा अन्य, 2024)। 'ते आका' माओरी डिक्शनरी, एप्लिकेशन और साइट लाभप्रद डिजिटल संसाधन हैं, जो माओरी भाषा सीखने वालों के लिए सांस्कृतिक और भाषा ज्ञान का खजाना प्रदान करते हैं (नंदूरी, 2024)। इसके अलावा माओरी संस्कृति के कुछ पहलुओं को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन किए गए अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म, जैसे सोशल मीडिया अभियान और यूट्यूब चैनल लाइव प्रथाओं को पुनर्जीवित करके संस्कृति को फिर से जीवंत करने में प्रभावी रहे हैं।

माओरी समुदाय पहले से कहीं अधिक वीडियो विकसित कर सकता है और अपनी सांस्कृतिक प्रथाओं के सभी पहलुओं को, मसलन पारंपरिक और सांस्कृतिक बुनाई और नक्काशी से लेकर गाने और नृत्य तक, दुनिया के साथ साझा कर सकता है। अपनी सांस्कृतिक पहचान को साझा करने और बनाए रखने के लिए डिजिटल प्रौद्योगिकियों के उपयोग ने माओरी समुदाय में संस्कृति की समझ में वृद्धि की है। डिजिटल प्लेटफॉर्म सांस्कृतिक अभ्यास के महत्त्वपूर्ण अवसरों को संरक्षित करने की अनुमति देते हैं। हालाँकि, वे पहुँच, प्रामाणिकता और प्रतिनिधित्व से जुड़े नैतिक मुद्दों को भी उठाते हैं (सबरीराजन अथवा अन्य, 2024)। जिस आसानी से सामग्री बनाई और साझा की जा सकती है, वह संस्कृति के साथ ऐसे संबंधों को जन्म दे सकती है, जो संस्कृति को गलत तरीके से प्रस्तुत कर सकती है या उसका प्रभाव कम कर सकती है। यह महत्त्वपूर्ण है कि हम ऑनलाइन जानकारी साझा करते समय सांस्कृतिक प्रथाओं और सांस्कृतिक संवेदनशीलता की प्रामाणिकता के प्रति सचेत रहें (हटसन अथवा अन्य, 2024)।

इसके अलावा डिजिटल उपकरणों और इंटरनेट तक असमान पहुँच वाले समुदायों के प्रतिभागियों द्वारा डिजिटल संरक्षण के लाभों को भी कम आँका जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप एक विभाजन पैदा होगा, जिसे संबोधित करने की आवश्यकता होगी। इस विभाजन को कम करने से यह सुनिश्चित होगा कि ग्रामीण या कम आय वाले व्यक्तियों को डिजिटल स्पेस में पूरी तरह से भाग लेने के लिए कौशल और संसाधनों तक पहुँच प्रदान की जाएगी। समुदायों को ऐसी प्रक्रियाएँ बनाने की जरूरत है, जो उन्हें अपनी संस्कृतियों के आख्यानों और पहलुओं पर स्वामित्व बनाए रखने में मदद करें, साथ ही भविष्य में होने वाले अन्याय की संभावनाओं को भी सीमित करें। समुदायों द्वारा सांस्कृतिक सुरक्षा के लिए डिजिटल स्थानों का पूरी तरह से उपयोग करने के लिए समुदाय के सदस्यों के पास उचित डिजिटल कौशल होना चाहिए। शैक्षिक पहलों को विशेष रूप से डिजिटल साक्षरता और सांस्कृतिक समझ दोनों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। ऐसे कार्यक्रम, जो समुदाय के सदस्यों को सम्मानपूर्वक डिजिटल सामग्री बनाना, प्रबंधित करना और साझा करना सिखाते हैं, व्यक्तियों को सार्थक तरीकों से प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के लिए सशक्त बना सकते हैं (हिदायत, एट अल., 2024)। हालाँकि, डिजिटल साक्षरता में डिजिटल सामग्री बनाने और साझा करने के नैतिक मुद्दों को पहचानना भी शामिल है। समुदाय के सदस्यों को यह समझने में सहज महसूस करना चाहिए कि अपनी सांस्कृतिक परंपराओं को ईमानदार और सम्मानजनक तरीके से कैसे प्रस्तुत और साझा किया जाए। डिजिटल साक्षरता के माध्यम से समुदाय अपनी सांस्कृतिक विरासत के अधिक सटीक प्रतिनिधित्व को आगे बढ़ा सकते हैं। साथ ही पहले से गलत तरीके से उपयोग की जाने वाली परंपराओं से बच सकते हैं।

प्रभावी डिजिटल संरक्षण के लिए अक्सर समुदायों, सांस्कृतिक संगठनों और प्रौद्योगिकीविदों के साथ साझेदारी की आवश्यकता होती है (त्रिभुवन, 2024)। वस्तुओं के सांस्कृतिक महत्त्व को प्रतिबिंबित करने वाली साझेदारियों में उच्च गुणवत्ता वाली कलाकृतियों को एक सांस्कृतिक वृक्ष से डिजिटलीकृत किया गया। इन साझेदारियों द्वारा किए जा सकने वाले कार्य के प्रकार का एक विशिष्ट उदाहरण स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन में मूल अमेरिकी वस्तुओं का डिजिटलीकरण है, जिसमें संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करने वाली कलाकृतियों, रिकॉर्ड और मल्टीमीडिया की जबरदस्त डिजिटल लाइब्रेरी तक पहुँच शामिल है (मुनोज अथवा अन्य, 2024)। इंटरएक्टिव और सहभागी डिजिटल प्लेटफॉर्म, जैसे क्राउडसोर्स्ड आर्काइव और विकी समुदाय के सदस्यों के बीच विशेषज्ञता और ज्ञान साझा करने की अनुमति देते हैं। यह इंटरैक्टिव कार्य इस बात को पुष्ट करता है कि सांस्कृतिक संरक्षण एक सामूहिक प्रयास है और डिजिटल संग्रह में दृष्टिकोण और ज्ञान की एक शृंखला जोड़ता है।

डिजिटलीकरण के युग में परंपरा का सम्मान करते हुए समुदायों को सशक्त बनाने में हमेशा एक रणनीतिक और बहु-आयामी प्रतिक्रिया शामिल होती है, जो सांस्कृतिक अखंडता का सम्मान करती है और प्रौद्योगिकी का उपयोग करती है। डिजिटल प्रारूप सांस्कृतिक सामग्री को संरक्षित करने, प्रसारित करने और पुनर्जीवित करने का अच्छा काम कर सकता है। हालाँकि, इसे सुसंस्कृत मानदंडों द्वारा नियोजित किया जाना

चाहिए, समावेशिता का प्रतिनिधित्व करना चाहिए और नैतिक डिजिटल साक्षरता और जुड़ाव पर आधारित प्रामाणिकता की धारणाओं से प्रेरित होना चाहिए। इस प्रकार इस उपक्रम ने सशक्तीकरण की प्रक्रिया में स्थिरता स्थापित करने के लिए और अंततः लंबे समय तक अत्यधिक चिह्नित, कठोर और रणनीतिक तरीकों से संस्कृति और विरासत के संरक्षण में प्रभावी ढंग से सक्रिय होने पर डिजिटल मीडिया की क्षमता का प्रदर्शन किया है।

शोध प्रश्न

1. पारंपरिक संस्कृति के पुनर्जीवन में युवाओं की भूमिका क्या है?
2. युवाओं द्वारा डिजिटल प्लेटफॉर्म पर किस प्रकार की सामग्री साझा की जा रही है, जो पारंपरिक संस्कृति को बढ़ावा देती है?

शोध उद्देश्य

1. यह समझना कि कैसे युवा वर्ग डिजिटल तकनीक का उपयोग करके पारंपरिक संस्कृति को संरक्षित और प्रसारित कर रहा है।
2. यह अध्ययन करना कि किस हद तक डिजिटल प्लेटफॉर्म पारंपरिक कलाएँ, संगीत और भाषा जैसे सांस्कृतिक पहलुओं को पुनर्जीवित करने में सफल हो रहे हैं।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध हेतु प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों से सामग्री एकत्र की गई है। चूँकि शोध गुणात्मक प्रकृति का है, इसलिए शोध हेतु केस स्टडी, सामग्री विश्लेषण और अवलोकन विधियों का प्रयोग किया गया है।

सांस्कृतिक संरक्षण में डिजिटल प्लेटफॉर्म की भूमिका

- **सामुदायिक कहानी कहने के उपकरण के रूप में सोशल मीडिया :** फेसबुक, एक्स, इंस्टाग्राम और टिकटॉक जैसे सोशल मीडिया प्लेटफार्मों के माध्यम से अधिक से अधिक सांस्कृतिक आख्यानों का दस्तावेजीकरण और प्रसार किया जाता है। इन तरीकों के माध्यम से समुदाय ऐसी सामग्री बना सकते हैं और उसकी पुष्टि कर सकते हैं, जो उनकी परंपराओं, उत्सवों और रोजमर्रा की जिंदगी के बारे में बात करती हो। उदाहरण के लिए इंस्टाग्राम एक अनूठा मंच है, क्योंकि यह उपयोगकर्ताओं को सांस्कृतिक घटनाओं को दर्शाने वाली तस्वीरें और लघु वीडियो क्लिप अपलोड करने की अनुमति देता है। फेसबुक, सांप्रदायिक आख्यानों के दस्तावेजीकरण और उन्हें साझा करने के साथ-साथ समुदायों के भीतर इतिहास की चर्चा और विश्लेषण के लिए एक और स्थान है।
- **फेसबुक-चर्चा और सामुदायिक निर्माण के लिए मंच :** फेसबुक समूह और पेज सामुदायिक कहानी कहने की अनुमति देते हैं और परिणामस्वरूप उपयुक्त उपकरण हैं। समुदाय सांस्कृतिक प्रथाओं को पकड़ने और उनके बारे में कहानियाँ बताने के लिए फेसबुक पर समूह बना सकते हैं। कहानियों, फोटो, वीडियो और संस्कृति की अन्य कलाकृतियों को साझा करने के लिए आभासी सामुदायिक साइटों जैसे समूहों में एसोसिएशन बनाई जा सकती हैं। इसके अलावा, समूहों का उपयोग आज की संस्कृति से संबंधित मुद्दों के साथ-साथ स्थानीय इतिहास और परंपराओं से संबंधित मुद्दों पर टिप्पणी, चर्चा और बहस करने के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, किसी विशेष त्योहार से संबंधित सामुदायिक वेबसाइट त्योहार के स्थान और उसके महत्त्व पर चर्चा कर सकती है, साथ ही उत्सव के दौरान छवि, वीडियो और भविष्य के त्योहारों के बारे में जानकारी साझा कर सकती है। ऐसी वेबसाइटों के प्रतिभागी सांस्कृतिक ज्ञान का एक उचित संग्रह विकसित करने के लिए अपनी कहानियाँ और अनुभव साझा कर सकते हैं, जो गतिशील और आकर्षक है। यह सहभागी दृष्टिकोण सांस्कृतिक आख्यानों को संग्रहीत करने और सामुदायिक संबंधों को मजबूत करने के साथ-साथ अपनेपन और सदस्यता की एक साझा दृष्टि का निर्माण करता है।
- **इंस्टाग्राम, फोटो और वीडियो के माध्यम से दृश्य कहानी सुनाना :** इंस्टाग्राम मुख्य रूप से एक दृश्य माध्यम है, इसलिए यह सांस्कृतिक कहानी कहने का एक उत्कृष्ट माध्यम है। प्लेटफॉर्म, फोटो और लघु वीडियो का समर्थन करता है, जिससे उपयोगकर्ता सांस्कृतिक यादों को देखने, रिकॉर्ड करने और साझा करने में सक्षम होते हैं। सांस्कृतिक समुदाय अपने पारंपरिक कपड़ों, भोजन, नृत्यों, समारोहों और प्रथाओं की तस्वीरें रिकॉर्ड और प्रकाशित कर सकते हैं। उपयोगकर्ता इंस्टाग्राम की कहानियों में तस्वीरें और वीडियो भी पोस्ट कर सकते हैं। यह एक ऐसी सुविधा है, जो उन्हें 24 घंटे तक लाइव रहने वाली छवियाँ जोड़ने की अनुमति देती है। हैशटैग का उपयोग करके वे ज्यादा दर्शकों को इंस्टाग्राम पर सांस्कृतिक सामग्री ढूँढ़ने में मदद कर सकते हैं।

डोगरा समुदाय : एक केस स्टडी

डोगरा, जो भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर से आते हैं, उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि वेब स्पेस कैसे व्यक्तियों को ऊपर उठा सकते हैं और प्रथाओं की सुरक्षा कर सकते हैं। परंपरागत रूप से डोगरी लोग सांस्कृतिक सामग्री को व्यक्त करने के लिए मौखिक कथाओं और स्थानीय सामुदायिक घटनाओं पर निर्भर रहे हैं। आज डोगरा समुदाय ने अपने इतिहास का दस्तावेजीकरण करने और उसे बताने के लिए सोशल मीडिया का सहारा लिया है। ऐसा ही एक फेसबुक ग्रुप डोगरा समुदाय के लिए है, जिसका घोषित उद्देश्य गर्मजोशी पैदा करना है। जम्मू डोगरा समुदाय पर कई फेसबुक पेज हैं, जो डोगरा अतीत, परंपराओं और बोलियों के भंडार के रूप में कार्य करते हैं। 'डोगरा विरासत', 'डोगरी लोक', 'डोगरी गीत' और 'अपना डोगरी समूह' सहित अन्य पेज इस श्रेणी में आते हैं।

@DograVirasat डोगराओं के इतिहास को एक विशेष तरह से याद करता है, जो अन्य पेज नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि यह न केवल विशेष घटनाओं और अनुष्ठानों का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करता है, बल्कि यह उन कहानियों का भी दस्तावेजीकरण करता है, जो इस समूह की संस्कृतियों से निकटता से जुड़ी हुई हैं। इस प्रकार यह युवाओं को उनकी जड़ों से जोड़े रखते हुए समुदाय के लिए सामूहिक यादों को सुरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। डोगरा विरासत द्वारा साझा किए गए पोस्ट, वीडियो और लेख दर्शकों को डोगरा समुदाय द्वारा भारतीय संस्कृति में किए गए महत्त्वपूर्ण योगदान को अधिक व्यापक रूप से दिखाने का काम करते हैं। लोक परंपरा पर केंद्रित एक अन्य सोशल

मीडिया पेज @DogriFolk है। यह पृष्ठ अन्य विशेषताओं के अलावा डोगरी लोक नृत्य परंपराओं के साथ-साथ डोगरी लोक संगीत और डोगरी समूहों के लिए मौखिक परंपराओं के बीच स्पष्ट अंतर दिखाता है।

आधुनिकीकरण के कारण लुप्त हो रही इन पारंपरिक प्रथाओं के संरक्षण को ऑडियो रिकॉर्डिंग, उनके अभ्यास के तरीके व लोक-कथाओं के कुछ तत्त्वों को शामिल करके वीडियो रिकॉर्डिंग के माध्यम से आगे बढ़ाया गया है। इस पृष्ठ पर डोगरी मौखिक परंपराओं, संगीत और नृत्य शैलियों की कुछ अनूठी विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है। इसी तरह, डोगरी लोक द्वारा इनकी रिकॉर्डिंग, प्रदर्शन और लोक-कथाओं का प्रसार करना, आधुनिकीकरण के प्रभावों के कारण प्रासंगिकता खो रही इन पारंपरिक प्रथाओं के संरक्षण और पुनरुद्धार में सहायता करता है।

डिजिटल मीडिया के माध्यम से माओरी संस्कृति का संरक्षण

अपनी भाषाओं और संस्कृतियों की उन्नति के लिए इंटरनेट माध्यम के उपयोग का एक उदाहरण न्यूजीलैंड के माओरी लोग हैं। माओरी भाषा सीखने वालों के लिए, भाषा और सांस्कृतिक पूछताछ के लिए ऑनलाइन ऐप, 'ते आका' माओरी डिक्शनरी और ऑनलाइन साइट को एक उत्कृष्ट स्रोत माना जा सकता है। फेसबुक, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म माओरी संस्कृति को बढ़ावा देने के साथ-साथ भाषा के रख-रखाव के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान बन गए हैं। ये मंच माओरी समुदाय के सदस्यों के लिए अपने पारंपरिक ज्ञान, कहानियों, गीतों और नृत्यों को वैश्विक दर्शकों के साथ साझा करने के अवसर पैदा करते हैं। ये प्लेटफार्म पारंपरिक कला, शिल्प-हाका (औपचारिक नृत्य) और विभिन्न स्थानों पर आयोजित माओरी संस्कृति प्रस्तुत करते हैं। इसमें सामाजिक/पर्यावरण-सांस्कृतिक मानदंडों का पालन करके क्षेत्र अवलोकन का अनुभव भी शामिल है। इस संस्कृति के बारे में अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए माओरी और गैर-माओरी, दोनों द्वारा अन्य यूट्यूब चैनलों का भी उपयोग किया जा रहा है। इन विभिन्न प्रकार के सोशल मीडिया प्लेटफार्मों ने माओरी सांस्कृतिक नेताओं को विरासत के स्वदेशी स्वरूप के निरंतर रख-रखाव की बढ़ती इच्छा में योगदान करते हुए सहायता दी है।

डिजिटल कहानी सुनाना भी स्वदेशी माओरी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने का एक उपयोगी तरीका है। डिजिटल आख्यान और वार्तालापों का उपयोग करके भी ऐतिहासिक ज्ञान, पैतृक आख्यानों और अनुभवों का दस्तावेजीकरण कर सकते हैं। सार्वजनिक संग्रहालयों, शैक्षणिक संस्थानों या सांस्कृतिक संगठनों के पेशेवर समर्थन के साथ डिजिटल मीडिया परियोजनाओं के माध्यम से इन कथाओं को सार्वजनिक या ट्रांस पीढ़ी-गत दर्शकों के लिए संरक्षित किया जा सकता है (अजानी एट अल., 2024)। चूँकि ये कहानियाँ सहयोगी डिजिटल अभिलेखागार के माध्यम से सहेजी गई और उपलब्ध हैं, इसलिए इनके पूरी तरह खत्म न होने की संभावना है। इस प्रथा को स्पष्ट करने के लिए डिजिटलीकृत ऐतिहासिक दस्तावेज, तस्वीरें और मौखिक इतिहास अमूल्य सांस्कृतिक कलाकृतियों के संरक्षण की याद दिलाते हैं, जबकि पहले लोगों को लगता था कि सांस्कृतिक संस्थानों और शोधकर्ताओं के सहयोग से इन अभिलेखों को सहेजना या दिखाना असंभव है। यद्यपि, वे माओरी इतिहास और संस्कृति में रुचि रखने वाले शोधकर्ताओं और छात्रों के लिए एक ज्ञान स्रोत प्रदान करते हैं। ये डिजिटल कहानियाँ गैर-विशेषज्ञ आम शिक्षक के लिए मूल्यवान सांस्कृतिक शिक्षण के अनुभव के रूप में काम कर सकती हैं। इसके अलावा, यह माओरी समुदाय को अपने पूर्वजों की स्मृति का जश्न मनाने और कभी-कभी उपनिवेश संबंधी ऐतिहासिक विस्मृति की प्रतिक्रिया के रूप में अपनी जड़ों को बहाल करने में सक्षम बनाएगी।

शोध परिणाम एवं विश्लेषण

शोध के परिणामों का विश्लेषण अनुसंधान के उद्देश्यों के आधार पर किया गया, जिसमें सोशल मीडिया के माध्यम से डोगरा संस्कृति के प्रचार-प्रसार, प्रभाव और इससे जुड़े विभिन्न पहलुओं का अध्ययन शामिल था। गुणात्मक और मात्रात्मक डेटा के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष निम्नलिखित हैं :

1. **डोगरा संस्कृति का डिजिटल प्रतिनिधित्व :** सोशल मीडिया पर उपलब्ध सामग्री की गहन समीक्षा से यह पाया गया कि डोगरा संस्कृति का प्रचार करने वाले अधिकतर पोस्ट और वीडियो कला, संगीत, पारंपरिक वेश-भूषा और व्यंजनों पर केंद्रित होते हैं। इस सामग्री में प्रमुख रूप से स्थानीय पर्व, त्योहार और सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रदर्शन किया जाता है, जो डोगरा संस्कृति की विशिष्टता को उजागर करते हैं।
2. **प्रभावशाली हस्तियों की भूमिका :** साक्षात्कार और सामग्री विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि सोशल मीडिया पर सक्रिय प्रभावशाली हस्तियों और कलाकारों का संस्कृति के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने न केवल संस्कृति के तत्त्वों को डिजिटल माध्यम से प्रस्तुत किया, बल्कि सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करने में भी मदद की। उनके द्वारा प्रस्तुत सामग्री को व्यापक दर्शकों द्वारा सराहा गया, जिससे डोगरा संस्कृति को अधिक लोकप्रियता मिली।
3. **सामाजिक जुड़ाव और भागीदारी :** सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की प्रतिक्रिया का विश्लेषण यह दर्शाता है कि डोगरा संस्कृति से जुड़ी सामग्री पर उच्च स्तर का जुड़ाव देखने को मिला। लाइक, शेयर और कमेंट के रूप में यह जुड़ाव दर्शाता है कि डोगरा समुदाय के लोग और अन्य सांस्कृतिक उत्साही इस प्रकार की सामग्री के प्रति रुचि रखते हैं।
4. **सांस्कृतिक पहचान पर प्रभाव :** अनुसंधान से यह पता चला कि सोशल मीडिया पर सांस्कृतिक सामग्री के निरंतर प्रसार ने डोगरा समुदाय की सांस्कृतिक पहचान को पुनर्स्थापित और मजबूत किया है। विशेष रूप से युवा पीढ़ी में, जो डिजिटल प्लेटफार्मों का अधिक उपयोग करती है, इस सामग्री ने संस्कृति के प्रति गर्व और जुड़ाव को बढ़ावा दिया है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि डिजिटल माध्यमों ने पारंपरिक संस्कृतियों के पुनर्जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और इसमें युवाओं का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। डिजिटल प्लेटफॉर्म केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं, बल्कि पारंपरिक संस्कृति के संवाहक भी बन गए हैं। हालाँकि, इस क्षेत्र में और गहन अध्ययन की आवश्यकता है, ताकि पारंपरिक संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में डिजिटल माध्यमों की संभावनाओं को पूरी तरह समझा जा सके। शोध से स्पष्ट है कि डिजिटल

माध्यम, विशेषकर सोशल मीडिया मंच, डोगरा और माओरी संस्कृतियों को पुनर्जीवित करने और उनके प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। शोध के निष्कर्षों से यह सिद्ध होता है कि ये प्लेटफार्म केवल सांस्कृतिक सामग्री को साझा करने के माध्यम नहीं हैं, बल्कि ये समुदायों के बीच संबंध स्थापित करने, सांस्कृतिक जागरूकता बढ़ाने और पहचान को सशक्त करने के साधन भी बन गए हैं। डोगरा समुदाय ने डिजिटल तकनीकों का उपयोग करके अपनी सांस्कृतिक धरोहर को साझा करने के लिए ऑनलाइन समूह और समुदायों का निर्माण किया है। फेसबुक, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे प्लेटफार्मों ने उन्हें अपनी परंपराओं, संगीत, नृत्य और अन्य सांस्कृतिक तत्त्वों का न केवल दस्तावेजीकरण करने, बल्कि वैश्विक दर्शकों के साथ उन्हें साझा करने का भी अवसर प्रदान किया है। वहीं, माओरी समुदाय ने भी डिजिटल मीडिया का प्रभावी उपयोग करते हुए अपनी सांस्कृतिक पहचान को पुनर्जीवित करने में सफलताएँ हासिल की हैं। इस समुदाय के लोगों के द्वारा बनाए गए डिजिटल संसाधन और अभियानों ने सांस्कृतिक मूल्यों, रीति-रिवाजों और भाषाई धरोहर को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उदाहरण के लिए, 'ते आका' माओरी डिक्शनरी' और #WeAreMaori जैसे अभियानों ने माओरी संस्कृति को वैश्विक मंच पर लाने में मदद की है, जिससे इंटरैक्टिव और समावेशी संवाद स्थापित हुआ है। इस अध्ययन का एक प्रमुख निष्कर्ष यह है कि डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से सांस्कृतिक संरक्षण का कार्य न केवल सूचना के आदान-प्रदान तक सीमित है, बल्कि यह सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने, सामुदायिक सशक्तीकरण और अंतर-सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा देने में भी महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही यह भी महत्त्वपूर्ण है कि समुदायों को डिजिटल साक्षरता और नैतिक जागरूकता प्रदान की जाए, ताकि वे अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सम्मानपूर्वक और सटीक रूप से प्रस्तुत कर सकें। भविष्य में यह आवश्यक है कि सांस्कृतिक संस्थाएँ और समुदाय डिजिटल प्लेटफार्मों का अधिकतम उपयोग करें। इस दिशा में शिक्षा, प्रशिक्षण और सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देना महत्त्वपूर्ण होगा। इससे न केवल सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण होगा, बल्कि यह नई पीढ़ियों को अपनी पहचान से जोड़ने में भी सहायक सिद्ध होगा। अंततः यह शोध डोगरा और माओरी संस्कृतियों की समृद्धि, पहचान और वैश्विक एकता की दिशा में एक सकारात्मक कदम है, जो आने वाले समय में इन संस्कृतियों के विकास और स्थायित्व को सुनिश्चित करने में सहायक होगा। डिजिटल माध्यमों के उपयोग से न केवल परंपराएँ जीवित रहेंगी, बल्कि वे भविष्य की पीढ़ियों को भी प्रेरित करेंगी, ताकि वे अपनी सांस्कृतिक जड़ों को पहचान सकें और उन पर गर्व कर सकें।

यह अध्ययन मुख्यतः भारतीय डोगरा समुदाय और न्यूज़ीलैंड के माओरी समुदाय पर केंद्रित है। अन्य सांस्कृतिक समूहों और भौगोलिक क्षेत्रों को इस अध्ययन में शामिल नहीं किया गया है।

संदर्भ

अजानी, वाई. ए., ओलाडोकुन, बी. डी., ओलारोंगबे, एस. ए., अमाची, एम. एन., रबीउ, एन. एंड बशोरुन, एम. टी. (2024). रीवाइटलीजिंग इंडिजेनस नॉलेज सिस्टमस वाया डिजिटल मीडिया टेक्नोलॉजीज फॉर सस्टेनेबिलिटी ऑफ इंडिजेनस लैंग्वेजेज. प्रीजर्वेशन, डिजिटल टेक्नोलॉजी एंड कल्चर, 53(1), 35-44.

कौट्रोमानोस, जी., कौकोपोलोस, डी., कौकोपोलोस, जेड., और मौजाकिस, सी. (2023). कल्चरल हेरिटेज कंटेंट डेवलपमेंट एंड डिसेमिनेशन थ्रू अ पार्टिसिपेटरी प्लेटफार्म : लेस्संस लर्न्ड फ्रॉम इन-सर्विस टीचर्स परसेप्शन. एजुकेशन एंड इनफार्मेशन टेक्नोलॉजीज, 28(3), 3513-3536.

जाति, आर.पी (2023). कल्चरल आइडेंटिटी एंड कम्युनिटी मीडिया : एंपावरिंग द कल्चरल कम्युनिटी.

जुंटिला, डब्ल्यू., ओसोर्नो. आर, और तरन, ई.एल. (2024). पोहिनोनाव टू बोटोसनों (टीचिंग ऑफ कल्चर) : प्रिजर्विंग, प्रमोटिंग एंड सस्टेनिंग ऑफ ओबो-मोनुवु इंडिजेनस कल्चरल हेरिटेज. इगनेशन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसीप्लीनरी रिसर्च, 2(2), 150-168.

त्रिभुवन, एम. पी. (2024). प्रीजर्विंग आवर पास्ट : अ थॉरो एग्जामिनेशन ऑफ मेथड्स एंड टेक्नोलॉजीज इन डिजिटल हेरिटेज. https://www.researchgate.net/publication/380750248_Preserving_Our_Past_A_Thorough_Examination_of_Methods_and_Technologies_in_Digital_Heritage से पुन:प्राप्त

दा मिलानो, सी., फालचेती, ई., मिगोन, पी., और निसी, वी. (2023). डिजिटल स्टोरीटेलिंग, कल्चरल हेरिटेज एंड सोशल इनक्लूजन : द मिमिक्स प्रोजेक्ट. इन डिजिटल अप्प्रोचेस् टू इनक्लूजन एंड पार्टिसिपेशन इन कल्चरल हेरिटेज (पीपी 8-26). रोउटलेज.

नंदूरी, डी. के. (2024). ऐक्सप्लोरिंग द रोल ऑफ जेनरेटिव आर्टीफिशल इंटेलिजेंस इन कल्चरली रिलेवेंट स्टोरीटेलिंग फॉर नेटिव लैंग्वेज लर्निंग अमंग चिल्ड्रन. मास्टर्स थीसिस, यूनिवर्सिटी ऑफ मेरीलैंड, कॉलेज पार्क.

मुनोज-डियाज, जे., इबाचे, के., और गोमेज, एल. (2024). इंडिजेनस मैटेरियल्स इन लाइब्रेरीज एंड द करिकुलम; लैटिन अमेरिकन एंड लैटिंस सोर्सेज. टेलर एंड फ्रांसिस.

लिली, एस., ओलिवर, जी., क्रेनफील्ड, जेण., और लेवेलेन, एम. (2024). माओरी डाटा सोवेरेटी कंट्रिब्यूशंस टू डेटा कल्चर्स इन द गवर्नमेंट सेक्टर इन न्यूजीलैंड. इनफार्मेशन, कम्युनिकेशन & सोसाइटी, 1-16.

सबरीराजन, ए., रेड्डी, एल. टी., रंगिनेनी, एसण., रेगिन, आर., राजेस्ट, एसण. एस., एंड परमसिवन, पी. (2024). लेवेरजिंग एमआईएस टेक्नोलॉजीज फॉर प्रीजर्विंग इंडियाज कल्चरल हेरिटेज ऑन डिजिटाइज़ेशन, एक्सेसबिलिटी एंड सस्टेनेबिलिटी. इन डेटा ड्रिवन इंटेलीजेंट बिजनेस सस्टेनबिलिटी (पीपी. 122-135) आईजीआई ग्लोबल.

हटसन, जे., एल्सवर्थ, पी., और एल्सवर्थ, एम. (2024). प्रीजर्विंग लिंगविस्टिक डाइवर्सिटी इन द डिजिटल ऐज : अ स्केलेबल मॉडल फॉर कल्चरल हेरिटेज कॉण्टिनुइटी. जर्नल ऑफ कंटेंपरेरी लैंग्वेज रिसर्च, 3(1).

हिदायत, आई. आई., नूरहयाती, एसण., एंड बोरिबून, जी. (2024). वोकेशनल हाई स्कूल कम्युनिटी सर्विस एज इनोवेटिव कम्युनिटी इंपॉवरमेंट प्रोग्राम : अ केस स्टडी ऑफ गरुट वोकेशनल हाई स्कूल. जर्नल पेडागोगी, 11(1), 48-60.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 86-91, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता में राष्ट्रीय संचेतना का अनुशीलन

आदित्य देव त्यागी[1] और प्रो. (डॉ.) प्रशांत कुमार[2]

सारांश

भारतीय पत्रकारिता में राष्ट्रवादी पत्रकारिता के अप्रतिम हस्ताक्षर रहे भानुप्रताप शुक्ल ने अपने लेखन से अनूठी छाप छोड़ी है। शुक्ल का लेखन पाठकों में राष्ट्रीय संचेतना के भाव जागरण के साथ ही उनको समकालीन पत्रकारों में अग्रणी बनाता है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक जिस भी क्षेत्र से जुड़ा विषय उनके दृष्टिपथ में आया, वही संपादकीय प्रणयन का आधार बन गया। शुक्ल एक मौलिक, सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक विचारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके राष्ट्रीय विचारों के मूल में विश्व, राष्ट्र, समाज, परिवार, व्यक्ति से लेकर मानवीय विकास की सनातन परंपरा निहित है। वे 'स्व' तथा 'स्वदेशी' में ही भारतीयों के आत्मोत्थान का मार्ग देखते हैं। आजीवन लोक कल्याणकारी राष्ट्र के निर्माण में राजनीतिक शुचिता के पक्षधर रहे शुक्ल की शिराओं में राष्ट्रीयता का ज्वार हर कदम पर अनुभव किया जा सकता है। उनके विचार-चिंतन में उन तर्कों तथा तत्त्वों का समावेश अनुभूत किया जा सकता है, जो हम सभी ने वेद से लेकर विवेकानंद तक से सुने और समझे हैं। 'राष्ट्रधर्म' और 'पाञ्चजन्य' को अपनी लेखनी से अभिषिक्त करने वाले भानुप्रताप शुक्ल के राष्ट्रीय चिंतन पक्ष पर पर्याप्त विमर्श तो होता रहा है, किंतु अकादमिक जगत् में उनके पत्रकार जीवन के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष पर शोध की स्थिति नगण्य रही है। शुक्ल की पत्रकारिता में राष्ट्रीय संचेतना को समग्रता में समझने के लिए उनके आलेखों, पुस्तकों, वक्तव्यों का अध्ययन अपेक्षित है। शोधार्थियों ने प्रस्तुत शोध में इसी बिंदु को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययन का प्रयास किया है। शोध अध्ययन का मुख्य प्रश्न वर्तमान पीढ़ी के पत्रकारों, संपादकों तथा स्तंभ लेखकों के लिए भानुप्रताप शुक्ल की राष्ट्रीय संचेतना की प्रासंगिकता है। उनका राष्ट्रीय चिंतन आज भी राजनेताओं तथा समाज सुधारकों के लिए पाथेय बना हुआ है। ऐसे में शुक्ल की पत्रकारिता में राष्ट्रीय संचेतना पक्ष पर गहन शोध की आवश्यकता है। शोध अध्ययन के निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि शुक्ल एक प्रखर राष्ट्रीय चिंतक, विचारक तथा पत्रकार के रूप में सदैव प्रासंगिक बने रहेंगे। उनका सीधा, सपाट लेखन एक ओर जहाँ व्यवस्था पर गहरी चोट करता है, तो वहीं उनका चुटीला अंदाज पाठकों को अंदर तक झकझोर जाता है।

संकेत शब्द : भानुप्रताप शुक्ल, राष्ट्रीय संचेतना, भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, राष्ट्रचिंतन

प्रस्तावना

अखंड भारत के विचार के आस्थावान् वाहक रहे भानुप्रताप शुक्ल भारतीय संदर्भ में राष्ट्रीयता को सांस्कृतिक समृद्धि का आधार मानते हैं। उनका चिंतन माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर श्री गुरु जी के द्वारा प्रस्तुत मानवीय भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकल्पना का उद्घोष है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद मानव की स्वाभाविक विविधता का सर्जक है। शुक्ल की राष्ट्रीय संचेतना दीनदयाल उपाध्याय से भी संबल प्राप्त करती है, जिसमें वह सगर्व घोषणा करते हैं, "यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता, जो कि हिंदू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति, जो कि हिंदू संस्कृति है, उसका दर्शन करें, उसे मानदंड मानकर चलें। भागीरथी की इस पुण्य धारा में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सभी कालिमा खोकर गंगा की धवल धारा में एकरूप हो जाएगी" (उपाध्याय, 1952, पृष्ठ-33)। शुक्ल की पत्रकारिता न केवल राष्ट्रीय संचेतना को स्वर प्रदान करती है, अपितु राष्ट्रहित और लोक कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करती है। उसमें राष्ट्रीयता, संस्कृति तथा जीवन मूल्यों का बोध जाग्रत किए जाने का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे केवल समस्याओं को इंगित करके अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर लेते, बल्कि अनुभवजन्य समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। एक पत्रकार, समालोचक के रूप में उनका प्रखर चिंतन राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक उन्नयन का सार्वकालिक दिशाबोध है। वे एक ऐसे वैचारिक योद्धा के रूप में उपस्थित होते हैं, जो वर्तमान पीढ़ी से तर्क के आधार पर बात करते हैं। अपने तर्क से विरोधियों को निरुत्तर कर देते हैं। वे अपने लेखन से इस देश की राष्ट्रीय चेतना को संदर्भों के साथ स्थापित करते हैं। अपने गहन और सारगर्भित अध्ययन तथा मूल चिंतन तथा सातत्यपूर्ण लेखन से राष्ट्रीय विमर्श को परिपुष्ट करते रहने वाले रहे भानुप्रताप शुक्ल सच्चे अर्थों में राष्ट्र-साधक कहे जा सकते हैं।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता में राष्ट्रीय संचेतना के विविध पक्षों का अध्ययन करना।
2. भानुप्रताप शुक्ल द्वारा लिखित आलेखों तथा संपादकीयों में रेखांकित राष्ट्रीय संचेतना का विश्लेषण करना।
3. राष्ट्रीय संचेतना के जागरण में भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता की मीमांसा करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु विषयवस्तु विश्लेषण पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों से सामग्री संकलन किया गया है। तथ्यों के संकलन के क्रम में पुस्तकालयों, विविध राष्ट्रीय समाचार पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा भानुप्रताप शुक्ल पर प्रकाशित हुए आलेखों एवं पुस्तकों से सहायता ली गई है। मुख्य रूप से तथ्यों का प्रमुख स्रोत 15 भागों में उपलब्ध भानुप्रताप शुक्ल समग्र है, जो

[1]शोध छात्र, तिलक पत्रकारिता एवं जन संचार स्कूल, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ. ईमेल : aditya.reporter@gmail.com
[2]निदेशक, तिलक पत्रकारिता एवं जन संचार स्कूल, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ. ईमेल : prashantmrsingh@gmail.com

उनके द्वारा लिखित आलेखों, संस्मरणों एवं स्तंभ लेखों का संकलन है।

भानुप्रताप शुक्ल का परिचय

उत्तर प्रदेश के जनपद बस्ती स्थित ग्राम राजपुर बैरिहवाँ में संवत् 1992, शाके 1857, श्रावण शुक्ल अष्टमी तदनुसार 7 अगस्त, 1935 को जन्मे राष्ट्रवादी पत्रकारिता के अप्रतिम शलाकापुरुष भानुप्रताप शुक्ल अपने पिता पंडित अभयनारायण शुक्ल की एकमात्र संतान थे। जन्म के मात्र 12 दिन बाद ही माँ का निधन हो जाने के कारण उनका पालन-पोषण उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर में नाना जगदंबा प्रसाद तिवारी के घर हुआ। वर्ष 1951 में संघ परिचय हुआ और 1955 में बतौर प्रचारक उन्होंने अपना जीवन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को समर्पित कर दिया। उनके प्रचारक जीवन के दौरान ही संघ का प्रचार विभाग गति पकड़ रहा था। उस दौर में संघ की ओर से लखनऊ में तत्कालीन प्रांत प्रचारक भाऊराव देवरस और सहप्रांत प्रचारक दीनदयाल उपाध्याय के दिशा-निर्देशन में अनेक हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा था। भानु जी की लेखन प्रतिभा से प्रभावित होकर उनको लखनऊ केंद्र बुला लिया गया। कालांतर में वे लोकगीतों के उन्नायक पंडित रामनरेश त्रिपाठी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेंद्र कुमार, भवानी प्रसाद मिश्र एवं श्रीनारायण चतुर्वेदी जैसे साहित्यकारों के संपर्क में आए। इसका प्रभाव उनके भाषा पांडित्य में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। सारगर्भित भाषा और शुद्ध वर्तनी के प्रति उनका अनुराग अनुकरणीय है।

संपादकाचार्य पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी के सान्निध्य में पत्रकारिता का ककहरा सीखने वाले भानु जी एक प्रखर और प्रबुद्ध पत्रकार के रूप में स्थापित हुए। वे आजीवन गुरु-शिष्य परंपरा के पत्रकार बने रहे। वे उस परंपरा के पत्रकार थे, जिसमें खुद पठन किया जाता था, चिंतन किया जाता था तब कहीं जाकर लेखन किया जाता था। उन्होंने पत्रकारिता में प्रवेश पाने के लिए शब्द-साधना को आत्मसात् किया, पर्यायों के अति सूक्ष्म अंतर को हृदयंगम किया। शब्दों का प्रयोग करने से पूर्व उन्होंने शब्द ग्रहण करने के लिए अभ्यास किया। राष्ट्रभक्ति उनके चित्त और चिंतन में समाहित थी। सत्य, निष्पक्ष और निर्भीक पत्रकारिता को समर्पित उनका लेखन सदैव कालजयी बना रहा। अपनी असाधारण प्रतिभा के चलते उन्होंने 'राष्ट्रधर्म' (मासिक) और तत्पश्चात् 'तरुण भारत' (दैनिक) समाचार पत्र का संपादकीय उत्तरदायित्व निभाया। सांस्कृतिक चेतना एवं संस्कृतिमूलक विचारवाहक मासिक पत्र 'राष्ट्रधर्म' में उन्होंने सितंबर, 1973 से जून, 1975 तक 'मनोगत' शीर्षक से लेखन किया। इसी पत्र में भानु जी ने 'देखा-सुना' स्तंभ के अंतर्गत छद्म नाम 'आदित्य' से भी लेखन किया था। उनके संपादन में इस पत्र के तीन विशेषांक पहला 'स्मृति अंक (फरवरी, 1974)', दूसरा 'लोककथा साहित्य अंक (अगस्त, 1974)' तथा तीसरा 'रहस्य रोमांच अंक (नवंबर, 1974) में प्रकाशित हुए। वर्ष 1975 में आपातकाल थोपे जाने पर 'पाञ्चजन्य' को लखनऊ से दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया। फलस्वरूप भानु जी का केंद्र भी दिल्ली हो गया और अंतिम श्वासपर्यंत उनकी गतिविधियों का केंद्र बना रहा। आपातकाल में भूमिगत रहकर उन्होंने इंदिरा गांधी की तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष किया। कालांतर में उन्होंने 'पाञ्चजन्य' का भी संपादन किया। उनके संपादकत्व में 'पाञ्चजन्य' के 'चेतना अंक (10 नवंबर, 1985)' तथा 'चरित्र अंक (2 नवंबर, 1986)' का प्रकाशन हुआ। वर्ष 1990 के श्रीराम मंदिर आंदोलन के प्रत्यक्षदर्शी रहे भानु जी ने समूचे विश्व को पूरी सक्रियता से आंदोलन के सत्य और तथ्य का परिचय कराया। वर्ष 1994 में 'पाञ्चजन्य' से अलग होने के बाद अपने स्वतंत्र लेखन से उन्होंने दैनिक जागरण, तरुण भारत, राष्ट्रीय सहारा, पंजाब केसरी, हिंद समाचार, स्वदेश, वीर अर्जुन, राँची एक्सप्रेस, जगवाणी, सामना जैसे प्रमुख समाचार पत्रों को अभिसिंचित किया। उनका साप्ताहिक स्तंभ 'राष्ट्रचिंतन' बहुत लोकप्रिय हुआ। पंजाब केसरी के उर्दू संस्करण में 'हिंद समाचार' तथा गुरुमुखी संस्करण में 'जगवाणी' स्तंभों ने भी खासी लोकप्रियता अर्जित की।

भानु जी ने राष्ट्र, ईमानवाले जैसी अनेक वैचारिक पुस्तकों की विस्तृत भूमिकाएँ लिखने के साथ ही अनेक पुस्तकें भी लिखीं, जिनमें राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान, रामजन्मभूमि का सच, राष्ट्र जीवन की दिशा, सावरकर विचार दर्शन, स्वदेशी चेतना, कश्मीर, कीर्ति कलश, भाषा और जीवन मूल्य, यक्ष प्रश्न, अयोध्या, अड़तीस कहानियाँ, आँखिन देखी कानन सुनी, कल्पवृक्ष, संकेत रेखा, राष्ट्रीयता के बिसराव का आतंक उल्लेखनीय हैं। कैंसर जैसे असाध्य रोग से जूझते हुए उन्होंने लेखन का क्रम अनवरत बनाए रखा। समाचार पत्रों में स्तंभ के रूप में लिखे गए लेखों को सामान्यतः क्षणिक सामयिक उपयोगिता वाला माना जाता है, लेकिन भानु जी इस स्थापित अवधारणा को तोड़ते हैं। उनके स्तंभ सामयिक होने के साथ ही चिंतन का जो आधार तैयार करते हैं, वह शाश्वत सत्य की प्रस्तुति का है। ये ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं, जिनमें देश, काल व समाज का संक्षिप्त इतिहास दृष्टिगोचर होता है।

भानु जी ने आलेखों के माध्यम से भारतीय संस्कृति की गणना परंपरा, राजनीति की गर्वोज्ज्वल परंपरा, राजनीति की मर्यादा और संपूर्ण सामाजिक, आर्थिक जीवन की लक्ष्मण रेखाओं को परिभाषित करने का प्रयास किया। उनकी प्रखर लेखनी से निःसृत आलेख राष्ट्रवादी विचारधारा के संपोषक हैं। आलेखों का प्राणतत्त्व एक जन, एक संस्कृति और एक राष्ट्र का अजर और अमर भाव का रहा है। भानु जी के समस्त लेखन पर उनके निर्विकार व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप झलकती है। वह जैसे थे वैसा ही लिखते थे। देहावसान से तीन दिन पूर्व तक उनका साप्ताहिक स्तंभ 'राष्ट्रचिंतन' देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्र 'दैनिक जागरण' में निरंतर प्रकाशित होता रहा। राष्ट्र की अवधारणा व स्वरूप को नवीन भाव-लोक प्रदान करने वाले भानु जी 17 अगस्त, 2006 को इस नश्वर संसार से विदा हो गए।

राष्ट्रवाद की संकल्पना

शुक्ल राष्ट्रवाद की दो संकल्पनाओं का वर्णन करते हैं। पहला भौगोलिक अर्थात् क्षेत्रीय राष्ट्रवाद, जिसका रूप आंचलिक है। उसकी आंचलिकता ही उसके लिए सर्वोपरि है। देश के दूसरे भागों से अपनी अलग पहचान बनाए रखना ही उसकी मानसिकता है। ऐसा राष्ट्र एकीकृत, सुगठित इकाई की तरह चिंतन न करके अलग-अलग समस्याओं के अलग-अलग समाधान देखता है, उसमें हर तरह के अलगाव की सोच विद्यमान रहती है। वे दूसरी संकल्पना में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से परिचय कराते हैं, जिसका संदर्भ सांस्कृतिक होता है, जो उस राष्ट्र की समस्त विविधताओं को सँजोकर और जोड़कर रखती है। संस्कृति अलगाव के स्थान पर एकात्म की अनुभूति जगाती है। ऐसे में भौगोलिक राष्ट्र जहाँ

संकुचित एवं सांप्रदायिक है, वहीं सांस्कृतिक राष्ट्र संपूर्ण, समग्र तथा व्यापक होता है। सांस्कृतिक राष्ट्र की निर्मिति पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल कहते हैं, "जिस विविधता और अनेकता में एकता की बात हम करते हैं, उस एकता का सूत्र भूगोल नहीं, संस्कृति बनाती है। भूमि तो किसी राष्ट्र की मात्र प्रयोग-भूमि होती है। उस जमीन में अपनी जिंदगी का बीज बोकर वहाँ के निवासी जिस दर्शन, जिस संस्कृति, जिस एकात्म एहसास की फसल उगाते हैं, वही राष्ट्र बनता है।" (शुक्ल, 2017, पृष्ठ-32)।

शुक्ल अथर्ववेद की विविध ऋचाओं के माध्यम से यह सिद्ध करने में सफल होते हैं कि भारत में संतों और ऋषियों के द्वारा मानव इतिहास के आविर्भाव काल से भारत भूमि की वंदना की जाती रही है। स्वतंत्रता के बाद के 'आधुनिक' भारत ने इस युगीन परंपरा को विस्मृत कर दिया है। वे प्राचीन, असंदिग्ध आदि राष्ट्र भारत के गौरवशाली इतिहास, साहित्य, संस्कृति व धर्म परंपरा से विमुख होकर आत्महीनता तथा अपराधबोध से भरे तथाकथित विचारकों के भारत के राष्ट्र संबंधी आधुनिक चिंतन को अस्वीकार कर देते हैं। शुक्ल ऐसे चिंतन में आधुनिक भारत की संपूर्ण यात्रा को दिशाहीन और नकल पर आधारित मानते हैं। उनका विश्वास है कि इस यात्रा के प्रतिफल में भारत अपनी मौलिकता गँवाकर जो कुछ भी अर्जित करेगा, वह अनुकरण के अलावा कुछ नहीं होगा। शुक्ल की वैचारिकी में भारतीय संदर्भ में राष्ट्र वह है, जिसकी वैदिक काल में ऋषियों ने मातृभूमि कहकर वंदना की थी, जिसकी अस्मिता और ओज की रक्षा के लिए बलिदान की परंपरा आज तक अनवरत बनी हुई है। शुक्ल के विचार में भारत राष्ट्र यहाँ के आमजन की वह अनुभूति है, जो राज्यों का अस्तित्व समाप्त हो जाने के बाद भी विद्यमान है। शुक्ल कहते हैं, "...राज्य चाहे जिसका रहा हो, 'राष्ट्र' इस देश के आम आदमी का ही रहा। वही आम आदमी भारत के आधुनिक जनतंत्र का 'जन' है। किसी भूमि में राज्य नहीं, वहाँ का 'जन', उसका धर्म (मजहब नहीं) और जीवन दर्शन ही वहाँ का राष्ट्र होता है।" (शुक्ल, 2017, पृष्ठ-11)।

स्वतंत्रता के बाद पश्चिमी व्यवस्था का परीक्षण किए बिना उसे देश पर थोपे जाने तथा भारत के पश्चिम के साँचे में ढलने को ही आधुनिक होना मान लेना शुक्ल को रास नहीं आता। कुछ अपवाद के अलावा देश को नेतृत्व देने वाले लोग अपने इतिहास के प्रति अपराधबोध से ग्रस्त थे। जो कुछ भी दूसरों से सुना गया, उसे ही सत्य मान लिया गया। आर्थिक विकास से लेकर राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था तक में यही हाल रहा। भारतीय संविधान, लोकतंत्र तथा पंथ निरपेक्षता की आधारभूमि पश्चिमी चिंतन को मान लिया गया। शुक्ल उस अंधानुकरण से व्यथित होते हैं, जिसमें राष्ट्रीय हित पर मजहबी हित प्रभावी माने जाने लगे, भारत की विविधता को अनेक राष्ट्रीयताएँ और संस्कृति माना जाने लगा। वे भारत के अनेक राष्ट्रों का एक संघ राज्य होने की अवधारणा को चर्च से आविर्भाव पाने वाली सेक्युलरिटी की नकल का परिणाम मानते हैं। शुक्ल उस वैचारिकी पर भी प्रश्न खड़ा करते हैं, जिसे लगता है कि भारत राष्ट्र का जन्म 15 अगस्त, 1947 को ही हुआ था। उनके विचार में ऐसे लोग हजारों वर्ष की आयु वाले भारत राष्ट्र की गौरवशाली यात्रा की अनुभूति करने में असफल रहे हैं। उनका मत है कि यदि उनको ऐसी अनुभूति हुई होती तो वे अथर्ववेद के अतीत तक जाते, उसके पन्ने पलटते तो तानाशाही, समाजवाद या दोषपूर्ण लोकतंत्र में नहीं उलझते। शुक्ल लिखते हैं, "...अथर्ववेद में स्वराज्य से लेकर वैराज्य तक अर्थ और राज्य व्यवस्था के इतने प्रकार बताए गए हैं कि आधुनिक विश्व उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता।" (शुक्ल, 2008, पृष्ठ-16)।

हिंदू राष्ट्र की संकल्पना

शुक्ल स्पष्टता से स्वीकार करते हैं कि कालांतर में समाजवाद ने आर्थिक लोकतंत्र का मार्ग अवरुद्ध किया तो सेकुलरिज्म की संकल्पना भारतीय चेतना से अभिप्रेरित सर्वधर्म समभाव को निगल गई। पश्चिम से उधार ली गई लोकतांत्रिक प्रणाली ने भारतीयों को केवल मतदाता बनाकर रख दिया। एक भारतीय नागरिक मात्र मतदाता और उपभोक्ता बनकर संघर्ष कर रहा है। ऐसे में शुक्ल हिंदू राष्ट्र की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं, जिसमें लोकतंत्र का आधार 'लोक' को माना गया है। उसने निर्विकार राष्ट्रभक्ति की हमेशा आराधना की है। सभी पंथ और संप्रदायों को राष्ट्र विकास और संरक्षण के अनुष्ठान में समान भाव से सम्मिलित किया गया है। हिंदू राष्ट्र की संकल्पना में बहुसंख्यक अथवा अल्पसंख्यक नहीं, अपितु सभी को राष्ट्रजन माना गया है। शुक्ल के अनुसार, "...हिंदू राष्ट्र की सर्वधर्म समभावी व्यवस्था में अल्पसंख्यक समुदाय को कोई खतरा नहीं है। इतिहास साक्षी है कि हिंदू भारत में अल्पसंख्यकों की रक्षा ही नहीं की गई, अपितु उनका भरपूर पालन-पोषण भी किया गया। हिंदू राष्ट्र ने अल्पसंख्यक होने के कारण किसी को कभी कोई यातना नहीं दी। हिंदू मानस एकात्मवादी होता है। एकात्मता प्रताड़ित नहीं, पालन करती है। (शुक्ल, 2008, पृष्ठ-30)। उनके विचार से राष्ट्रीय एकता की कामना को उधार लिए गए सेक्युलरवाद और समाजवाद से नहीं, बल्कि हिंदुत्व के आधार पर ही पूर्ण किया जा सकता है। आज की समस्याओं के लिए हिंदुत्व की अवहेलना को मुख्य कारण बताते हुए शुक्ल कहते हैं कि भारत का पूरा तानाबाना हिंदुत्व के समष्टि भाव पर ही खड़ा है। उनका विचार है, "इस राष्ट्र को राजनीति नहीं, यहाँ के राष्ट्रीय समाज की एकरसता और एकात्मता ही एक और अखंड रख सकती है। यहाँ की विविधता में एकता का सूत्र यहाँ की हिंदू संस्कृति और परंपरा है। हिंदुत्व कोई भेद नहीं मानता। यदि हिंदुत्व का भाव जाग्रत रहा तो राजनीतिक सत्ता चाहे किसी की भी हो, राष्ट्रीय एकात्मता अक्षुण्ण रहेगी" (शुक्ल, 2017, पृष्ठ-143)।

इंडिया दैट इज भारत : संदेह और अस्पष्टता

शुक्ल मानते हैं कि विदेशी दासता से मुक्त होकर एक सार्वभौमिक गणतंत्र की घोषणा के साथ देश की जनता की ओर से भारतीय संविधान आत्म अर्पित किया गया, किंतु उसी समय हमसे एक बड़ी चूक हो गई। भारत शुद्ध भारत नहीं रहा, उसे हमने 'इंडिया छाप भारत' मान लिया। स्वतंत्रता के बाद पहले परिचय में ही राष्ट्र को 'इंडिया दैट इज भारत' कहकर पुकारा गया। शुक्ल राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान से लेकर सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था किए जाने के कालखंड में दो मूल तत्त्वों 'राष्ट्र' और 'राष्ट्र भाषा' के विवादास्पद रहने को दुर्भाग्यपूर्ण मानते हैं, जिसके कारण भारत आज भी राष्ट्रविहीन गणराज्य तथा भाषाविहीन राष्ट्र बना हुआ है। उनको आधुनिक भारत की यात्रा का प्रारंभ ही संदेह और अस्पष्टता से होना कचोटता है। एक सार्वभौम राष्ट्र घोषित होने के बाद भी 'इंडिया' भारत से आज भी उसके जीवित और अस्तित्ववान् होने का प्रमाण माँगती है।

देश को टुकड़ों में देखे जाने की प्रवृत्ति शुक्ल को हताश करती है। राज्यों के क्षुद्र हितों की तुलना में देश की समग्रता और राष्ट्र के समूचेपन

का संदर्भहीन हो जाना उनको व्यथित करता है। स्वार्थपरक चिंतन ने इस विशाल देश के विशाल जन समुदाय को समाजबोध से हीन जनसंख्या बना दिया है। वे मानते हैं कि जब समाज केवल संख्या जैसा आचरण करने लग जाता है तब वह भीड़ बन जाता है। उसका अपना व्यक्तित्व नहीं रह जाता। इस व्यक्तित्वहीनता से उपजे दलदल में देश डूब जाता है। शुक्ल की दृष्टि में भारतीय समाज के व्यक्तित्वहीन और संज्ञाहीन हो जाने से कालांतर में क्षेत्रीय समस्याएँ राष्ट्रीयता से मुख मोड़ने लगीं। सिद्धांत, सत्य और व्यक्तिगत संबंधों की व्यापकता वाले भारतीय समाज का मौलिक और स्थायी स्वरूप समाप्त होने लगा। रक्त, समाज, संस्कृति और परंपरा के संबंध सूत्रों को टूटता हुआ देख शुक्ल चिंतित हो उठते हैं। वे संवेदनाहीन समाज की दुर्दशा को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं, "वर्तमान भारत में संख्या बन गया व्यक्तित्वहीन जन समुदाय आज केवल चीख रहा है, वह अब गर्जना नहीं करता, उसके शब्द अब श्लोक नहीं बनते, उसे अब अपनी विविधता में एकता-एकात्मता नहीं विद्वेष, अलगाव और भेद दिखाई देने लगा है। एकदम उलट, एकदम अस्वाभाविक स्थिति में पहुँच गया है भारत का अपना हिंदुस्थान।" (शुक्ल, 2017, पृष्ठ-12)। शुक्ल एकात्म राष्ट्र को अनेक राष्ट्रों का समूह और राज्यों का राष्ट्र बताकर उसको खंड-खंड में विभक्त कर देने के योजनाबद्ध और धूर्ततापूर्ण राजनैतिक प्रयासों को भाँप लेते हैं। दक्षिण में सिर उठाने वाले द्रविड़िस्तान से लेकर पंजाब के खालिस्तान तक पर उनकी पैनी नजर रहती है। यद्यपि उनका अटूट विश्वास है कि किसी राज्य की सुख-सुविधा या क्षेत्रीय स्वार्थ राष्ट्रीय अस्मिता के साथ बहुत लंबे समय तक संघर्ष नहीं कर सकता है। लेकिन वे चेताना नहीं भूलते कि राजनैतिक दल कुटिलतापूर्वक संस्कृति को संप्रदाय बनाने तथा धर्म को मजहब का नाम दिए जाने का कोई अवसर गँवाना नहीं चाहते हैं। ऐसे समूहों का निरंतर प्रयास है कि भारतीय संस्कृति को रूपाकार नहीं लेने दिया जाए।

उपेक्षित राष्ट्रजन

शुक्ल के चिंतन में किसी राष्ट्र का उत्थान या पतन उसके शासकों के भाग्य परिवर्तन या उनकी जय-पराजय पर निर्भर न होकर उसके नागरिकों के पुरुषार्थ पर निर्भर है। राष्ट्र की प्राण शक्ति के रूप में राष्ट्रजन उसके भाग्य निर्माण, पालन-पोषण तथा उसकी रक्षा करने तक का दायित्व निर्वहन करते हैं। वे मानते हैं कि यदि राष्ट्रजनों का धैर्य टूटता है, उनमें परजीविता बढ़ती है या उदासीनता उनको जकड़ने लगती है तो सर्वशक्तिमान राष्ट्र भी पतन की ओर बढ़ने लगता है। दुर्भाग्य से भारतीय दृश्य बोध के संदर्भों में राष्ट्रजन आज ऐसी ही उपेक्षाओं से जूझ रहे हैं। आत्महीनता भाव से ग्रस्त होकर वे राष्ट्र के प्रति अपना दायित्वबोध भुलाकर केवल अधिकारों की बात करते हैं। राष्ट्र चिंतन का कार्य उन्होंने मुट्ठी भर लोगों पर छोड़ दिया है। शुक्ल अनुभव करते हैं कि सत्ता पक्ष और विपक्ष में उलझी राजनीति भी इस स्थिति को स्थायी बनाए रखने पर आमादा है। सत्ता के चतुर खिलाड़ी देश के भाग्य के स्वयंभू नियंता बनकर अपने उत्थान-पतन को ही राष्ट्र का उत्थान-पतन सिद्ध करने में जुटे हैं। सत्ता और विपक्ष के समान तरीके और पैंतरे देखकर दोनों में अंतर करना असंभव हो गया है।

शुक्ल ऐसी विषम परिस्थितियों में राष्ट्रजन की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हैं, "आज के अपने भारत में यदि कोई सर्वाधिक उपेक्षित है तो वह है राष्ट्रजन—इस देश का आम आदमी। सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों उसके साथ छल कर रहे हैं। उद्योगपति उसका शोषण कर रहे हैं। बुद्धिजीवी और विचारक उसे गुमराह कर रहे हैं। मजहबी कट्टरता उसके जीवन का सुरताल बिगाड़ कर उसे असुर अर्थात् संवेदनहीन बना रही है। प्रत्येक स्तर पर जाने-अनजाने यह प्रयास किया जा रहा है कि इस देश की प्राण शक्ति सदा सोई ही रहे" (शुक्ल, 2008, पृष्ठ-74)। शुक्ल के चिंतन में जन्मभूमि भारत के प्रति श्रद्धा का भाव राष्ट्रानुराग का अनिवार्य तत्त्व है। ऐसे में राष्ट्रजनों से उनकी यह अपेक्षा स्वाभाविक ही है कि वे इस भाव को स्वयं में जाग्रत और उद्दीप्त करें। देश का कोई भी समुदाय राष्ट्रधारा से समरसता भाव का अपवाद नहीं हो सकता है। इसी भाव के आलोक में शुक्ल जहाँ बहुसंख्यक हिंदू समाज से आशा करते हैं कि वह अपनी मूल श्रद्धा, आस्था और विश्वास यथावत् रखते हुए अपने सामाजिक जीवन में मुस्लिमों को आत्मसात् और समरस रखने का प्रयास करे, वहीं सरकार से उनकी अपेक्षा है कि वह देश के व्यापक हितों को दृष्टिगत रखते हुए समुचित शिक्षा तथा तुष्टीकरणरहित प्रशासन व्यवस्था से भारत को एक राष्ट्र जीवन की दिशा में गतिशील करे।

तथाकथित बुद्धिजीवियों का अरण्य रोदन

शुक्ल भारतीय लोकतंत्र के वैचारिक औदार्य के ध्वजवाहक हैं। वे विविध वैचारिक आयामों का विश्लेषण और प्रसारण प्रतिष्ठाजनक मानते हैं। वैचारिक मतभेद को शत्रुता न मान कर, उसे सम्मान और समादर की दृष्टि से देखे जाने को भी भारत की मूल प्रेरणा एवं परंपरा मानते हैं। उनका मत है कि सैकड़ों वर्षों की दासता में भी जो राष्ट्र एकात्म बना रहा हो, उसे अपनी अस्मिता का सदैव एहसास रहा हो, वही राष्ट्र स्वतंत्र होते ही खंडित होने की दिशा में अग्रसर हो ही नहीं सकता है। वे ऐसे विचार के पीछे के करणों की पड़ताल में तथाकथित बुद्धिजीवियों के दूषित चिंतन और विचार को पाते हैं। जब भी राष्ट्र अपनी प्रज्ञा पर गौरव के लिए मानस बनाता है तब ही ऐसे बुद्धिजीवी प्रलाप ही नहीं करते, बल्कि देश के टूट जाने की आशंका एवं भय का निर्माण करने लगते हैं। शुक्ल के अनुसार यह वर्ग भारत के बहुकेंद्रिक समाज जीवन को अलग-अलग दिशाओं से आए समुदायों का जमघट मानता है। उनकी राय में भारत में एक समान संस्कृति, आत्मबोध तथा एकरस समाज जीवन का अभाव है। ऐसे चिंतकों को लगता है कि यहाँ जितने रीति-रिवाज हैं उतनी ही राष्ट्रीयताएँ हैं। किसी अँधेरी गली से बाहर न निकलने की जिद पर अड़े ऐसे तथाकथित प्रगतिवादी बुद्धिजीवियों से राष्ट्र का परिचय कराते हुए शुक्ल लिखते हैं, "ये बुद्धिजीवी कहलाते हैं। बुद्धिजीवी अर्थात् इनकी जीविका का आधार बुद्धि-व्यापार है। इनकी बुद्धि का मूल्य है। जो उसका मोल लगा दे या चुका दे, वे उसी के हो जाते हैं। उनका बुद्धि-विश्लेषण सत्यासत्य से निरपेक्ष होता है। उनकी बुद्धिजीविता उन्हें यथार्थ का प्रतिपादन करने से रोकती है। उनकी मान्यता है कि अब तक उन्होंने जो कुछ कहा और लिखा है वहीं अंतिम सत्य है। उस पर पुनर्विचार करने को वे वैचारिक विद्रूपता का निर्माण करना कहते हैं" (शुक्ल, 2018, पृष्ठ-151)। स्वार्थी और भयभीत ऐसे लोगों का समूह भावी पीढ़ी को इतिहास के नाम पर एक ऐसी बंद गली में घुसाना चाहता है, जहाँ प्रश्न करने तक की अनुमति निषेध है। राष्ट्र का अतीत खोजना और उस आधार पर देश के वर्तमान तथा भविष्य का चिंतन उनकी दृष्टि में संकीर्णता और विकृतीकरण है।

शुक्ल कहते हैं कि ऐसे लोगों को भारतीय साहित्य को उसके मौलिक

वाङ्मय से जोड़ा जाना तथा भारत की राष्ट्रीय प्रज्ञा की प्रतिस्थापना नहीं सुहाती। वे कभी शिक्षा पाठ्यक्रम में वैदिक गणित, संस्कृत और भारतीय महापुरुषों को शामिल किए जाने से भयभीत हो जाते हैं, तो कभी उत्तर प्रदेश सरकार की पाठशालाओं में वंदेमातरम् गान की घोषणा से काँप उठते हैं। ऐसे बुद्धिजीवियों के रुदन से तत्कालीन केंद्र सरकार के सहमत हो जाने से शुक्ल को विपुल आश्चर्य होता है। केंद्र सरकार का ऐसे दूषित चिंतन के समक्ष नतमस्तक हो जाना उनके मन को कचोटता है। तथाकथित बुद्धिजीवियों के सर्वथा आधारहीन और राष्ट्रीय धारा के विपरीत बनाए गए मायाजाल में सरकार को फँसता देख शुक्ल का मन चीत्कार कर उठता है, "गुलामी के समय जो रामराज्य, राम-कृष्ण और शिव हमारी राष्ट्रीय प्रेरणा के स्रोत थे, आजाद भारत में उन्हें न केवल सांप्रदायिक ही मान लिया गया, अपितु आक्रमणकारी बाबर और औरंगजेब के साथ तुलना करके उनका अपमान भी किया जा रहा है। सुल्तानों, मुगलों और नवाबों के शासन में हम रामचरितमानस की चौपाई पाठ्यक्रम में रख सकते थे, किंतु आजाद भारत में काँग्रेसी राज्य में इसे अपराध मान लिया गया" (शुक्ल, 2018, पृष्ठ-155)। शुक्ल इस विचार के पोषक हैं कि भारत राष्ट्र की सार्वभौमिकता का आधार किसी सत्ता संरक्षण शक्ति नहीं, अपितु उसकी सनातन अंतर्धारा की प्राण शक्ति में निहित है। उनका अटूट विश्वास है कि राष्ट्र की प्राण ज्योति को किसी भौतिक तेल-बाती की आवश्यकता कभी नहीं रही, यह भाव जगत् की स्वत:स्फूर्त आध्यात्मिक ज्योति से प्रदीप्त है।

विश्व को विधाता का दान भारत

शुक्ल का मत रहा है कि भारत विश्व को विधाता का दान है। संपूर्ण सृष्टि के दाय और कुशलक्षेम का महती उत्तरदायित्व उसे ही सौंपा गया है। वे चुटीली शैली में पूछते हैं कि जिस राष्ट्र को अमरता का असामान्य वरदान मिला हो, उसकी मृत्यु या उसके मिट जाने का सामान्य संदर्भ प्रदान किया जाना भारत के प्रति अज्ञानता से अधिक कुछ नहीं हो सकता है। भारत की विशालता एवं उसकी महानता को स्वर प्रदान करते हुए शुक्ल कहते हैं, "भारत की जीवन धारा सिंचाई विभाग के किसी इंजीनियर द्वारा बनाई गई नहर नहीं है, यह वह अमृत्य, अखंड और सनातन धारा है, जिसमें से पवित्र गंगा-यमुना, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र, सिंधु, नर्मदा, कृष्णा, कावेरी और गोदावरी जन्मती हैं। विभिन्न 'नहरें' बाद की मानव निर्मित हैं, प्रकृति प्रदत्त नहीं। अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए महासागर भारत की अक्षय धारा के जल-कण की याचना करता है। भारत संसार-सृष्टि का परिणाम नहीं, संसार सृष्टि के लिए भारत की सृष्टि की गई।" (शुक्ल, 1993)। लेकिन इसके विपरीत अपने प्रति हीन भावना से भरे लोगों को या तो संघर्ष दिखाई देता है या फिर विनाश नजर आता है। ऐसे विचारक सृजन और जीवन से कोसों दूर जा चुके हैं। शुक्ल के विचार में परायी बुद्धिजीविता ने हमारे अपनों के मध्य हमें पराया बना रखा है। हमारा यही परायापन देश, समाज, संस्कृति, साहित्य, इतिहास और राजनीति से लेकर वैचारिक स्तर तक हमको आत्मग्लानि से भर रहा है। ऐसी ही कुटिल चेतना के दम पर धर्मनिरपेक्षता का शिगूफा दिया गया था। शुक्ल स्पष्ट करते हैं कि भारत को धर्मनिरपेक्ष बनाए जाने का विचार उसके लिए न केवल बेगाना है, बल्कि बेमानी भी है। धर्म भारत का प्राण है। ऐसे में भारत धर्मविहीन हो ही नहीं सकता है। उसके धर्मनिरपेक्ष होते ही उसकी उसकी सनातनता अर्थात् निरंतरता समाप्त हो जाएगी।

शुक्ल 1947 के भारत विभाजन को राष्ट्रीयता संबंधी रीति-नीतियों की विफलता का ज्वलंत उदाहरण बताते हैं। उनको प्रतीत होता है कि भारत का सांस्कृतिक और सामाजिक सूत्र जितना सबल है, उसका राजनैतिक सूत्र उतना ही दुर्बल है। शुक्ल सदैव राष्ट्र की मर्यादाओं का विचार करते हुए ही राजनीति किए जाने के पक्षधर रहे हैं। उनका स्पष्ट मत है कि संस्था और अभिनिवेश पर बल देने वाले राजनीतिक क्षेत्रों में राष्ट्र की एकता का पोषण संभव नहीं हो सकता। शुक्ल का विचार है कि अधिकतर राजनेता राष्ट्रहित की बात यदि करते भी हैं तो उसमें भारत राष्ट्र का मूल मन और भारतीयता नदारद ही रहती है। वे विविध समस्याओं का विश्लेषण और समाधान किसी संप्रदाय, समुदाय, जाति, वर्ग या क्षेत्र के हित-अहित के आधार पर किए जाने में अधिक रुचि दिखाते हैं। उनके विचार से राजनेताओं के ऐसे प्रयास अखंड राष्ट्र की संकल्पनाओं को छलनी करते हैं। वे राजनेताओं को धिक्कारते हुए तथा राष्ट्रीय एकात्म के विमर्श की अपरिहार्यता पर बल देते हुए कहते हैं, "...समस्याओं की सूली पर राष्ट्र को न टाँगकर समस्याओं को राष्ट्रीय संदर्भ प्रदान करें। राष्ट्रीय अस्मिता और मूल राष्ट्रीय प्रवाह के साथ पाखंडपूर्ण आचरण और क्षेत्रीय तथा मजहबी पहचान को अखिल भारतीयता पर वरीयता देने का राजनीतिक छल राष्ट्रीय एकता और अखंडता का कवच नहीं बन सकता। भारत के राष्ट्रीय सत्य को अस्वीकार करके राष्ट्र निर्माण करने का प्रयास अनेक कश्मीर, अनेक पंजाब और अनेक पूर्वांचल ही पैदा करेगा" (शुक्ल, 2017, पृष्ठ-22-23)।

राष्ट्रीय चिंतन एवं पत्रकारिता

शुक्ल राष्ट्रवाद की व्यापक अवधारणा के संक्रमण काल में पत्रकारों के उत्तरदायित्व को भी रेखांकित करना नहीं भूलते। वे राष्ट्रव्यापी संकट के क्षणों में बेलगाम राजनीति के साथ ही पत्रकारिता जगत् के अंतर्मन को टटोलने का प्रयत्न करते दिखाई देते हैं। वे मीडिया की उसके संकुचित आचरण और अदूरदर्शिता के लिए पर्याप्त भर्त्सना करते हैं। मीडिया द्वारा दिल्ली के आसपास के भूभाग को ही अखिल भारत मान लिए जाने पर वे कटाक्ष किए जाने के अंदाज में कहते हैं कि यदि कश्मीर और पंजाब दिल्ली के निकट न होते तो वहाँ की स्थिति की गंभीरता को भी हल्के-फुल्के ढंग से टाल दिया जाता। उनका मत है कि यदि कश्मीर समस्या के साथ पाकिस्तान प्रत्यक्ष रूप से न जुड़ा हुआ होता तो निश्चित ही मीडिया और बुद्धिजीवी वर्ग उसे सांप्रदायिक समस्या का जामा पहनाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेता। पत्रकारिता जगत् की आत्मा को झकझोरते हुए वे कहते हैं, "समाचार पत्रों को भी समीप की 'स्थानीय' बातों को अखिल भारतीय बनाने की आदत और अभ्यास है। केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र, उड़ीसा और पूर्वांचल उनकी अखिल भारतीयता में नहीं आते। मजहबी और क्षेत्रीय प्रभाव के कारण अखिल भारतीयता का आयाम सिमटता और सिकुड़ता जा रहा है" (शुक्ल, 2008, पृष्ठ-130)। शुक्ल को उस दौर के अधिसंख्य पत्रकारों से शिकायत है कि वे सकारात्मक पत्रकारिता करना ही विस्मृत कर रहे हैं। 'सत्यं, शिवं और सुंदरम्' का मूल मंत्र कहीं खो-सा गया है। वे चिंता प्रकट करते हैं कि स्वस्थ और रचनात्मक समाचारों को प्रमुखता नहीं दी जाती। नकारात्मक समाचार बॉक्स बनाकर छापे जाते हैं। पत्रकारिता का मूल मंत्र होना चाहिए कि जो देखा गया, जो

लिखा गया, वही छपा और वही समझा गया। समाचार लेखन में किसी संदेह और गलतफहमी का कोई स्थान नहीं। 'समाज को संदेह और संशय मुक्त करना ही तो समाचार पत्रों के जन्म की आधारभूमि है' जैसे कथन के आलोक में शुक्ल का मानना रहा है कि पत्रकारिता का धर्म खोज के नाम पर मात्र दुर्गंध खोजा जाना ही तो नहीं है। किसी यज्ञ कर्म की सुगंध से जनमानस को सुवासित करना भी पत्रकारीय कर्म है। पत्रकार संपूर्ण संदर्भ को समझकर उससे जुड़ा समाचार लिखें। संपादक तथ्यों की पुष्टि करके टिप्पणी करें। वे कहते हैं, "समाचार पत्रों के माध्यम से समाज से स्वर-ताल बनाए रखने का पहला कर्तव्य संवाददाताओं का ही है। संपादकों, समीक्षकों, लेखकों और अन्य लोगों की प्रतिक्रियाएँ भी उसी धुरी के आसपास घूमती हैं" (शुक्ल, 2008, पृष्ठ-126)।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन इस विचार को संपुष्ट करने में सफल होता है कि भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता भारत में स्वातंत्र्य पूर्व काल की पत्रकारिता के सन्निकट है, जो राष्ट्रहित, निर्भीकता, स्पष्टवादिता तथा लोक जागरण का उद्घोष है। विचारोत्तेजक संपादकीय के स्थान पर नैरेटिव गढ़े जाने के दौर में शुक्ल राष्ट्र की सनातन परंपरा, हिंदुत्व, भव्य और दिव्य संस्कृति पर कुठाराघात करने के साथ ही देश के बहुसंख्यक वर्ग की आस्था, परंपरा तथा विश्वास को निरंतर निशाना वालों को तर्क के साथ उत्तर देते हैं। लोकतंत्र, गणराज्य और राष्ट्रीयता की सनातन परंपरा का वे ऐसा चित्रण करते हैं, जो प्रत्येक भारतीय को गौरवान्वित होने का अवसर देता है। शुक्ल के विराट् पत्रकारीय अनुभव के एक पक्ष राष्ट्रीय संचेतना की मीमांसा यद्यपि लघु चित्र प्रस्तुत करती है, तथापि उससे पता चलता है कि उनके निष्पक्ष लेख व संपादकीय पत्रकारों की वर्तमान पीढ़ी के पथ-प्रदर्शक बने हुए हैं। उनका लेखन वर्तमान दौर में पल-प्रतिपल क्षय होते पत्रकारिता मूल्यों को सहेजने के लिए आदर्श प्रस्तुत करता है। एक ओर शुक्ल राष्ट्रीय सत्य को उद्घाटित करते हैं, वहीं दूसरी ओर सत्य की स्वीकार्यता के लिए जनमानस को तैयार भी करते हैं। उनकी गहन अंतर्दृष्टि पाठकों को प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध कराती है, उनके समक्ष अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करती है तथा उनको आत्मीय गौरव का बोध कराती है, उनमें राष्ट्र-भाव जाग्रत करती है।

संदर्भ

उपाध्याय, दीनदयाल. (1952). *अखंड भारत*. लखनऊ : राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन.

राय, रामबहादुर. (2012). *भानुप्रताप शुक्ल व्यक्तित्व और विचार*. दिल्ली : साहित्य प्रकाशन.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2008). *भानुप्रताप समग्र, खंड-1*. दिल्ली : साहित्य प्रकाशन.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2018). *अयोध्या*. दिल्ली : गीता बुक्स.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2017). *राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान*. दिल्ली : साहित्य प्रकाशन.

शुक्ल, भानुप्रताप. (28 फरवरी 1993). *पाञ्चजन्य. राष्ट्र चिंतन : शब्द और अर्थ*. नई दिल्ली : भारत प्रकाशन लिमिटेड.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2008). *भानुप्रताप समग्र, खंड-2*. दिल्ली : साहित्य प्रकाशन.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2014). *स्वदेशी चेतना*. दिल्ली : साहित्य प्रकाशन.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2014). *कश्मीर*. दिल्ली : साहित्य प्रकाशन.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2018). *भाषा और जीवन मूल्य*. दिल्ली : विक्रम बुक्स.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2012). *राम जन्मभूमि का सच*. दिल्ली : साहित्य प्रकाशन.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2018). *यक्ष प्रश्न*. दिल्ली : विक्रम बुक्स.

शुक्ल, भानुप्रताप. (2018). *कीर्ति कलश*. दिल्ली : पुस्तक लोक.

शर्मा, महेश चंद्र. (2018). *सुलभ इंडिया : सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का दृष्टि-पथ*. नई दिल्ली : सुलभ इंटरनेशनल सोशल सर्विस ऑर्गनाइजेशन

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 92-96, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

जम्मू-कश्मीर की प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के सोशल मीडिया (फेसबुक पेज) का विश्लेषण - विधानसभा चुनाव-2024 के संदर्भ में

डॉ. मलकीत सिंह[1]

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख जम्मू-कश्मीर के 2024 विधानसभा चुनावों में फेसबुक के माध्यम से राजनीतिक संवाद के विस्तार का विश्लेषण करता है। जम्मू और कश्मीर को विशेष दर्जा प्रदान करने वाले अनुच्छेद-370 के निरस्त होने के बाद राज्य की राजनीतिक गतिशीलता में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है, जिसने सोशल मीडिया (फेसबुक) को एक प्रमुख संवाद माध्यम बना दिया है। शोध आलेख में जम्मू-कश्मीर के प्रमुख राजनीतिक दलों के फेसबुक पेज की रणनीतियों, सामग्री तथा मतदाताओं की सहभागिता के स्तर का मूल्यांकन किया गया है। शोध में पाया गया है कि फेसबुक ने न केवल राजनीतिक दलों को अपनी नीतियों को साझा करने का मंच प्रदान किया है, बल्कि मतदाता संवाद और सहभागिता को बढ़ावा देने का भी कार्य किया है। यह अध्ययन फेसबुक के माध्यम से चुनाव में राजनीतिक संवाद के विकास की दिशा को स्पष्ट करता है।

संकेत शब्द : जम्मू-कश्मीर, राजनीतिक संवाद, फेसबुक, सोशल मीडिया, चुनावी रणनीतियाँ, मतदाता सहभागिता, राजनीतिक दल

प्रस्तावना

जम्मू-कश्मीर की राजनीति लंबे समय से जटिल विषय रही है। 2024 के विधानसभा चुनाव को दृष्टि में रखते हुए देखा जाए तो विभिन्न राजनीतिक दलों की सोशल मीडिया रणनीतियाँ, विशेषकर फेसबुक की, महत्त्वपूर्ण भूमिका में रही हैं। एक तरफ जहाँ फेसबुक सूचना के आदान-प्रदान के एक साधन के रूप में कार्य करता है, वहीं दूसरी तरफ यह राजनीतिक विचारों को आकार देने तथा मतदाताओं से संवाद स्थापित करने के एक प्रभावी मंच के रूप में भी कार्य करता है। प्रस्तुत शोध आलेख में जम्मू-कश्मीर के प्रमुख राजनीतिक दलों के फेसबुक चैनलों का अवलोकन एवं विश्लेषण किया गया है। ऐतिहासिक संदर्भ में देखा जाए तो जम्मू-कश्मीर की राजनीतिक पृष्ठभूमि बहुत ही महत्त्वपूर्ण रही है। यहाँ के स्थानीय मुद्दे, सांस्कृतिक विविधता तथा भौगोलिक विशेषताएँ इसे अन्य भारतीय राज्यों से भिन्न बनाते हैं। 2019 में अनुच्छेद-370 के हटने के बाद यहाँ के राजनीतिक परिदृश्य में बड़े स्तर पर बदलाव देखा जा सकता है। इस बदलाव के फलस्वरूप जम्मू-कश्मीर की स्थानीय पार्टियों की रणनीतियों में भी बदलाव आया है। 2024 के विधानसभा चुनाव के आधार पर इस बदलाव का आकलन किया जा सकता है।

जम्मू-कश्मीर का इतिहास बड़ा नाटकीय रहा है। 1947 में भारत-पाकिस्तान के विभाजन के समय जम्मू-कश्मीर ने एक विशेष स्थिति को प्राप्त कर लिया था, जिसके चलते इस राज्य की राजनीतिक संरचना में स्थानीय पहचान, स्वायत्तता के साथ सामुदायिक गतिशीलता को अलग ढंग से शामिल किया गया था। इसके बाद 1950 से लेकर 1990 के दशक तक जम्मू-कश्मीर में विभिन्न राजनीतिक घटनाओं के साथ उथल-पुथल की स्थिति देखी गई है, जिसका प्रभाव यहाँ की राजनीतिक संस्कृति पर पड़ा।

1990 के दशक के अंत में तथा 2000 के दशक की शुरुआत में इंटरनेट तथा मोबाइल के प्रसार ने भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ ला दिया। समय के साथ सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म, विशेषकर फेसबुक, राजनीतिक संवाद का एक नया मंच बनकर उभरने लगा। 2004 में फेसबुक की शुरुआत के बाद, यह प्लेटफॉर्म विभिन्न राजनीतिक दलों तथा नेताओं के लिए एक प्रभावी संचार साधन एवं संदेश संप्रेषण का माध्यम बनता गया। समय के साथ ही जम्मू-कश्मीर में सोशल मीडिया का प्रवेश हुआ। 2010 के बाद से यह इस राज्य में एक महत्त्वपूर्ण संवाद मंच बनकर उभरा। 2014 के विधानसभा चुनावों में यहाँ के राजनीतिक दलों ने सोशल मीडिया का उपयोग करना शुरू किया। चुनाव के संदर्भ में 2019 में अनुच्छेद 370 के हटने के बाद इसकी भूमिका में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव आया। राजनीतिक दलों ने फेसबुक को अपनी रणनीतियों का अभिन्न हिस्सा बनाना शुरू कर दिया, जिससे मतदाताओं के साथ सीधा संवाद स्थापित किया जा सके।

2020 और उसके बाद जम्मू-कश्मीर में राजनीतिक दलों ने चुनावी अभियानों को ध्यान में रखते हुए फेसबुक से जुड़ना शुरू किया। यहाँ के दलों ने विभिन्न मुद्दों पर विषयवस्तु को प्रभावी ढंग से पहुँचाने के लिए फेसबुक का सहारा लिया। प्रमुख दलों, जैसे जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉनफ्रेंस, पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, भाजपा और काँग्रेस ने अपनी नीतियों, कार्यक्रमों और चुनावी रणनीतियों को पेश करने के लिए इस प्लेटफॉर्म का उपयोग किया। 2024 के विधानसभा चुनाव के संदर्भ में घाटी में प्रमुख राजनीतिक दलों ने फेसबुक पर लक्षित विज्ञापन, लाइव इवेंट और इंटरैक्टिव सामग्री का उपयोग किया है। इससे मतदाताओं के साथ जुड़ाव बढ़ने के साथ चुनावी मुद्दों पर संवाद का विस्तार हुआ है। विभिन्न दलों ने अपने फेसबुक पृष्ठों के माध्यम से मतदाताओं के साथ सीधा संवाद स्थापित किया है, जो उनकी प्राथमिकताओं और चिंताओं को समझने में मदद करता है। इस ऐतिहासिक परिदृश्य से यह स्पष्ट होता है कि जम्मू-कश्मीर में फेसबुक ने राजनीतिक संवाद का एक नया आयाम स्थापित किया है। राजनीतिक दलों के लिए यह प्लेटफॉर्म न केवल अपने विचारों को साझा करने का साधन है, बल्कि मतदाता सहभागिता और जुड़ाव को बढ़ाने में भी सहायक है। 2024 के विधानसभा चुनाव में

[1]प्रोफेसर, कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश. ईमेल : malkitsaran@cuhp.ac.in

फेसबुक की भूमिका को समझना जम्मू-कश्मीर की राजनीति के विकास की दिशा को समझने में महत्त्वपूर्ण साबित हुआ है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख के दो प्रमुख उद्देश्य हैं। प्रथम, जम्मू-कश्मीर के विधानसभा चुनाव में प्रमुख राजनीतिक दलों के फेसबुक के माध्यम से राजनीतिक संवाद का विश्लेषण करना। दूसरा, राजनीतिक दलों की फेसबुक पर रणनीतियों और संलग्नता की विधियों का मूल्यांकन करना।

शोध प्रविधि

गुणात्मक आँकड़ों का संग्रहण : शोध आलेख में जम्मू-कश्मीर के प्रमुख राजनीतिक दलों के फेसबुक पृष्ठों की सामग्री का सामान्य अवलोकन किया गया है, जिसमें पोस्ट, वीडियो के साथ अंतर्क्रियाशीलता का अध्ययन शामिल है।

संख्यात्मक आँकड़ों का संग्रहण : प्रमुख राजनीतिक दलों के फेसबुक पृष्ठ की गतिविधियों, लाइक, शेयर तथा कमेंट की संख्या का अवलोकन किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण : उक्त दोनों विधियों से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण गुणात्मक विधि द्वारा किया गया है।

प्रतिवेदन : अंततः शोध के परिणामों को एक संक्षिप्त और व्यवस्थित रिपोर्ट के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो कि राजनीतिक संवाद के विस्तार में फेसबुक की भूमिका को उजागर करने का कार्य करती है।

साहित्य समीक्षा

गुल और अन्य (2016) ने अपने शोध आलेख "ट्वीट्स स्पीक लाउडर देन लीडर्स एंड मासेस : ऐन एनालिसिस ऑफ ट्वीट्स अबाउट द जम्मू एंड कश्मीर इलेक्शंस 2014" में जम्मू-कश्मीर से संबंधित विभिन्न ट्वीट का विश्लेषण किया है। यह आलेख सोशल मीडिया की जम्मू-कश्मीर में प्रभावशीलता का भी अध्ययन करता है। सोशल मीडिया की जम्मू-कश्मीर में प्रभावशीलता का अध्ययन उक्त शोध की तरह गैंबल और अन्य (2020ए) ने "डिस्कसिंग कॉनफ्लिक्ट इन सोशल मीडिया : द यूज ऑफ ट्विटर इन द जम्मू एंड कश्मीर कॉनफ्लिक्ट" में किया है। इस शोध आलेख में जम्मू-कश्मीर में सोशल मीडिया के माध्यम से होने वाले संघर्ष का अध्ययन प्राप्त होता है। सोशल मीडिया के माध्यम से लोगों के व्यवहार में आए परिवर्तन का अध्ययन तलहा और सुधाकर (2022) ने "सोशल मीडिया एंड ऑनलाइन रेडिकलाइजेशन : अ केस स्टडी ऑफ जम्मू एंड कश्मीर" में किया है। वहीं शाह (2024) ने अपने आलेख "2024 जम्मू एंड कश्मीर इलेक्शंस : विल इमोशनल कैंपेनिंग एंड पॉपुलिस्ट प्रॉमिसस पेव द रोड टू स्टेबिलिटी में जम्मू-कश्मीर के विधानसभा चुनाव से संबंधित विषयवस्तु का विश्लेषण किया गया है। उक्त साहित्य के पुनरावलोकन के पश्चात् फेसबुक व मीडिया रिपोर्टों को भी आधार बनाया गया है।

जम्मू-कश्मीर विधानसभा का ऐतिहासिक परिदृश्य

जम्मू-कश्मीर की विधानसभा का ऐतिहासिक परिदृश्य भारतीय राजनीति के लिए महत्त्वपूर्ण रहा है। 2019 में अनुच्छेद 370 के निरसन के पश्चात् जम्मू-कश्मीर का विशेष दर्जा समाप्त हो गया तथा इसे दो केंद्र शासित प्रदेशों, जम्मू-कश्मीर तथा लद्दाख, में विभक्त कर दिया गया। इस घटनाक्रम ने राज्य की राजनीतिक संरचना को एक नया स्वरूप प्रदान किया तथा विधानसभा चुनावों की प्रक्रिया पर भी गहरा प्रभाव डाला। अंतिम विधानसभा चुनाव 2014 में हुआ था। इसके पश्चात् जम्मू-कश्मीर में राजनीतिक परिस्थितियाँ तेजी से अपना स्वरूप बदलने लगीं। 2014 के समय की विधानसभा में कई दलों का गठबंधन और अलग-अलग विचारधाराएँ देखने को मिली। 2018 में उक्त विधानसभा को भंग कर दिया गया और तब से राज्य में कोई चुनाव नहीं हुआ (ब्यूरो, 2024)।

2014 के 10 वर्ष पश्चात् 2024 में विधानसभा चुनाव के लिए जम्मू-कश्मीर में राजनीतिक दलों ने अपनी तैयारियाँ शुरू की थीं। इस चुनाव में प्रमुख दलों, जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉनफ्रेंस, पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, भारतीय जनता पार्टी और काँग्रेस ने अपनी-अपनी रणनीतियाँ तैयार की थीं। इन दलों ने मतदाता संलग्नता को बढ़ावा देने तथा प्रभावी रूप से उनसे संवाद के लिए सोशल मीडिया, विशेषकर फेसबुक, का उपयोग किया। इस चुनाव में विभिन्न मुद्दों को फेसबुक के माध्यम से यूजरों (वोटरों) तक पहुँचाया गया (ब्यूरो, 2024)। 2024 के चुनावों में राज्य में सुरक्षा की स्थिति और आतंकवाद से संबंधित समस्याएँ सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनीं। आर्थिक विकास, रोजगार तथा बुनियादी ढाँचे की कमी, स्थानीय संस्कृति और पहचान के संरक्षण आदि कई महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाए गए थे। जम्मू-कश्मीर के चुनाव में प्रमुख राजनीतिक दलों के फेसबुक पेज के अध्ययन से पूर्व प्रमुख राजनीतिक दलों का संक्षिप्त परिचय एवं उनका 2024 के विधानसभा चुनाव में प्रदर्शन भी जानना आवश्यक है। जम्मू-कश्मीर में प्रमुख राजनीतिक दलों में जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉनफ्रेंस, जम्मू-कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, भारतीय जनता पार्टी और काँग्रेस शामिल हैं। प्रत्येक पार्टी का अपना एक अलग आधार और राजनीतिक दृष्टिकोण है, जो उनकी सोशल मीडिया उपस्थिति को भी प्रभावित करता है।

तालिका 01 में 2024 के विधानसभा चुनाव का आँकड़ा दिया गया है (इलेक्शन, 2024)।

तालिका 01

क्र. सं.	पार्टी	प्राप्त सीट
1	नेशनल कॉनफ्रेंस	42
2	भारतीय जनता पार्टी	29
3	भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस	06
4	पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी	03
5	जम्मू-कश्मीर पीपुल्स कॉनफ्रेंस	01
6	आम आदमी पार्टी	01
7	सीपीआई (एम)	01
8	निर्दलीय	07

2024 के जम्मू-कश्मीर के विधानसभा चुनाव का तीन फेज में 18 सितंबर से 1 अक्टूबर तक आयोजन हुआ (रंजन, 2024)। इस चुनाव में कुल 63.88% वोटिंग हुई, जबकि 2014 में हुए विधानसभा चुनाव में कुल

65% की वोटिंग हुई थी। इस तरह इस बार के चुनाव में 1.12% कम वोटिंग दर्ज हुई है। चुनाव आयोग द्वारा 8 अक्टूबर को जारी किए गए परिणाम में नेशनल कॉनफ्रेंस तथा काँग्रेस के गठबंधन ने बहुमत का आँकड़ा हासिल किया तथा उमर अब्दुल्ला राज्य के मुख्यमंत्री बने। नेशनल कॉनफ्रेंस ने इस चुनाव में 42 तथा काँग्रेस ने 6 सीटें प्राप्त कीं। सीपीएम ने भी एक सीट हासिल की। मुख्य विपक्षी दल के रूप में भाजपा ने जम्मू क्षेत्र में कुल 28 सीटें हासिल की हैं। वहीं पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी को सिर्फ तीन सीटें प्राप्त हुई हैं। आम आदमी पार्टी ने एक सीट हासिल की। वहीं निर्दलीयों के खाते में 6 सीटें आईं (इलेक्शन, 2024)।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं प्रतिवेदन

जम्मू-कश्मीर में लगभग सभी बड़ी तथा छोटी राजनीतिक पार्टियाँ लोगों तक अपनी पहुँच बढ़ाने के लिए सोशल मीडिया का प्रयोग करती हैं। 2024 के इस विधानसभा चुनाव में फेसबुक जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का प्रयोग बड़े स्तर पर किया गया। जम्मू-कश्मीर में संपन्न हुए विधानसभा चुनावों के दौरान फेसबुक राजनीतिक दलों के लिए प्रचार और प्रसार के उपकरण के रूप में सामने आया है। प्रमुख राजनीतिक दलों के अतिरिक्त निर्दलीय उम्मीदवारों, मसलन सरजन बरकती जैसे नए उम्मीदवार तथा इंजीनियर राशिद के नेतृत्व वाली अवामी इत्तेहाद पार्टी ने भी फेसबुक का प्रयोग अपने प्रचार-प्रसार के लिए किया।

शोध में शामिल प्रमुख पार्टियाँ, भाजपा, काँग्रेस, एनसी तथा पीडीपी ने अपने संदेशों को लोगों तक पहुँचाने के लिए लिए सोशल मीडिया टीमों की नियुक्ति की थी। इंजीनियर राशिद के नेतृत्व वाली अवामी इत्तेहाद पार्टी जैसी छोटी पार्टी के नेताओं के द्वारा वीडियो तथा भाषणों को मनचाहे ढंग से पोस्ट किया गया। स्थानीय लोगों में अपनी पैठ बनाने तथा अपने संदेशों को पहुँचाने के लिए सरजन बरकती ने भी फेसबुक का प्रयोग किया। इस संदर्भ में मीडिया शोधकर्ता रौफ भट्ट का कहना है कि निश्चित रूप से लोगों से जुड़ने तथा लाभ उठाने के लिए फेसबुक जैसे सोशल मीडिया का प्रयोग सभी पार्टियों ने किया है। अपनी रैली में भीड़ बढ़ाने तथा अपनी पार्टी का माहौल बनाने के लिए फेसबुक का प्रयोग सबने किया। भट्ट आगे यह भी स्वीकार करते हैं कि फेसबुक लोगों के लिए गंभीर संवाद में शामिल करने में सक्षम नहीं हैं (एहसान और हुसैन, 2024)।

प्रमुख दलों के फेसबुक पेज का विश्लेषण

प्रमुख दलों के फेसबुक पेज के अवलोकन के माध्यम से राजनीतिक दलों की नीतियों तथा प्रचार अभियानों का विश्लेषण करना संभव हो सका है। फेसबुक एल्गोरिदम का लाभ उठाते हुए दल अपने संदेश (विषयवस्तु) को लक्षित दर्शकों तक पहुँचाने में सक्षम हो सके हैं। इस शोध पत्र में मुख्य रूप से जम्मू-कश्मीर के प्रमुख दलों के फेसबुक पेज का विश्लेषण किया गया है। जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉनफ्रेंस, जम्मू-कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, भाजपा तथा काँग्रेस—इन चार प्रमुख दलों के फेसबुक पेज का विश्लेषण निम्नवत है–

जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉनफ्रेंस

क्र. सं.	**विवरण**	**आँकड़ा**
1	फॉलोवर	64 हजार
2	फॉलोइंग	04
3	स्थान	श्रीनगर (जम्मू-कश्मीर)
4	शुरुआत की तारीख	जून 07, 2013
5	पेज आईडी	https://www.facebook.com/JKNationalConference?mibextid=ZbWKwL

जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉनफ्रेंस ने फेसबुक पेज को जून 2013 में बनाया था। इसके 31 अक्टूबर, 2024 तक के आँकड़ों के हिसाब से कुल 64, 000 फॉलोवर हैं। यह पेज कश्मीर के श्रीनगर से संचालित होता है (फेसबुक, 2023बी)।

पेज की सामग्री तथा रणनीति : जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉनफ्रेंस का फेसबुक पृष्ठ स्थानीय मुद्दों, विकास योजनाओं तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर जोर देता नजर आता है। यह दल चुनाव के दौरान अपना प्राचीन इतिहास तथा मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए पुरानी तस्वीरें और वीडियो पोस्ट के रूप में साझा करता नजर आया है।

उपयोगकर्ताओं की प्रतिक्रिया : जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉनफ्रेंस की फेसबुक पोस्ट पर अधिकतर प्रतिक्रियाएँ सकारात्मक देखी जा सकती हैं, जो कि इस दल के स्थानीय आधार को दर्शाती नजर आती हैं। पार्टी ने फेसबुक लाइव जैसे फीचर का उपयोग कर मतदाताओं से सीधा संवाद स्थापित करने का भी प्रयास किया है।

नेशनल कॉनफ्रेंस ने व्यापक प्रक्रिया के तहत जम्मू-कश्मीर के फेसबुक यूजरों को लक्षित करने तथा उनसे जुड़ने के लिए एक बहुत ही व्यापक प्रक्रिया का प्रयोग किया है। अपनी पोस्ट को साझा करने के अलावा इसकी टीमों ने पार्टी के अनुकूल विषयवस्तु को पुनः साझा करते हुए कमेंट (टिप्पणियों) के माध्यम से प्राप्त आलोचनाओं का जवाब देने का भी कार्य किया है। इसने विभिन्न आंतरिक मुद्दों पर पोस्ट के माध्यम से अपने विरोधियों पर हमला भी किया है। नेशनल कॉनफ्रेंस ने सोशल मीडिया तथा डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रभार इफ्रा जान को सौंपा था, जो अपनी पोस्ट में भाजपा तथा राष्ट्रीय मीडिया पर आरोप लगाते हुए पोस्ट करती थी।

जम्मू-कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (पीडीपी)

क्र. सं.	**विवरण**	**आँकड़ा**
1	फॉलोवर	33 हजार
2	फॉलोइंग	08
3	स्थान	उल्लेखित नहीं
4	शुरुआत की तारीख	जून 19, 2013
5	पेज आईडी	https://www.facebook.com/jkpdp1?mibextid=ZbWKwL

जम्मू-कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी अर्थात् पीडीपी ने अपने फेसबुक पृष्ठ का निर्माण जून 2013 को किया था। जिस पर 31 अक्टूबर, 2024 तक के आँकड़ों के हिसाब से कुल 33, 000 फॉलोवर है (फेसबुक, 2023सी)।

सामग्री तथा रणनीति : जम्मू-कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (पीडीपी) का फेसबुक चैनल जम्मू-कश्मीर के युवाओं तथा महिलाओं के मुद्दों पर केंद्रित नजर आता है। यह दल अक्सर अपने नेताओं के विभिन्न बयान, रैलियों तथा कार्यक्रमों का लाइव कवरेज भी इस पृष्ठ से लाइव तथा साझा करता है।

उपयोगकर्ताओं की प्रतिक्रिया : जम्मू-कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी की पोस्टों पर युवा वर्ग की अधिक भागीदारी देखी जा सकती है। हालाँकि, इस चुनाव में कुछ पोस्टों पर यूजरों द्वारा नकारात्मक टिप्पणियाँ भी की गई हैं, जो कि दल के कुछ फैसलों पर असहमति को दर्शाती हैं। पीडीपी ने वोट हासिल करने के लिए विभिन्न पोस्टों के माध्यम से फेसबुक यूजरों (मतदाताओं) को लक्षित करके उनसे जुड़ने का प्रयास किया है। इस दल ने भी भाजपा तथा राष्ट्रीय मीडिया को नकारात्मक रूप में लक्षित करने का कार्य किया है।

भारतीय जनता पार्टी

क्र. सं.	विवरण	आँकड़ा
1	फॉलोवर	308 हजार
2	फॉलोइंग	11
3	स्थान	उल्लेखित नहीं
4	शुरुआत की तारीख	अगस्त 19, 2013
5	पेज आईडी	https://www.facebook.com/BJP4JnK?mibextid=ZbWKwL

भाजपा अगस्त 2013 से ही फेसबुक पर अपनी उपस्थिति को दर्ज किए हुए है। 31 अक्टूबर के आँकड़ों के हिसाब से इस दल के कुल 308,000 फॉलोवर है (बीजेपी जम्मू और कश्मीर, 2022)।

सामग्री तथा रणनीति : भाजपा का फेसबुक पेज विकास और राष्ट्रवाद के मुद्दों को प्रमुखता से उठाता नजर आता है। इस बड़े दल ने अपने कार्यकर्ताओं के माध्यम से सामाजिक मीडिया अभियानों को व्यापक रूप से संचालित किया है।

उपयोगकर्ताओं की प्रतिक्रिया : भाजपा की पोस्टों पर बड़ी संख्या में लाइक और शेयर देखने को मिलते हैं। पार्टी ने अपनी रणनीति में विवादास्पद मुद्दों का भी उपयोग किया है, जो कुछ दर्शकों में सकारात्मक और कुछ में नकारात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। भारतीय जनता पार्टी के फेसबुक पेज की सोशल मीडिया टीम विकास, शांति एवं स्थिरता से संबंधित पोस्ट के अलावा जम्मू-कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्रियों, फारूक अब्दुल्ला, महबूबा मुफ्ती तथा उमर अब्दुल्ला को निशाना बनाने वाली विषयवस्तु को पोस्ट के माध्यम से साझा करती आई है। भाजपा के फेसबुक पेज के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पार्टी ने अपना मुख्य ध्यान जम्मू पर केंद्रित किया था (अमर, 2024)।

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस

जम्मू-कश्मीर काँग्रेस के फेसबुक पेज का इस्तेमाल पारंपरिक तरीके से दिखाई पड़ा है, जहाँ छोटे-छोटे वीडियो, पोस्ट डाले गए हैं, जिनमें तरह-तरह के कोट शामिल किए गए हैं।

क्र. सं.	विवरण	आँकड़ा
1	फॉलोवर	53 हजार
2	फॉलोइंग	16
3	स्थान	जम्मू
4	शुरुआत की तारीख	मई 17, 2017
5	पेज आईडी	https://www.facebook.com/INCJammuKashmir?mibextid=ZbWKwL

काँग्रेस के जम्मू-कश्मीर पेज को मई 2017 में अन्य दलों की अपेक्षा विलंब से शुरू किया है। 31 अक्टूबर, 2024 तक के आँकड़ों के हिसाब से इस दल के कुल 53,000 फॉलोवर हैं (फेसबुक, 2023ए)।

सामग्री तथा रणनीति : काँग्रेस का फेसबुक चैनल स्थानीय समस्याओं, बेरोजगारी और महँगाई पर केंद्रित है। पार्टी ने अपनी सामाजिक न्याय की नीतियों को प्रचारित करने के लिए वीडियो और लेख साझा किए हैं।

उपयोगकर्ताओं की प्रतिक्रिया : काँग्रेस की फेसबुक गतिविधियाँ अपेक्षाकृत कम प्रभावशाली रही हैं, लेकिन पार्टी ने कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर सक्रियता दिखाई है। प्रतिक्रिया मिश्रित रही है, जिसमें कुछ पोस्टों पर सकारात्मक और कुछ पर नकारात्मक टिप्पणियाँ देखने को मिली हैं।

फेसबुक पृष्ठों का चुनाव पर प्रभाव

उपयोगकर्ता (मतदाता) से जुड़ाव : जम्मू-कश्मीर के विधानसभा चुनाव में फेसबुक चैनलों के माध्यम से राजनीतिक दल मतदाताओं से जुड़ाव के लिए बाध्य हैं। दलों की ऑनलाइन उपस्थिति ने युवाओं और शहरी वर्ग को प्रभावित किया है, जो सोशल मीडिया का उपयोग अधिक करते हैं। फेसबुक पेज के माध्यम से विभिन्न दलों ने मतदाताओं, जो कि सोशल मीडिया यूजर हैं, से जुड़ने के प्रयास अपने-अपने स्तर से किए हैं। लक्षित मतदाताओं का ध्यान रखते हुए विषयवस्तु पोस्ट व साझा किए गए हैं।

सूचना का प्रवाह : सोशल मीडिया ने चुनावी सूचना के प्रवाह को तेज किया है। मतदाता अब विभिन्न मुद्दों पर तुरंत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जिससे उनकी मतदान प्राथमिकताएँ प्रभावित होती हैं। जम्मू-कश्मीर की सभी पार्टियों ने अपने फेसबुक पेज के माध्यम से मतदाताओं तक सूचना के संप्रेषण को आसान बनाया है। विभिन्न मुद्दों तथा अन्य दलों पर राजनीतिक हमलों के लिए पोस्टों के माध्यम से विभिन्न दलों ने सूचनाओं को चुनाव के दौरान साझा किया है।

उपयोगकर्ताओं का मन जानना : प्रमुख पार्टियों के अतिरिक्त स्वतंत्र उम्मीदवार भी व्यक्तिगत स्तर पर फेसबुक पेज के माध्यम से युवाओं को अपने पक्ष में वोट करने की अपील से संबंधित पोस्ट कर रहे थे। जम्मू-कश्मीर के विधानसभा चुनाव में प्रमुख पार्टियों के फेसबुक पेज पर मतदाताओं को लुभाने से संबंधित पोस्ट साझा किए गए हैं। भाजपा जम्मू-कश्मीर में आए बदलाव से संबंधित पोस्ट साझा कर रही थी तो वहीं नेशनल कॉनफ्रेंस विभिन्न तरीकों के प्रश्न। फेसबुक पर सबसे मजबूत स्थिति में भाजपा को देखा गया है। इस तरह देखा जाए तो मतदाताओं के

मन को जानने के लिए न केवल बड़े दल, अपितु हर तरह के उम्मीदवार अपने व्यक्तिगत पेज का संचालन करते नजर आए।

प्रमुख पार्टियों के फेसबुक पेज के अतिरिक्त प्रदेश के प्रमुख राजनेताओं के फेसबुक पर भी बड़ी संख्या में फॉलोवर हैं। अब्दुल्ला (नेकाँ) के फेसबुक पर 122 लाख, पीडीपी की महबूबा मुफ्ती के फेसबुक पर 166 लाख तथा भाजपा के रविंद्र रैना के फेसबुक पर 10.4 हजार फॉलोवर हैं। इल्तिजा मुफ्ती (पीडीपी) के 71 हजार, शक्ति राज परिहार (भाजपा) के 35.7 हजार फॉलोवर हैं।

निष्कर्ष

जम्मू-कश्मीर के 2024 विधानसभा चुनाव में फेसबुक का प्रभाव महत्त्वपूर्ण साबित हुआ। प्रमुख राजनीतिक दलों ने अपनी सोशल मीडिया रणनीतियों के माध्यम से मतदाताओं से जुड़ने का प्रयास किया। भारतीय जनता पार्टी, नेशनल कॉनफ्रेंस, पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी और काँग्रेस ने अपने-अपने पेज तथा उम्मीदवार के व्यक्तिगत पेज के माध्यम से चुनावी मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया। उक्त चुनाव में नेशनल कॉनफ्रेंस सोशल मीडिया के माध्यम से सत्ता में आने में सफल हो सकी। वहीं भाजपा मजबूत सोशल मीडिया प्रचार के कारण ही मुख्य विपक्षी दल बन सकी।

चुनावी प्रक्रिया में सोशल मीडिया का बढ़ता प्रभाव आने वाले समय में राजनीतिक दलों की सफलता को निर्धारित कर सकता है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि फेसबुक जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म राजनीतिक संवाद का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुके हैं और इनका उपयोग चुनावी रणनीतियों में अत्यधिक प्रभावशाली हो सकता है। आगामी चुनावों में इन रणनीतियों की सफलता का आकलन करना महत्त्वपूर्ण होगा।

संदर्भ

अमर. (2024, अगस्त 31). जम्मू-कश्मीर इलेक्शन. अमर उजाला. https://www.amarujala.com/jammu/jammu-kashmir-election-war-on-social-media-bjp-is-showing-change-nc-is-asking-questions-2024-08-31

इलेक्शन. (2024). ईसीआई डॉट गवर्मेंट डॉट इन. https://results.eci.gov.in/AcResultGenOct2024/partywiseresult-U08.htm

एहसान, एम., & हुसैन, ए. (2024, सितंबर 24). सोशल मीडिया इमर्जिंग ऐज फर्क मल्टीप्लायर फॉर न्यूकमर्स इन जे & के इलेक्शन बैटल. हिंदुस्तान टाइम्स. https://www.hindustantimes.com/cities/chandigarh-news/social-media-emerging-as-force-multiplier-for-newcomers-in-j-k-election-battle-101727203256733.html

गुल, एस. महाजन, आई., निशा, ऐन. टी., शाह, टी. ए. आसिफा, जे. और अहमद, एस. (2016). ट्वीट्स स्पीक लाउडर देन लीडर्स एंड मासेस. ऑनलाइन इनफोर्मेशन रिव्यू, 40(7), 900–912. https://doi.org/10.1108/oir-10-2015-0330

गैंबल, एस. रिचर्ड, एल., & रॉयटर, सी. (2020ए). डिस्कसिंग कॉनफ्लिक्ट इन सोशल मीडिया : द यूज ऑफ ट्विटर इन द जम्मू एंड कश्मीर कॉनफ्लिक्ट. मीडिया, वार & कॉनफ्लिक्ट, 15(4), 175063522097099. https://doi.org/10.1177/1750635220970997

गैंबल, एस. रिचर्ड, एल., & रॉयटर, सी. (2020बी). डिस्कसिंग कॉनफ्लिक्ट इन सोशल मीडिया : द यूज ऑफ ट्विटर इन द जम्मू एंड कश्मीर कॉनफ्लिक्ट. मीडिया, वार & कॉनफ्लिक्ट, 15(4), 175063522097099. https://doi.org/10.1177/1750635220970997

डिस्कसिंग कॉनफ्लिक्ट इन सोशल मीडिया : द यूज ऑफ ट्विटर इन द जम्मू एंड कश्मीर कॉनफ्लिक्ट. (2020). https://ouci.dntb.gov.ua/en/works/ldE6Avn9/

तलहा, एल. टी. & सुधाकर, आर. (2022, जून 23). सोशल मीडिया एंड ऑनलाइन रेडिकलाइजेशन : अ केस स्टडी ऑफ जम्मू एंड कश्मीर. https://www.researchgate.net/publication/362212783_Social_Media_and_Online_Radicalization-A_Case_Study_of_Jammu_and_Kashmir

फेसबुक . (2023ए). फेसबुक डॉट कॉम. https://www.facebook.com/INCJammuKashmir?mibextid=ZbWKwL

फेसबुक. (2023बी). फेसबुक डॉट कॉम. https://www.facebook.com/JKNationalConference?mibextid=ZbWKwL

फेसबुक. (2023सी). फेसबुक डॉट कॉम. https://www.facebook.com/jkpdp1?mibextid=ZbWKwL

बीजेपी जम्मू एंड कश्मीर. (2022). फेसबुक. https://www.facebook.com/BJP4JnK?mibextid=ZbWKwL

ब्यूरो, ई. (2024, अक्टूबर 8). ईटी ग्राफिक्स : ऐन ओवरव्यू ऑफ जम्मू एंड कश्मीर इलेक्शन रिजल्ट. द इकोनॉमिक टाइम्स. https://m.economictimes.com/news/elections/assembly-elections/jammu-kashmir/et-graphics-an-overview-of-the-jammu-and-kashmir-election-result/articleshow/114057850.cms

रंजन ए. (2024, सितंबर 30). जम्मू एंड कश्मीर असेंबली इलेक्शन इस अ फाइट फॉर इलेक्टोरल ऑटोनोमी एंड सोशल-इंजीनियरिंग-लेड डेवलपमेंट. फ्रंटलाइन. https://frontline.thehindu.com/politics/jammu-kashmir-assembly-election-voters-article-370-supreme-court-poonch-rajouri-muslim-voters/article68689497.ece

शाह, ए. आर. (2024). जम्मू एंड कश्मीर असेंबली इलेक्शंस : विल इमोशनल कैंपेनिंग ऐंड. मेनस्ट्रीम वीकली. https://www.mainstreamweekly.net/article15138.html

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 97-105, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

अंतरराष्ट्रीय मीडिया संगठन : एक अध्ययन

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार[1]

सारांश

विश्वभर में मीडियाकर्मियों के कल्याण हेतु विभिन्न संगठनों की स्थापना होती रही है। ऐसे पहले संगठन की स्थापना 3 मई, 1852 को अमेरिका में 'नेशनल टाइपोग्राफिकल यूनियन' के रूप में होने की जानकारी मिलती है। बाद में स्वीडन और अन्य देशों में भी ऐसे संगठनों की स्थापना हुई। ऑस्ट्रेलिया, हंगरी, ब्रिटेन, सोवियत संघ आदि देशों में भी अनेक संगठनों की स्थापना हुई और उन सभी संगठनों ने अपने-अपने स्तर पर मीडिया में काम करने वाले कर्मियों की भलाई हेतु काम किए। सरकारों और मीडिया मालिकों के साथ उनके अनेक संघर्ष आज भी स्मरण किए जाते हैं। उन्होंने न्यायालयों में भी लड़ाइयाँ लड़ीं और विजय प्राप्त की। उन संगठनों की सफलता से भारत सहित अन्य देशों में भी पत्रकारों को एकजुट होने की प्रेरणा मिली। उस एकजुटता से बहुत से देशों में मीडियाकर्मियों के लिए बेहतर कार्यदशाएँ उपलब्ध कराने में सफलता मिली। उनके संघर्षों के मद्देनजर कहा जा सकता है दुनियाभर में पत्रकार आज यदि सम्मानजनक ढंग से काम कर पा रहे हैं तो उसका बड़ा श्रेय मीडिया संगठनों को जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में ऐसे अंतरराष्ट्रीय मीडिया संगठनों के योगदान का अध्ययन और विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन से पता चलता है कि विश्व स्तर पर आज ऐसे मीडिया संगठन भी सक्रिय हैं, जिनका उद्देश्य भारत जैसी उभरती विश्वशक्तियों का विरोध करना मात्र है। शोध हेतु द्वितीयक स्रोतों से तथ्य एकत्र किए गए हैं।

संकेत शब्द : अंतरराष्ट्रीय मीडिया संगठन, नेशनल टाइपोग्राफिकल यूनियन, इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स, इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स, स्वेस्का टाइपोग्राफोर गुनडेट, बैंडगो प्रेस एसोसिएशन, नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स, अमेरिकन न्यूजपेपर गिल्ड

प्रस्तावना

मजदूर आंदोलन के कारण जिस प्रकार विश्वभर में मजदूरों को उनके अधिकार मिले, कार्यस्थल पर आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हुईं, सम्मानजनक वेतन प्राप्त होने लगा, सामाजिक सुरक्षा के प्रबंध हुए और नौकरी की सुरक्षा तय हुई, उसी प्रकार विश्वभर में मीडियाकर्मियों को मीडिया श्रमिक आंदोलन के कारण सम्मानजनक ढंग से काम करने की सुविधाएँ प्राप्त हुईं। हालाँकि इस सत्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि मजदूर आंदोलन के भटक जाने से जिस प्रकार विश्वभर में मजदूरों को नुकसान हुआ, उसी प्रकार मीडिया श्रमिक आंदोलन के भटक जाने से मीडियाकर्मियों को भी नुकसान हुआ। अक्सर होने वाली उद्देश्यहीन हड़तालों, हिंसा, तोड़फोड़ और उद्योग हित को नजरंदाज कर मजदूर हित पर अड़ जाने की जिद से जिस प्रकार सामान्य उद्योग जगत में मजदूर आंदोलन अपनी साख और शक्ति खो बैठा, उसी प्रकार मीडिया में भी हुआ। परिणामस्वरूप अच्छे मीडिया संस्थानों में काम करने वाले पत्रकार मीडिया संगठनों से दूरी बनाने लगे। मीडिया में आने वाले नए पत्रकार भी मीडिया श्रम आंदोलन से जुड़ना नहीं चाहते। मीडिया संगठनों के संघर्ष के कारण मीडियाकर्मियों को जो सुविधाएँ प्राप्त हुई थीं, उनमें से आज बहुत-सी सुविधाएँ छिनती जा रही हैं। इस हकीकत से इनकार नहीं किया जा सकता कि मीडिया में आज पत्रकार अनुबंध पर नौकरी करते हुए पूरी तरह मीडिया मालिकों के रहमो करम पर काम करने को बाध्य हैं। बदले तकनीकी माहौल में न तो उनके काम के घंटे निर्धारित हैं और न ही ओवरटाइम तथा अन्य सुविधाएँ। शोषण की पराकाष्ठा है, लेकिन कोई भी पत्रकार संगठन उनके लिए आवाज उठाने की स्थिति में नहीं है। विश्वभर में पत्रकार संगठनों की यह स्थिति कैसे और क्यों हो गई, इस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन गुणात्मक प्रकृति का है। इसके लिए मुख्यत: द्वितीयक स्रोतों से तथ्य संगृहीत किए गए हैं। द्वितीयक स्रोत के तौर पर विभिन्न पुस्तकों और ऑनलाइन माध्यमों से जानकारी प्राप्त की गई है।

वैश्विक पत्रकार आंदोलन का इतिहास

वैश्विक मीडिया श्रम संगठनों के इतिहास पर नजर डालते हैं तो अमेरिका की इंटरनेशनल टाइपोग्राफिकल यूनियन सबसे पुराना मीडिया श्रम संगठन प्रतीत होता है। इसकी स्थापना 3 मई, 1852 को संयुक्त राज्य अमेरिका में 'नेशनल टाइपोग्राफिकल यूनियन' के रूप में हुई थी। बाद में कनाडा से भी कुछ सदस्यों को इसमें शामिल कर लेने के कारण वर्ष 1869 में इसका नाम बदलकर 'इंटरनेशनल टाइपोग्राफिकल यूनियन' कर दिया गया। यह पहली यूनियन थी, जिसमें महिलाओं को भी सदस्य बनने की अनुमति थी। प्रिंट मीडिया इंडस्ट्री से जुड़े टाइपोग्राफर उस समय प्राय: शिक्षित, आर्थिक रूप से गतिशील और समाचार पत्रों के साथ हर प्रमुख केंद्र से जुड़े थे। संस्था के तत्कालीन अध्यक्ष डब्ल्यू.बी. प्रेस्कॉट ने वर्ष 1897 में 48 घंटे के कार्य सप्ताह और सभी प्रिंटरों के लिए एक मानक वेतनमान निर्धारित कराने में सफलता हासिल की। बाद में पूरे मीडिया उद्योग में 40 घंटे के कार्य सप्ताह की शुरुआत हुई। इससे अन्य यूनियनों को भी मजदूरों के लिए 40 घंटे के कार्य सप्ताह की शुरुआत कराने में मदद मिली (मोलिनेक्स, 2025)।

स्वीडन का 'स्वेस्का टाइपोग्राफोर गुनडेट'

उसी दौरान स्वीडन में भी पत्रकारों के संगठित होने की जानकारी

[1]अध्यक्ष, रणनीतिक संचार विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), नई दिल्ली. ईमेल : pramod.kumar@iimc.gov.in

मिलती है। वैसे तो स्वीडन में अनेक पत्रकार संगठन हैं, लेकिन सबसे पुराना संगठन है 'पब्लिसिस्ट्स क्लबिन' पत्रकार क्लब, जिसकी स्थापना 1874 में हुई थी। इस क्लब में पत्रकारों के लिए सांस्कृतिक गतिविधियाँ आयोजित होती थीं। वर्ष 1976 में इस क्लब के 2,106 सदस्य थे। पत्रकारों का एक दूसरा संगठन है 'सर्वेस्का जर्नलिस्ट फोरमोंडेट' यानी स्वीडिश पत्रकार संघ, जिसकी स्थापना 1901 में हुई थी। यह पत्रकारों का मजदूर संघ है। यहाँ समाचार पत्र स्वामियों और प्रकाशकों के संगठन की स्थापना 1998 में हुई थी। इसका नाम 'स्वेस्का टिडनिंग सुटगिवरफोरिननिनजेन' है। इसके अतिरिक्त उदार दलीय पत्रकारों, अनुदार दलीय पत्रकारों, मध्य दलीय पत्रकारों और सोशल डेमोक्रेट पत्रकारों के अलग-अलग संगठन हैं। कंपोजिटरों तथा अन्य प्रेस मजदूरों का भी संगठन था 'स्वेस्का टाइपोग्राफोर गुनडेट', जिसकी स्थापना 1849 में हुई थी और यह स्वीडन का सबसे पुराना संगठन है (विश्वबंधु, 1977)।

आस्ट्रेलियाई पत्रकार संघ

पत्रकारों के संगठित होने की दूसरी जानकारी ऑस्ट्रेलिया से मिलती है, जहाँ 25 अक्टूबर, 1890 को विक्टोरिया के संवाददाता संघ की पहली वार्षिक बैठक हुई थी। "इस संघ का इतिहास बड़ी तपस्या का इतिहास रहा। मेलबोर्न के पत्रकारों ने अपने वेतन और काम की शर्तों में सुधार हेतु एक संगठन बनाने का निश्चय किया। इसकी शुरुआत 'द एज' दैनिक पत्र के संवाददाता ईजीएल स्वीट ने की। पहली बैठक में यह तय किया गया कि यदि समाचार पत्रों के मालिक किसी कर्मचारी को पत्रकार संघ की सदस्यता के कारण दंडित करेंगे तो शेष सदस्य अपने वेतन में से प्रति सप्ताह एक-एक पौंड तक उसके लिए चंदा करेंगे। उस समय पत्रकारों का वेतन लगभग तीन पौंड प्रति सप्ताह होता था। पर उसी रात स्वीट को नौकरी से निकाल दिया गया। बैठक के बाद जब स्वीट अपने कार्यालय पहुँचा तो उसे एक पत्र मिला, जिसमें उसे नौकरी से निकालने की सूचना थी" (लोकराज वार्षिकी, 1977, पृष्ठ-5)।

इस प्रकार के दमन के कारण यह संवाददाता संघ अधिक समय तक नहीं चल सका। हालाँकि इसके बाद भी अलग-अलग स्थानों पर पत्रकार संगठन बनते रहे। सन् 1900 में ऑस्ट्रेलिया के ही तस्मानिया में पत्रकारों की बैठकें होती थीं। उसके बाद तस्मानिया के जार्ज ब्रिक हिल ने विक्टोरिया में 1901 में 'बैंडगो प्रेस एसोसिएशन' की स्थापना की। इस संस्था ने माँग की कि संवाददाताओं को सप्ताह में रविवार का अवकाश दिया जाए। परिणामस्वरूप, महीने के चार में से एक रविवार को उन्हें अवकाश मिलने लगा। 1910 में ऑस्ट्रेलिया के ही बलाराट में पत्रकार संघ बना, जिसके प्रयासों से पत्रकारों को वेतन वृद्धि मिली। इस सफलता के बाद अन्य स्थानों पर भी पत्रकार एकजुट हुए। ब्रोकिन हिल, होवार्ट, पर्थ, और मेलबोर्न में विभिन्न पत्रकार संघों की स्थापना हुई। सन् 1911 में उसे सरकार से मान्यता प्राप्त हुई और मालिकों के साथ उसका एक ऐतिहासिक समझौता हुआ, जिसके कारण पत्रकारों के वेतन तथा काम करने की शर्तें सुधारी गई, जो सारे देश में लागू की गई।

आस्ट्रेलिया में राष्ट्र-मण्डलीय समझौता तथा पंचायत अधिनियम में परिवर्तन किए गए। परिवर्तन के बाद देश में मीडिया श्रम आंदोलन की दृष्टि से एक बड़ा बदलाव हुआ। राष्ट्र-मंडलीय समझौते तथा पंचायत अधिनियम में परिवर्तन के अनुसार सारे देश के लिए एक औद्योगिक संघ का पंजीकरण कराया जा सकता था तथा पत्रकारिता को भी उद्योग माना जा सकता था। मेलबोर्न के 'प्रेस बौंड' नामक पत्रकार संघ के सचिव श्री बर्टकुक उस समय 'हेराल्ड' पत्र के संसदीय संवाददाता थे और उन्हें यह समझ में आ गया कि इस कानून के अंतर्गत सारे आस्ट्रेलिया के लिए एक पत्रकार संघ बनाया जा सकता है और उसे श्रमिक संघ की मान्यता मिल सकती है। इस मामले को आगे बढ़ाने के लिए 10 दिसंबर, 1910 को मेलबोर्न की फ्लैंडर्स स्ट्रीट के तहखाने में स्थित एक कैफे में पत्रकारों की एक बैठक हुई। 'आगर्स' और 'द एज' समाचार पत्रों के अधिकारियों ने अपने पत्रकारों को स्पष्ट निर्देश दिया था कि वे उस बैठक में न जाएँ। ऐसे प्रतिबंधों के बावजूद उस बैठक में 100 पत्रकार शामिल हुए। बैठक में जब एक पत्रकार संघ बनाने की बात आई तो कोई पत्रकार अध्यक्ष बनने के लिए तैयार नहीं हुआ। लेकिन जैसे-तैसे एक न्यूज एजेंसी चलाने वाले डेववाकर नामक पत्रकार को अध्यक्ष बनाकर काम चलाया गया। सचिव पद के लिए एक ऐसे व्यक्ति जिम मैके को चुना गया, जो 'द वर्कर' नामक एक मजदूर पत्र में काम करता था। माना गया कि मजदूर पत्र में काम करने के कारण शायद उसे दंडित नहीं किया जाएगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मजदूरों के पत्रों में भी पत्रकारों की हालत दयनीय थी और मजदूर संगठनों में भी पत्रकारों के संगठनों के प्रति कोई उत्साह नहीं था। उस बैठक में कुछ लोगों ने यह मत प्रकट किया कि पत्रकारिता का पेशा भले आदमियों का पेशा है और उन्हें मजदूर संघ की सामूहिक सौदेबाजी जैसे चक्करों में नहीं पड़ना चाहिए। इस पर एक बाहरी संवाददाता ने कहा कि रुपया चाहे वह कसाई की जेब में हो या अखबार वाले की जेब में, उसका मूल्य एक ही रहता है। उन्होंने कहा कि सामूहिक सौदेबाजी के कारण कसाइयों की हालत पत्रकारों से ज्यादा अच्छी है, तो बताइए क्या आप यह चाहते हैं कि कसाइयों को जो वेतन मिलता है, वहीं आपको मिले। और उनके पक्ष में बहुत से हाथ उठ गए। यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया कि पंचायत अधिनियम के अंतर्गत संस्था की रजिस्ट्री कराई जाए। जो समिति बनाई गई उसमें श्री टी.सी. ब्रनन भी थे, जो बाद में आस्ट्रेलियाई मंत्रीमंडल में मंत्री बने। पंजीकरण कराने के आवेदन पत्र का विरोध किया गया और पंचायत अदालत के रजिस्ट्रार के समक्ष बहुत से संपादकों, अग्रलेख लेखकों, कार्याध्यक्षों या वरिष्ठ पत्रकारों की ओर से यह आपत्ति की गई कि उनकी श्रेणियों को सदस्यता में न सम्मिलित किया जाए। इसी तरह पत्र-संचालकों ने भी घोर आपत्ति की, परंतु ये आपत्तियाँ नामंजूर की गईं और 24 मई, 1911 को संघ का पंजीकरण करके उसे मान्यता प्रदान कर दी गई। इसके बाद ही संघ ने वेतन तथा काम की शर्तों के संबंध में न्यायालय के समक्ष वाद दायर किया और दिसंबर 1911 में मालिकों के साथ एक समझौता हुआ, जिसमें समाचार पत्रों का वर्गीकरण किया गया और न्यूनतम वेतन निश्चित किया गया। जो समझौते हुए उसके परिणामस्वरूप सदस्यों के वेतन में भारी वृद्धि की गई। इसके बाद अगले वर्ष नई माँगें उठाई गईं, समझौते हुए, फिर उनके लिए अदालत में लड़ाई लड़नी पड़ी और 11 मई, 1917 को न्यायालय ने पत्रकार संघ के पक्ष में निर्णय देकर मेलबोर्न और सिडनी के समाचार-संपादकों, अग्रलेख सिद्ध लेखकों, मुख्य उप-संपादकों, उप-संपादकों तथा अग्रणी साधारण और जूनियर पत्रकारों और साप्ताहिक पत्रों में प्रधान संपादकों तथा उप-संपादकों के वेतन निश्चित कर दिए गए। इसके साथ ही यह भी निश्चित कर दिया कि काम के घंटे दिन में 46 और रात में 40 प्रति घंटे प्रति सप्ताह होंगे। ओवरटाइम, प्रशिक्षण, जिला

संवाददाताओं, छुट्टियाँ, बीमारी आदि के सबंध में भी निर्णय किए गए। उस संघर्ष के बाद संघ की धाक पूरे देश में जम गई (लोकराज वार्षिकी, 1977, पृष्ठ-5-6)।

इस प्रकार आस्ट्रेलिया का पत्रकार संघ पत्रकारों की सेवा में एक अग्रणी संगठन रहा है। इस संघ का इतिहास केवल आंदोलन का इतिहास नहीं है। वर्ष 1944 में इसने एक आचार संहिता बनाकर उसे अलग से संगठन के संविधान में सम्मिलित किया। इसके अंतर्गत 'डेली टेलीग्राफ' द्वारा एक आश्वासन भंग किए जाने पर संघ की आचार संहिता के अनुसार 'डेली टेलीग्राफ' के संपादक पर 50 पौंड का जुर्माना किया गया। उस निर्णय के विरुद्ध न्यायालय में एक अपील भी की गई, जिसमें संघ विजयी हुआ। इस प्रकार आस्ट्रेलियाई पत्रकार संघ ने पूरे विश्व के श्रमजीवी पत्रकार संघों के लिए संघर्ष का एक आदर्श उपस्थित किया (लोकराज वार्षिकी, 1977, पृष्ठ-6)।

ब्रिटेन की 'नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स'

ब्रिटेन के राष्ट्रीय पत्रकार संघ की स्थापना 17 नवंबर, 1906 को मानचेस्टर के एक होटल में हुई। लगभग 50 पत्रकारों ने एक श्रमजीवी पत्रकार संघ बनाने का निर्णय किया और सारे देश में उसके सदस्य बनाए गए। इसके बाद 29-30 मार्च, 1907 को बर्मिंघम के एकोर्न होटल में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें निर्णय किया गया कि 'नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स' नाम से एक संगठन बनाया जाए। संघ के अध्यक्ष आर.सी. स्पेंसर और महासचिव डब्ल्यू.एन. वाट्स को चुना गया। वाट्स ने 1907 से लेकर 1908 तक महासचिव का पद सँभाला। उसके बाद 1918 से 1936 तक एच.एम. रिचार्डसन महासचिव रहे। उनके बाद सन् 1937 से 1952 तक सी.जे. बुंडोक महासचिव रहे और फिर एच.जे. ब्रेडेल महासचिव नियुक्त हुए। ब्रिटेन के इस राष्ट्रीय पत्रकार संघ ने पत्रकारों के श्रमजीवी आंदोलन को बहुत बड़ा रूप प्रदान किया। इसके अधिवेशन नियमित रूप से होते रहे और इसने पत्रकारों के लिए व्यापक संघर्ष किया। यह संगठन प्रेस कर्मचारी संगठन से संबद्ध हुआ, जिसके कारण इसे औद्योगिक क्षेत्र में बड़ी सफलता मिली। पर इसके कारण कभी-कभी इसे ऐसी हड़तालों में भी भाग लेना पड़ा, जो पत्रकारों की समस्याओं से संबंधित नहीं, बल्कि राजनीतिक थीं, जैसे सन् 1926 की ब्रिटेन की बड़ी हड़ताल। इस हड़ताल को लेकर सदस्यों में मतभेद भी हुए।

इस संगठन ने ब्रिटेन में पत्रकारों के लिए 'क्लोज्ड शॉप' यानी 'बंद दुकान' की प्रथा शुरू करायी, जिसके अनुसार जो पत्रकार इस संघ का सदस्य नहीं था, स्वीकृत संस्थानों में नौकरी नहीं पा सकता। सदस्यों के वेतन और काम की शर्तों में सुधार करने तथा जिन पत्रकारों को दंडित किया गया उनकी रक्षा करने के लिए इस संगठन ने अनवरत संघर्ष किया। इसने पत्रकारों के लिए एक आचार संहिता भी बनाई (लोकराज वार्षिकी, 1977, पृष्ठ-4)। पत्रकार कल्याण और पत्रकारिता में नए मानदंड स्थापित करने की दृष्टि से इस संगठन ने अनेक ऐसे कार्य किए जो अन्य देशों के पत्रकारों को भी प्रोत्साहित करते रहे। लार्ड नार्थ विलप जैसे बड़े पत्र-संचालकों ने इस संगठन की स्थापना का स्वागत किया था। एक समय इस संगठन की ऐसी छवि थी कि जब भी संपादकों को योग्य पत्रकारों की आवश्यकता होती थी तो इस संगठन से नाम माँगे जाते थे।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस पत्रकार संघ का योगदान स्मरणीय है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् 1946 में अपने लिवरपूल अधिवेशन में इस संगठन ने माँग की कि ब्रिटेन की सरकार पत्रों के संबंध में एक शाही आयोग की स्थापना करे जो इस बात की जाँच करे कि पत्रों के स्वामित्व, नियंत्रण और अर्थव्यवस्था में समाचार समितियों और पत्रिकाओं के संचालन में कौन से आर्थिक तत्त्व हावी हो रहे हैं। विशेष तौर पर यह देखा जाए कि क्या पत्रों के स्वामित्व में एकाधिकार बढ़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप देशी और विदेशी समाचारों के आवश्यक तत्त्व दबाए जाते हैं या उन्हें गलत ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इस पत्रकार संघ ने प्रस्ताव ही पारित नहीं किए, बल्कि सरकार के समक्ष प्रतिनिधिमंडल भी भेजे। इसी संघ के एक सदस्य हेडिन डेविज ने, जो संसद-सदस्य थे, 29 अक्टूबर, 1946 को ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स में इस प्रस्ताव को पेश किया। अनेकों सदस्यों ने इसका समर्थन किया। वह प्रस्ताव 157 के मुकाबले 270 मतों से पारित हुआ। इससे अप्रैल 1947 में प्रथम शाही आयोग की स्थापना सर डेविड रोस की अध्यक्षता में हुई। बाद में उसकी रिपोर्ट को हाउस ऑफ कॉमन्स के समक्ष प्रस्तुत किया गया। रिपोर्ट में स्वामित्व के केंद्रित होने और बहुत से मामलों में पत्रों के आचरण की आलोचना की गई थी। उस रिपोर्ट में यह भी प्रस्ताव किया गया था कि एक प्रेस कौंसिल की स्थापना की जाए, जिसमें मालिकों, संपादकों और अन्य पत्रकारों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी व्यक्ति हों जो पत्रकार नहीं हैं। बाद में प्रेस परिषद् की स्थापना हुई, जो अभी भी काम कर रही है। इसके बाद दूसरा शाही आयोग भी बना, जिसकी सिफारिशों में अन्य देशों के समाचार पत्रों के स्वामित्व की जाँच करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। परिणामस्वरूप अमेरिका, भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान आदि देशों में इस तरह की जाँचें हुई। अन्य देशों में भी पत्रों के एकाधिकार के बारे में चिंता प्रकट की गई। इस प्रक्रिया से अन्य देशों में प्रेस परिषदों की स्थापना हुई (लोकराज वार्षिकी, 1977, पृष्ठ-4-5)।

सोवियत संघ का पत्रकार संघ

सोवियत संघ मीडिया की दृष्टि से एक बड़ा केंद्र रहा है। वर्ष 1941 में वहाँ 35 हजार पेशेवर पत्रकार थे, जिसमें 29 हजार वहाँ के नौ हजार पत्रों में काम करते थे। द्वितीय युद्ध के पश्चात् सोवियत संघ में पत्रकारों का संगठन बना, जिसने 1941 में कोपेनहेगन में होने वाली अंतरराष्ट्रीय पत्रकार संगठन की बैठक में भाग लिया। वर्ष 1976 में सोवियत संघ में 8 हजार समाचार पत्र और 6500 पत्र-पत्रिकाएँ थीं। उन पत्रों में लगभग एक लाख पत्रकार काम करते थे। वे सभी सोवियत संघ के पत्रकार संघ के सदस्य थे, जो अपने आकार के कारण संसार का सबसे बड़ा पत्रकार संघ था। साधनों की दृष्टि से भी संसार का कोई दूसरा पत्रकार संघ उसका मुकाबला नहीं कर सकता था, क्योंकि इतनी बड़ी सदस्य संख्या से इसकी काफी आय होती थी। सोवियत संघ का पत्रकार संघ अपने उद्देश्यों और कार्यप्रणाली में संसार के विशेषतया उन देशों के पत्रकार संगठनों से भिन्न था, जो साम्यवादी दलों से शासित नहीं थे। इसके नियमों में कहा गया था कि सोवियत संघ का पत्रकार संघ अपनी गतिविधियों में मार्क्सवाद और लेनिनवाद के सिद्धांतों, साम्यवादी दल तथा सोवियत सरकार की नीतियों से निर्देशित होता है। उसके उद्देश्यों में कहा गया कि प्रेस के संबंध में लेनिन के सिद्धांत मौलिक और अडिग सिद्धांत हैं।

सोवियत संघ का पत्रकार संघ और इसके अन्य संगठन अपनी गतिविधियाँ सोवियत संघ के साम्यवादी दल के नेतृत्व में और पत्रकार संघों, कोमसोमोल तया अन्य सामाजिक संगठनों के घनिष्ठ संपर्क से चलाते रहे। इसके उद्देश्यों में ट्रेड यूनियन की गतिविधियाँ नहीं थीं। यह कार्य प्रेस कर्मचारियों का संघ करता था। इसके उद्देश्यों में लिखा हुआ था कि यह संगठन सोवियत पत्रकारों में सैद्धांतिक, शैक्षणिक व रचनात्मक कार्य करेगा। गोष्ठियाँ, पाठ्यक्रम, प्रदर्शनियाँ, सम्मेलन, व्याख्यानमालाएँ, अध्ययन-शिविर आदि का आयोजन करेगा, समाचार पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करेगा और ऐसे साहित्य का प्रकाशन करेगा, जिसका संबंध पत्रकारिता के पेशे से हो। सोवियत संघ के पत्रकार संघ कार्यालय में विभिन्न भाषाएँ जानने वाले दुभाषिये होते थे और वरिष्ठ पत्रकार उसका संचालन करते थे (लोकराज वार्षिकी, 1977, पृष्ठ 6 -7)। सोवियत संघ के बिखरने के बाद वहाँ के पत्रकार संगठनों की शक्ति भी बिखर गई और आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उनकी चर्चा नहीं होती।

हंगरी पत्रकार संघ

विश्व के बड़े पत्रकार संगठनों में हंगरी के पत्रकार संघ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसकी विशेषता इसकी उच्चस्तरीय क्षमता है, जिसके कारण अंतरराष्ट्रीय पत्रकार संगठन ने इसे पत्रकारों का एक स्कूल चलाने तथा उच्चकोटि के मुद्रण की एक पत्रिका प्रकाशित करने का भार सौंप रखा है। हंगरी के पत्रकार संघ का संक्षिप्त नाम 'मुओस्ज' है। इसके नियमों में लिखा हुआ है कि यह संगठन हंगेरियन पत्रकारिता की राजनीतिक और नैतिक शुद्धता की रक्षा करता है। पत्रकारों की शिक्षा, पेशेवर तथा स्नातकोत्तर प्रशिक्षण का निरंतर कार्य करता है, पत्रकारिता और प्रेस के सैद्धांतिक तया व्यावहारिक प्रश्नों का सफल हल निकालने की दृष्टि से विचार करता है और निरंतर पत्रकारिता और जन संचार साधनों के मापदंडों को सुधारने की कोशिश करता है। यदि इसके सदस्यों पर कोई गैरकानूनी आक्रमण हो तो यह उन्हें कानूनी और नैतिक संरक्षण प्रदान करता है और जो पत्रकार समाजवाद पत्रकारिता के नैतिक सिद्धांतों का उल्लंघन करते हैं, उनके खिलाफ कड़े कदम उठाता है। अपने सदस्यों को मुफ्त कानूनी सहायता देता है। इस पत्रकार संगठन की ओर से बुडापेस्ट में पत्रकारों का विद्यालय चलाया जाता है, जहाँ से एशिया और अफ्रीका के देशों के बहुत से पत्रकार प्रतिवर्ष तैयार होते हैं। दूसरी तरफ बलाटोन झील पर पत्रकारों के लिए एक होटल भी है, जहाँ पत्रकार अपने परिवारों के साथ आकर ठहर सकते हैं। इस संघ के तत्त्वावधान में 'इंटर प्रेस ग्राफिक' नामक एक सचित्र त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी, जिसमें छपाई के डिजाईनों, कार्टूनों, चित्रों आदि की समीक्षा की जाती थी। यहाँ से इंटरप्रेस फोटो नामक अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी का भी आयोजन होता था (लोकराज वार्षिकी, 1977, पृष्ठ-7)।

अमेरिकन न्यूजपेपर गिल्ड

अमेरिकन न्यूजपेपर गिल्ड संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा का सबसे बड़ा पत्रकार संगठन है। इस संगठन का जन्म 1933 में न्यूयॉर्क में हुआ । प्रसिद्ध पत्रकार हेवुड ब्राउन ने इसकी स्थापना की थी। उस समय पत्रकार इतने डरे हुए थे कि जब पत्रकारों की कोई बैठक होती थी तो वे ब्राउन के मित्र मोरेस अर्नेस्ट के घर पर अपनी पत्नियों सहित इकट्ठे होते थे, जिससे कि अगर कोई मालिक या समाचार पत्र अधिकारी उनसे पूछे तो वे कहें कि वे तो अर्नेस्ट के घर शराब की पार्टी में गए थे न कि किसी संस्था की बैठक में। 17 सितंबर, 1933 को न्यूयॉर्क के समाचारपत्रों के संपादकीय विभागों में काम करने वाले 300 कर्मचारियों की बैठक में 'अमेरिकन न्यूजपेपर गिल्ड' की स्थापना का निश्चय किया गया। पहले इसमें केवल संपादकीय विभाग के कर्मचारी ही थे, लेकिन बाद में प्रबंध विभाग में काम करने वाले वे कर्मचारी भी इसमें सम्मिलित कर लिए गए, जो अधिकारी नहीं थे और प्रेस कर्मचारियों की सूची में नहीं आते थे। पत्रकारों की यह बैठक इसलिए हुई थी कि समाचारपत्रों के संचालक नवगठित नेशनल रिकवरी एडमिनिस्ट्रेशन और पत्रकारों के अधिकार सीमित करना चाहिए थे। इस संगठन को सबसे बड़ी सफलता सन् 1937 में मिली, जब अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अमेरिकन न्यूजपेपर गिल्ड की सदस्यता से प्रेस की स्वाधीनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हुआ यह था कि 1935 में जब अमेरिकन न्यूजपेपर गिल्ड की न्यूयॉर्क शाखा ने एसोसिएटेड प्रेस से माँग की कि वेतन के संबंध में वह सामूहिक समझौते के लिए वार्ता करे। उसी दिन उस समाचार समिति के न्यूयॉर्क के प्रमुख कार्यकर्ता और गिल्ड के सदस्य मोरेस वाटसन को नौकरी से निकाल दिया गया। ऐसा इसलिए किया गया, ताकि संगठन के प्रभावशाली मजदूर नेता को दंडित करने से अन्य पत्रकार दब जाएँ। अमेरिकन न्यूजपेपर गिल्ड ने यह प्रश्न राष्ट्रीय श्रम संबंधी बोर्ड के सामने उपस्थित किया, जिसने वाटसन को काम पर वापस लेने का निर्णय दिया। अमेरिकन न्यूजपेपर गिल्ड की और से 'गिल्ड रिपोर्टर' नाम से एक पत्र भी प्रकाशित होता था (लोकराज वार्षिकी, 1977, पृष्ठ 8-9)।

इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स

1950 के आसपास विश्व में प्रमुख रूप से दो अंतरराष्ट्रीय पत्रकार संगठन थे—'इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स' और 'इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स'। इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स का मुख्यालय प्राग में था और इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स का मुख्यालय ब्रुसेल्स में। इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स की स्थापना 1926 में पेरिस में हुई थी। लेकिन 1946 में इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स और 'इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स ऑफ द अलाइड एंड फ्री कंट्रीज' को एक साथ मिलाकर इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स नाम से एक नए अंतरराष्ट्रीय पत्रकार संगठन की स्थापना कोपेनहेगन में की गई। यह नया संगठन पूरे विश्व के पत्रकारों का प्रतिनिधि था, लेकिन सन् 1950 तक इस संगठन पर पूरी तरह वामपंथियों का कब्जा हो गया, जिससे नाराज होकर गैर-वामपंथी देशों के पत्रकार संगठनों ने स्वयं को इससे अलग कर लिया और 1952 में 'इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स' को फिर से जीवित कर लिया गया। उस विभाजन का प्रमुख कारण यह बताया गया कि इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स पूरी तरह सोवियत संघ के पक्ष में प्रचार करने लगा, जिसे पश्चिमी देशों के पत्रकारों ने स्वीकार नहीं किया। शीत युद्ध के कारण सोवियत संघ और अमेरिका अलग-अलग हो गए थे। उसका असर पत्रकार संगठनों पर भी पड़ा (चतुर्वेदी, 1977, पृष्ठ 10-15 और नोर्देंसट्रेंग, 2016)। आज इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स अपना वजूद खो चुका है, परंतु इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स की

गतिविधियाँ जारी हैं। आज यह विश्व के 140 देशों में सक्रिय 187 पत्रकार संगठनों के छह लाख पत्रकारों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता है (आईएफजे, 2024)।

वैश्विक स्तर के वर्तमान पत्रकार संगठन

नेशनल एसोसिएशन ऑफ ब्रॉडकास्टर्स, अमेरिका : जैसे-जैसे मीडिया में तकनीक का प्रभाव बढ़ रहा है वैसे-वैसे मीडिया का स्वरूप विश्वभर में बदल रहा है। इस कारण मीडिया में नए प्रकार के संगठन आकार ले रहे हैं। इस समय विश्व स्तर पर 'नेशनल एसोसिएशन ऑफ ब्रॉडकास्टर्स, अमेरिका' पत्रकारों का एक बड़ा संगठन है। यह अमेरिका के रेडियो और टेलीविजन ब्रॉडकास्टर्स के हितों के लिए समर्पित संगठन है। करीब 8,300 स्थलीय रेडियो और टीवी स्टेशन तथा ब्रॉडकास्ट नेटवर्क का यह प्रतिनिधित्व करता है। इसकी स्थापना तो वर्ष 1923 में शिकागो में हुई थी, लेकिन इस समय इसका मुख्यालय वाशिंगटन में है। यह संगठन अपने सदस्यों को कई प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करता है जैसे कि पेशेवर विकास के अवसर, बीमा और यात्रा छूट। यह स्थानीय रेडियो और टेलीविजन स्टेशनों को प्रभावित करने वाले मसलों पर संसाधन, उपकरण और जानकारी देता है। यह 'ब्रॉडकास्ट रिसोर्स हब' भी संचालित करता है। शुरुआत से ही ब्रॉडकास्ट उद्योग को एक दिशा देने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसने पहली बार 1929 में एक आचार संहिता तैयार की थी। बाद के दशकों में इसने प्रति घंटे प्रसारित होने वाले विज्ञापनों की संख्या पर लगाम लगाने और विज्ञापन सामग्री को नियंत्रित करने के प्रयास भी किए। इस संगठन ने बच्चों के प्रोग्रामिंग हेतु दिशानिर्देश भी जारी किए हैं (ब्रिटैनिका, 2025)।

ब्रॉडकास्ट एजुकेशन एसोसिएशन, अमेरिका : ब्रॉडकास्ट एजुकेशन एसोसिएशन की स्थापना वर्ष 1955 में 'एसोसिएशन फॉर प्रोफेशनल ब्रॉडकास्ट एजुकेशन' के नाम से हुई थी। संगठन का वर्तमान नाम 1973 में रखा गया था। यह संगठन महाविद्यालयों में अध्ययनरत युवाओं को रेडियो और टेलीविजन के क्षेत्र में काम करने के लिए प्रशिक्षित करता है। 2500 से अधिक मीडिया प्राध्यापक, विद्यार्थी और मीडिया प्रोफेशनल इस संगठन से जुड़े हैं। इसके अलावा 275 कॉलेज तथा विश्वविद्यालय भी इस संगठन के साथ जुड़े हैं। संगठन की कॉर्पोरेट सदस्यता स्टेशनों, निर्माताओं, केबल सिस्टम, विज्ञापन एजेंसियों, कानूनी फर्मों और उद्योग पेशेवरों के लिए उपलब्ध है, जो संस्था के हितों को साझा करते हैं और इसके उद्देश्यों का समर्थन करते हैं। यह 'जर्नल ऑफ मीडिया एजुकेशन' भी प्रकाशित करता है, जो एक संपादक-समीक्षा शैक्षणिक पत्रिका है और साल में चार बार इलेक्ट्रॉनिक रूप में प्रकाशित होती है। इसका संचालन मुख्य रूप से अमेरिका से होता है (बीईए, 2024)।

सोसाइटी ऑफ प्रोफेशनल जर्नलिस्ट्स, अमेरिका : 'सोसाइटी ऑफ प्रोफेशनल जर्नलिस्ट्स' को पहले 'सिग्मा डेल्टा ची' नाम से जाना जाता था। यह अमेरिका में पत्रकारों के सबसे पुराने संगठनों में से है। इसकी स्थापना 17 अप्रैल, 1909 को डेपॉव विश्वविद्यालय में हुई थी। इस संगठन में पहले महिलाओं को सदस्यता प्रदान नहीं की जाती थी। 1969 के सैन डिएगो सम्मेलन से महिलाओं को प्रवेश देना शुरू किया गया। 1973 में इसने अपना नाम बदलकर सोसाइटी ऑफ प्रोफेशनल जर्नलिस्ट्स, सिग्मा डेल्टा ची रख लिया। 1988 में, वर्तमान नाम 'सोसाइटी ऑफ प्रोफेशनल जर्नलिस्ट्स' अपनाया गया। इसका घोषित मिशन अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करना; पत्रकारिता में उच्च मानकों और नैतिक व्यवहार को प्रोत्साहित करना; पत्रकारिता में विविधता को बढ़ावा देना और उसका समर्थन करना है। इसने एक आचार संहिता भी तैयार की है, जिसका उद्देश्य पत्रकारों को अपना काम करते समय आचरण और निर्णय लेने के उच्च मानकों का पालन करने के लिए प्रेरित करना है। इसकी अमेरिका में 300 से अधिक शाखाएँ हैं। एक समय इसकी सदस्य संख्या 10,000 तक होती थी, लेकिन वर्ष 2023 तक यह घटकर 4,000 रह गई। यह संगठन अनेक प्रकार के पुरस्कार भी प्रदान करता है (एसपीजे, 2024)।

इन्वेस्टीगेटिव रिपोर्टर्स एंड एडिटर्स : इन्वेस्टीगेटिव रिपोर्टर्स एंड एडिटर्स पत्रकारिता की गुणवत्ता में सुधार और खोजी पत्रकारिता हेतु कार्यरत है। इसकी स्थापना 1975 में हुई थी। यह पत्रकारों को सम्मानित करने के साथ-साथ उनके कौशल विकास हेतु भी काम करता है। इसका उद्देश्य खोजी पत्रकारिता में उत्कृष्टता को बढ़ावा देना है, जो स्वतंत्र समाज के लिए आवश्यक है। यह 'आईआरई' पुरस्कार भी प्रदान करता है और पत्रकारों के लिए सम्मेलन और प्रशिक्षण कक्षाएँ आयोजित करता है। इसका मुख्यालय कोलंबिया स्थित मिसौरी स्कूल ऑफ जर्नलिज्म में है। यह विश्व में खोजी पत्रकारों का सबसे बड़ा और सबसे पुराना संघ है। इसके कार्यक्रमों में नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर कंप्यूटर-असिस्टेड रिपोर्टिंग शामिल है, जिसका उद्देश्य डेटा पत्रकारिता में उत्कृष्टता को बढ़ावा देना है। यह तीन वार्षिक सम्मेलनों का आयोजन करता है। आईआरई सम्मेलन खोजी और डेटा पत्रकारों के लिए है, जबकि एनआईसीएआर सम्मेलन डेटा तकनीकों के लिए है। दोनों में खोजी और डेटा विधियों पर व्यक्तिगत और आभासी सत्र शामिल हैं, लेकिन एनआईसीएआर सम्मेलन में अधिक तकनीकी डेटा कौशल शामिल हैं, जैसे प्रोग्रामिंग भाषाओं का उपयोग, जनगणना ब्यूरो डेटा और एफओआईए (आईआरई, 2024)।

द ऑनलाइन न्यूज एसोसिएशन : 'द ऑनलाइन न्यूज एसोसिएशन' की स्थापना 1999 में हुई। यह डिजिटल पत्रकारों का विश्व का सबसे बड़ा संगठन है। इसका मुख्यालय वाशिंगटन में है। इसके 3,200 से अधिक सदस्य हैं। इसके अधिकांश सदस्य पेशेवर ऑनलाइन पत्रकार हैं। एसोसिएशन 'पेशेवर सदस्यों' को उन लोगों के रूप में परिभाषित करता है 'जिनकी मुख्य आजीविका डिजिटल प्रस्तुति के लिए समाचार एकत्र करना या बनाना है'। इनमें समाचार लेखक, निर्माता, प्रोग्रामर, ब्लॉगर, डिजाइनर, संपादक, फोटोग्राफर और अन्य लोग शामिल हैं, जो इंटरनेट या अन्य डिजिटल डिलीवरी सिस्टम के लिए समाचार बनाते हैं। अन्य सदस्यों में पत्रकारिता शिक्षक, पत्रकारिता के छात्र, मीडिया में व्यवसाय विकास, विपणन और संचार पेशेवर और ऑनलाइन पत्रकारिता के क्षेत्र में रुचि रखने वाले लोग शामिल हैं। इसके द्वारा संचालित एआई प्लेटफार्म पत्रकारों और मीडिया अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण, नेटवर्किंग अवसरों, विचार नेतृत्व और अन्य संसाधनों का मिश्रण प्रदान करता है। माइक्रोसॉफ्ट ने इस पहल के लिए शुरुआती फंडिंग की थी। यह ऑनलाइन जर्नलिज्म अवार्ड का संचालन करता है, जो डिजिटल पत्रकारिता में उत्कृष्टता और नवाचार का सम्मान करने वाले वैश्विक पुरस्कारों का एक समूह है। हर साल पत्रकारिता पुरस्कारों के लिए 20 से ज्यादा श्रेणियाँ होती हैं। इनमें न्यूजलैटर, टेक्नोलॉजी रिपोर्टिंग, सोशल मीडिया एंगेजमेंट, ऑनलाइन कमेंट्री और ब्रेकिंग न्यूज में उत्कृष्टता के लिए पुरस्कार शामिल हैं। चुनिंदा

श्रेणियों में नकद पुरस्कार भी शामिल हैं (ओएनए, 2024)।

कमेटी टु प्रोटेक्ट जर्नलिस्ट्स : 'कमेटी टु प्रोटेक्ट जर्नलिस्ट्स' की स्थापना 1981 में अमेरिकी संवाददाताओं के एक समूह द्वारा की गई थी, जिन्होंने महसूस किया कि वे उन सहकर्मियों की दुर्दशा को नजरअंदाज नहीं कर सकते, जिनको रिपोर्टिंग के दौरान अपनी जान को खतरे में डालना पड़ता है। संस्था का मुख्यालय न्यूयॉर्क में है। प्रेस की आजादी और पत्रकारों के अधिकारों के रक्षण हेतु यह काम करता है। इसे 'पत्रकारिता का रेडक्रास' भी कहा जाता है। वर्ष 1982 में संस्था ने अपने एडवोकेसी अभियान की शुरुआत की। उस समय, तीन ब्रिटिश पत्रकार—साइमन विनचेस्टर, इयान माथेर और टोनी प्राइम को फ्रॉकलैंड युद्ध को कवर करते समय अर्जेंटीना में गिरफ्तार किया गया था। कमेटी टु प्रोटेक्ट जर्नलिस्ट्स के मानद अध्यक्ष वाल्टर क्रोनकाइट के एक पत्र ने उन्हें जेल से बाहर निकालने में मदद की। आज, इस संस्था के नेटवर्क में पत्रकार, शोधकर्ता और अधिवक्ता जुड़े हुए हैं, जो दुनियाभर में पत्रकारों और प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन करने के लिए मिलकर काम कर रहे हैं (सीपेजे, 2024)।

रिपोर्टर्स विदआउट बॉर्डर्स : नाम के लिए तो 'रिपोर्टर्स विदआउट बॉर्डर्स' संयुक्त राष्ट्र, यूनेस्को, काउंसिल ऑफ यूरोप आदि का सलाहकार संगठन है तथा सूचना स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए विश्वभर में काम करता है। लेकिन व्यवहार में यह संगठन ऐसी वैश्विक ताकतों की कठपुतली है, जो किसी भी सूरत में कुछ देशों के विरोध के लिए प्रतिबद्ध हैं। आरएसएफ की स्थापना 1985 में फ्रांस के मोंटपेलियर में रॉबर्ट मेनार्ड, रेमी लौरी, जैक्स मोलेनट और एमिलियन जुबिन्यू ने की थी । इसे 1995 में एक स्वैच्छिक संगठन के रूप में पंजीकृत किया गया। मेनार्ड आरएसएफ के पहले महासचिव थे। आरएसएफ का मुख्यालय पेरिस में स्थित है। इसके 13 क्षेत्रीय और राष्ट्रीय कार्यालय हैं, जिनमें ब्रुसेल्स, लंदन, वाशिंगटन, बर्लिन, रियो दी जेनेरो, ताइपे और डकार शामिल हैं। इसके साथ 146 संवाददाताओं का एक नेटवर्क है। आरएसएफ ने वर्ष 2018 में अपने यूरोपीय ब्रॉडकास्टिंग यूनियन, एएफपी और ग्लोबल एडिटर्स नेटवर्क के साथ मिलकर 'जर्नलिज्म ट्रस्ट इनिशिएटिव' की शुरुआत की। आरएसएफ का वार्षिक प्रेस स्वतंत्रता पुरस्कार उन साहसी और स्वतंत्र पत्रकारों को दिया जाता है, जिन्होंने अपने काम के लिए धमकियों या कारावास का सामना किया है और जिन्होंने सत्ता के दुरुपयोग को चुनौती दी है। 2010 में गूगल के साथ साझेदारी में एक नेटिजन पुरस्कार की भी शुरुआत की गई थी, जो ब्लॉगरों सहित उन व्यक्तियों को दिया जाता है, जिन्होंने खोजी रिपोर्टिंग या अन्य पहलों के माध्यम से ऑनलाइन सूचना की स्वतंत्रता को आगे बढ़ाया है। रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स द्वारा प्रतिवर्ष संकलित 'विश्व प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक' जारी करता है। हालाँकि आरएसएफ तटस्थ होने का दावा करता है, लेकिन संगठन की निष्पक्षता और इसके विश्वव्यापी प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक की वैधता पर सवाल उठते रहे हैं (आरएएफ, 2024)। इस संगठन की भारत संबंधी वेबसाइट के पेज को देखें तो उस पर भारत के बारे में व्यक्त इसके विचारों से इसका भारत विरोध स्पष्ट समझ में आता है।

इंटरनेशनल विमेंस मीडिया फाउंडेशन : 'इंटरनेशनल विमेंस मीडिया फाउंडेशन' का मुख्यालय वाशिंगटन में है और यह मीडिया में महिलाओं की दशा को सुधारने के लिए प्रयासरत है। इसकी स्थापना वर्ष 1989 में हुई। इस समय इसका मुख्यालय वाशिंगटन में है। महिला पत्रकारों को मीडिया में काम करते हुए जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उनके समाधान हेतु यह उन्हें व्यावहारिक समाधान बताता है। यह महिला पत्रकारों को पुरस्कार, रिपोर्टिंग के अवसर, फेलोशिप, अनुदान, सुरक्षा प्रशिक्षण और आपातकालीन सहायता प्रदान करता है। यह साहसी महिला पत्रकारों और फोटोग्राफरों को भी पहचानने का काम करता है। वर्ष 1998 में संगठन ने अनुभवी महिला पत्रकारों के लिए नेतृत्व संस्थान शुरू किया, जहाँ उन्हें वर्ष में एक बार सप्ताह भर का नेतृत्व प्रशिक्षण दिया जाता है। संस्थान महिलाओं को मीडिया संगठनों में सफल करियर बनाए रखने के लिए प्रशिक्षित करता है और उन्हें अपने न्यूजरूम में नेतृत्व करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करता है। टीम को प्रबंधित करने और परिवर्तन के लिए रणनीतियों, वेतन पर बातचीत करने, राजनीति में नेविगेट करने और काम और घर के बीच संतुलन बनाने के सुझाव साझा करने के लिए महिलाएँ एक साथ आती हैं। ऐसे प्रशिक्षण अमेरिका के साथ-साथ दुनियाभर में आयोजित किए जाते हैं (आईडब्ल्यूएमएफ, 2024)।

इंटरनेशनल न्यूज सेफ्टी इंस्टिट्यूट : 'इंटरनेशनल न्यूज सेफ्टी इंस्टिट्यूट' पत्रकारों की सुरक्षा के लिए समर्पित संगठन है। वर्ष 2003 में स्थापित इस संस्था का मुख्यालय लंदन में है। इसका प्रबंधन दुनियाभर के प्रमुख समाचार संगठनों का प्रतिनिधित्व करने वाले न्यासी बोर्ड द्वारा किया जाता है। यह 40 से अधिक अग्रणी टीवी चैनलों, रेडियो, प्रिंट और ऑनलाइन आउटलेट को नेटवर्किंग और सूचना साझा करने का मंच प्रदान करता है। इसके सदस्य खतरनाक या असुविधाजनक कहानियों को यथासंभव सुरक्षित रूप से बताने की सामूहिक क्षमता की रक्षा करने में मदद के लिए प्रतिबद्ध हैं (आईएनएसआई, 2024)।

इंटरनेशनल कंसोर्टियम ऑफ इन्वेस्टीगेटिव जर्नलिस्ट्स : इंटरनेशनल कंसोर्टियम ऑफ इनवेस्टीगेटिव जर्नलिस्ट्स का ध्येय दुनिया में हो रहे सकारात्मक परिवर्तन से लोगों को परिचित करना है। साथ ही दुनिया में हो रहे गलत काम को उजागर करके यह दुनिया को बताना चाहता है कि उसे ठीक कैसे किया जाए। संगठन का मानना है कि लोगों को बेहतर जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है जो न केवल लोकतंत्र के लिए आवश्यक है, बल्कि यह लोगों का एक मौलिक मानवाधिकार भी है। यह संगठन 280 खोजी पत्रकारों और 100 से अधिक देशों में फैले 140 से अधिक मीडिया संगठनों का एक स्वतंत्र वैश्विक नेटवर्क है। इसका मुख्यालय वाशिंगटन, डीसी में है और इसके कर्मचारी ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस, स्पेन, हंगरी, सर्बिया, बेल्जियम और आयरलैंड में कार्यरत हैं। इसे 1997 में अमेरिकी पत्रकार चार्ल्स लुईस ने 'सेंटर फॉर पब्लिक इंटीग्रिटी' की पहल के रूप में शुरू किया था, जिसका उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय अपराध और भ्रष्टाचार को उजागर करना था। 2017 में यह पूरी तरह से स्वतंत्र संगठन बन गया। पनामा पेपर्स को सार्वजनिक करने में इसकी बड़ी भूमिका थी। पत्रकारों ने पनामा स्थित लॉ फर्म मोसैक फोंसेका की 11.5 मिलियन लीक हुई फाइलों को खँगालने में एक साल बिताया। उसने वैश्विक मीडिया का ध्यान इसकी और आकर्षित किया। उन दस्तावेजों में 14,000 से अधिक ग्राहकों और 214,000 से अधिक संस्थाओं की विस्तृत जानकारी शामिल थी, जिसमें प्रसिद्ध हस्तियों और राज्य के प्रमुखों सहित शेयरधारकों और निदेशकों की पहचान का खुलासा किया गया था। उनमें सरकारी अधिकारी और 40 से अधिक देशों के विभिन्न शासनाध्यक्षों के करीबी रिश्तेदार और

सहयोगी शामिल थे। खोजी पत्रकारिता में इस संगठन की विश्वभर में चर्चा होती है (आईसीआईजे, 2024)।

इंटरनेशनल प्रेस इंस्टिट्यूट : इंटरनेशनल प्रेस इंस्टीट्यूट (आईपीआई) एक वैश्विक संगठन है, जो प्रेस स्वतंत्रता के संरक्षण तथा पत्रकारिता के पेशे में सुधार हेतु समर्पित है। इस संस्थान की स्थापना अक्टूबर 1950 में कोलंबिया विश्वविद्यालय में 15 देशों के 34 संपादकों द्वारा की गई थी। संस्थान की सदस्यता मीडिया विभागों के प्रमुखों, ब्यूरो प्रमुखों और मीडिया संवाददाताओं के लिए भी खुली है। आईपीआई विश्वभर में प्रेस की स्वतंत्रता पर नजर रखता है और पत्रकारों और मीडिया आउटलेटों पर धमकियों और हमलों का जवाब सरकारों और अंतर-सरकारी संगठनों को विरोध पत्र भेजकर देता है। मीडिया से जुड़े मुद्दों पर गहन शोध के साथ-साथ आईपीआई नियमित रूप से नए मीडिया कानूनों की जाँच करता है और सरकारों को सुझाव देता है कि वे अपने कानून को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत मानकों के अनुरूप कैसे बना सकती हैं। आईपीआई विश्वभर में मारे गए पत्रकारों पर भी निगरानी रखता है था उनके परिवारों की मदद करता है। यह मीडिया उल्लंघनों पर एक आधिकारिक रिपोर्ट भी प्रकाशित करता है। 1996 से आईपीआई 'फ्री मीडिया पायनियर अवार्ड' प्रदान करता है। यह पुरस्कार अमेरिका स्थित 'फ्रीडम फोरम' द्वारा सह-प्रायोजित है। प्रत्येक वर्ष आईपीआई एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करता है, जहाँ विश्वभर से प्रकाशक, संपादक और वरिष्ठ पत्रकार विभिन्न मुद्दों पर बहस और चर्चा करते हैं (आईपीआई, 2024)।

इंटरनेशनल सेंटर फॉर जर्नलिस्ट्स : वर्ष 1984 में स्थापित इंटरनेशनल सेंटर फॉर जर्नलिस्ट्स (आईसीएफजे) का कार्यालय वाशिंगटन, डीसी में है। यह पत्रकारों को महत्त्वपूर्ण मसलों को कवर करने के लिए कौशल प्रदान करता है। इस समय यह 95 देशों के 1,77,000 से अधिक पत्रकारों के साथ सीधे काम कर रहा है। यह पत्रकारों और मीडिया प्रबंधकों हेतु प्रशिक्षण, कार्यशालाएँ, सेमिनार आदि आयोजित करने के साथ-साथ फेलोशिप भी प्रदान करता है। वर्ष 2006 से यह पत्रकारिता में उत्कृष्टता के लिए आईसीएफजे संस्थापक पुरस्कार भी प्रदान करता है। इसका 'नाइट इंटरनेशनल जर्नलिज्म फेलोशिप' कार्यक्रम वैश्विक मीडिया पेशेवरों को उन देशों में साथी मीडिया संगठनों के साथ जोड़ता है, जहाँ सार्थक परिवर्तन के अवसर हैं। इसके द्वारा संचालित इंटरनेशनल जर्नलिस्ट्स नेटवर्क 71,000 से अधिक पत्रकारों को अरबी, अंग्रेजी, चीनी, फारसी, पुर्तगाली, रूसी और स्पेनिश में साप्ताहिक ईमेल बुलेटिन भेजता है (आईसीएफजे, 2024)।

यूनेस्को : यूनेस्को के बारे में सामान्य अभिमत यह है कि यह ऐतिहासिक स्थलों के संरक्षण और सतत विकास लक्ष्यों को हासिल करने के लिए दुनियाभर में लोगों को जागरूक करता है। लेकिन हकीकत यह है कि पत्रकारिता एवं संचार में भी इसकी सक्रिय भूमिका है। यूनेस्को की स्थापना वर्ष 1945 में हुई थी। इस समय 193 देश इसके सदस्य हैं। इसका नई दिल्ली में एक क्लस्टर ऑफिस है, जहाँ से बांग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव और श्रीलंका में संचालित गतिविधियों की निगरानी होती है। यूनेस्को लुप्त हो रही भाषाओं को बचाने और श्रुति परंपरा के संरक्षण का काम भी करता है। अभिव्यक्ति की आजादी और प्रेस की आजादी को बढ़ावा देता है। हर साल 3 मई को विश्व प्रेस स्वतंत्रता दिवस मनाया जाता है। अंतरराष्ट्रीय साक्षरता दिवस भी मनाया जाता है। यूनेस्को द्वारा मनाये जाने वाले कुल 42 में से 11 दिवस मीडिया से प्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष तौर से जुड़े हैं, जिनमें विश्व तर्क दिवस, विश्व रेडियो दिवस, अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस, विश्व कविता दिवस, विश्व पुस्तक एवं कॉपीराइट दिवस, विश्व प्रेस स्वतंत्रता दिवस, विश्व साक्षरता दिवस आदि शामिल हैं। इतिहास पर गौर करें तो मैकब्राइड आयोग की रिपोर्ट यूनेस्को के कारण ही आई थी, जिसमें विकसित देशों के मीडिया द्वारा विकासशील देशों के बारे में प्रकाशित खबरों में संतुलन बरतने की नसीहत दी गई थी। मैकब्राइड आयोग में 16 सदस्य थे और उसका गठन 1977 में हुआ था। वर्ष 1980 में आई उसकी रिपोर्ट में 82 सिफारिशें थीं। पत्रकारिता शिक्षा को लेकर भी यूनेस्को काफी सक्रिय रहा है।

साउथ एशियन फ्री मीडिया एसोसिएशन : साउथ एशियन फ्री मीडिया एसोसिएशन दक्षिण एशियाई क्षेत्र में कार्यरत पत्रकारों को एकजुट करने के लिए वर्ष 1998 से प्रयासरत है। सार्क देशों के बीच यह पत्रकारों का एक एक्सचेंज कार्यक्रम भी चलाता है। यह वर्ष 2007 से साउथ एशिया मीडिया स्कूल भी संचालित करता है। 'साउथ एशियन जर्नल' नाम से इसका एक प्रकाशन भी है (एसएएफएमए, 2024)। इस संगठन का पाकिस्तान की तरफ अत्यधिक झुकाव है। इसलिए माना जाता है कि यह संगठन एक प्रकार से सार्क देशों में पाकिस्तानी एजेंडा संचालित करने का कम अधिक करता है। इसकी वेबसाइट (http://safmanet.com/) को देखने से भी यह पूरी तरह स्पष्ट है। आधिकारिक वेबसाइट पर पाकिस्तान और अफगानिस्तान के अलावा किसी अन्य सार्क देश के बारे में जानकारी ही नहीं है।

निष्कर्ष एवं विश्लेषण

तथ्यों से स्पष्ट है कि मीडिया संगठनों ने विश्वभर में मीडियकर्मियों की सेवा शर्तों में सुधार हेतु जो संघर्ष किया, उसके कारण न केवल उन संबंधित देशों में, बल्कि विश्व के अन्य देशों भी मीडिया में काम करने वाले पत्रकारों एवं अन्य श्रमिकों को सम्मानजनक वेतन तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त हुई। उन संगठनों के संघर्ष के कारण सरकारों को नए कानून बनाने पड़े और मीडिया मालिकों को भी अपने नियमों में बदलाव करना पडा। विश्व के पहले मीडिया संगठन के रूप में अमेरिका के 'इंटरनेशनल टाइपोग्राफिकल यूनियन' की जानकारी प्राप्त होती है, जिसकी स्थापना 3 मई, 1852 को अमेरिका में 'नेशनल टाइपोग्राफिकल यूनियन' के रूप में हुई थी। उस समय चूँकि प्रिंट मीडिया ही था, इसलिए उसमें कंपोजिंग का काम करने वाले टाइपोग्राफरों को एकजुट किया गया। वे प्राय: शिक्षित और आर्थिक रूप से गतिशील माने जाते थे और समाचार पत्रों के सभी प्रमुख केंद्रों से जुड़े थे। उस संस्था के प्रयासों से मीडिया में काम करने वाले लोगों को सप्ताह में 48 घंटे काम करने तथा सभी प्रिंटरों के लिए एक मानक वेतनमान निर्धारित कराने में सफलता मिली। संस्था के संघर्ष के परिणामस्वरूप बाद में पूरे मीडिया उद्योग में 40 घंटे के कार्य सप्ताह की शुरुआत हुई। आस्ट्रेलियाई पत्रकार संघ के संघर्ष के कारण न्यायालय के हस्तक्षेप से वर्ष 1917 में मेलबोर्न और सिडनी के समाचार-संपादकों, अग्रलेख सिद्ध लेखकों, मुख्य उप-संपादकों, उप-संपादकों तथा अग्रणी साधारण और जूनियर पत्रकारों और साप्ताहिक पत्रों में प्रधान संपादकों तथा उप-संपादकों के वेतन निश्चित किए गए। साथ ही यह भी निश्चित किया गया कि काम के घंटे दिन में 46 और रात में 40 प्रति घंटे प्रति सप्ताह

होंगे। ओवरटाइम, प्रशिक्षण, जिला संवाददाताओं, छुट्टियाँ, बीमारी आदि के सबंध में भी निर्णय किए गए। इस सफलता से विश्वभर में मीडिया श्रमिक आंदोलन को गति मिली।

ब्रिटेन के 'नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स' के संघर्ष के कारण ब्रिटेन में वर्ष 1947 में प्रथम शाही आयोग का गठन हुआ, जिसने इस बात की जाँच की कि समाचार पत्रों के स्वामित्व, नियंत्रण और अर्थव्यवस्था में समाचार समितियों और पत्रिकाओं के संचालन में कौन से आर्थिक तत्त्व हावी हो रहे हैं। आयोग की रिपोर्ट को हाउस ऑफ कॉमंस के समक्ष प्रस्तुत किया गया। रिपोर्ट में स्वामित्व के केंद्रित होने और बहुत से मामलों में पत्रों के आचरण की आलोचना की गई। उस रिपोर्ट में ही प्रेस काउंसिल की स्थापना की सिफारिश की गई थी। बाद में ब्रिटेन में प्रेस परिषद् की स्थापना हुई। इस प्रक्रिया से अन्य देशों में भी प्रेस परिषदों की स्थापना हुई। बाद में दूसरा शाही आयोग भी बना, जिसकी सिफारिशों में अन्य देशों के समाचार पत्रों के स्वामित्व की जाँच करने पर जोर दिया गया। परिणामस्वरूप अमेरिका, भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान आदि देशों में इस तरह की जाँचें हुई। हंगरी पत्रकार संघ पत्रकारों की शिक्षा, पेशेवर तथा स्नातकोत्तर प्रशिक्षण का कार्य निरंतर करता रहा है। यदि इसके सदस्यों पर कोई गैर कानूनी आक्रमण होता था तो यह उन्हें कानूनी और नैतिक संरक्षण प्रदान किया जाता था। यह अपने सदस्यों को मुफ्त कानूनी सहायता भी देता था।

आज विश्वपटल पर सक्रिय पत्रकार संगठनों की बात करें तो 'इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स' का नाम प्रमुखता से सामने आता है। यह विश्व के 140 देशों में सक्रिय 187 पत्रकार संगठनों के छह लाख पत्रकारों का प्रतिनिधित्व करता है। तथ्यों से यह भी स्पष्ट है कि जिस प्रकार श्रमिक आंदोलन विश्वभर में कमजोर हुआ है, उसी प्रकार मीडिया श्रमिक आंदोलन भी विश्वभर में कमजोर हुआ है। इसका प्रमुख कारण है लगभग सभी पत्रकार संगठनों में हुए अनेक विभाजन और उनका निरंतर कमजोर होता नेतृत्व। शुरुआती दिनों की बात करें तो मीडिया संगठनों का नेतृत्व उस समय के नामी पत्रकार और संपादक करते थे, परंतु आज नामी पत्रकारों और संपादकों ने मीडिया संगठनों से दूरी बना ली है। इसका बड़ा कारण है आए दिन होने वाली हड़तालों, हिंसा और तोड़फोड़ की घटनाओं के कारण पत्रकार संगठनों की बदनामी। चूँकि वामपंथी विचारधारा हिंसा, तोड़फोड़ और संघर्ष को समाज में बदलाव के प्रमुख हथियारों के रूप में प्रचारित और इस्तेमाल करती रही है, इसलिए विश्वभर में वामपंथ के प्रभाव के साथ इन हथियारों का जमकर इस्तेमाल हुआ। परिणामस्वरूप इन हथियारों और वामपंथी सोच को विश्व ने नकार दिया है। अब विश्व में कहीं भी मीडिया संगठन बहुत बड़े बदलाव का माध्यम बनने की स्थिति में नहीं हैं। यही कारण है कि गत कुछ दशकों में जो नए पत्रकार संगठन विश्वभर में उभरे हैं वे प्रेस की आजादी, पत्रकारों को जागरूक करने, उनके कल्याण हेतु कुछ गतिविधियाँ संचालित करने, प्रेस स्वतंत्रता इंडेक्स जारी करने तथा प्रशिक्षण जैसी गतिविधियों के माध्यम से स्वयं को प्रासंगिक बनाए रखने का प्रयास कर रहे हैं। वे सड़क पर उतर कर आंदोलन करने से बचते हैं। यह मीडिया श्रमिक आंदोलन का नया स्वरूप है। लेकिन इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि मीडिया में काम करने वाले लोगों को आज पत्रकार संगठनों की पहले से अधिक आवश्यकता है। बदलती तकनीक और मीडिया स्वरूप के कारण पत्रकारों की कार्यदशाओं में सुधार की विश्वभर में बड़ी आवश्यकता है।

अंतरराष्ट्रीय मीडिया संगठनों पर विचार करते समय इस तथ्य को भी समझना आवश्यक है कि इनमें से कुछ संगठनों का भारत विरोध अपने चरम पर है और वे अपनी हर गतिविधि में भारत को विश्व स्तर पर नीचा दिखाने से नहीं चूकते। उदाहरण के लिए 'रिपोर्टर्स विदआउट बॉर्डर्स'। भारत संबंधी इसकी वेबसाइट के 'ओपनिंग पेज' को पढ़कर ही इसका भारत विरोध दिखाई देता है, जिसमें यह लिखता है कि वर्ष 2014 से जब से भारत में नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बने हैं, तब से विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में मीडिया की आजादी संकट में है और पत्रकारों के प्रति हिंसा बढ़ी है। उस पेज पर भारत का मानचित्र भी वह दिखाया गया है, जो पाकिस्तान दिखाता है। यहाँ तक कि प्रतिवर्ष यह जो 'ग्लोबल प्रेस फ्रीडम इंडेक्स' जारी करता है, उसमें भारत को सदैव नीचा दिखाने का प्रयास करता है। यह संगठन पाकिस्तान और अफगानिस्तान में मीडिया की स्थिति भारत से बेहतर दिखाता रहा है। इसी प्रकार 'साउथ एशियन फ्री मीडिया एसोसिएशन' का पाकिस्तान की तरफ अत्यधिक झुकाव दिखाई देता है। यह संगठन सार्क देशों में पाकिस्तानी एजेंडा चलाने का प्रयास करता रहाता है। इसकी आधिकारिक वेबसाइट पर पाकिस्तान और अफगानिस्तान के अलावा किसी अन्य सार्क देश के बारे में जानकारी ही नहीं है। हालाँकि कुछ संगठन ऐसे भी हैं, जो सही मायने में पत्रकारों के कौशल विकास, उनके हितों के संरक्षण और मीडिया में आई विसंगतियों को दूर करने का प्रयास कर रहे हैं।

संदर्भ

आईएनएसआई. (2024). व्हाट वी डू. https://newssafety.org/what-we-do/ से पुन:प्राप्त.

आईपीआई. (2024). आईपीआई : द ग्लोबल नेटवर्क फॉर मीडिया फ्रीडम. https://ipi.media/about/ से पुन:प्राप्त.

आईसीआईजे. (2024). अबाउट अस. https://www.icij.org/about/ से पुन:प्राप्त.

आईसीएफजे. (2024). हम क्या करते हैं. https://www.icfj.org/ से पुन:प्राप्त.

आईएफजे. (2024). अबाउट आईएफजे. द ग्लोबल वाइस ऑफ जर्नलिस्ट्स. https://www.ifj.org/who/about-ifj से पुन:प्राप्त.

आईआरई. (2024). अबाउट आईआरई. https://www.ire.org/about-ire/ से पुन:प्राप्त.

आरएएफ. (2024). हू आर वी? https://rsf.org/en/2023-world-press-freedom-index-journalism-threatened-fake-content-industry से पुन:प्राप्त.

आईडब्ल्यूएमएफ. (2024). अबाउट द आईडब्ल्यूएमएफ. https://www.iwmf.org/about/ से पुन:प्राप्त.

एसएएफएमए. (2024). साउथ एशियन फ्री मीडिया एसोसिएशन. http://safmanet.com/category/safma/ से पुन:प्राप्त.

एसपीजे. (2024). सोसाइटी ऑफ प्रोफेशनल जर्नलिस्ट्स. https://www.linkedin.com/company/society-of-professional-journalists/ से पुन:प्राप्त.

ओएनए. (2024).अबाउट. https://journalists.org/about/ से पुन:प्राप्त.

चतुर्वेदी, जे.पी. (1977). 'पत्रकारिता के 150 वर्ष' विषय पर केंद्रित लोकराज वार्षिकी के विशेषांक में 'अंतरराष्ट्रीय पत्रकार आंदोलन' नाम से अध्याय. नई दिल्ली. पृष्ठ 10-15

नोर्देसट्रेंग, के. (2016). द राइज एंड फाल ऑफ द इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स (आईओजे). https://sites.tuni.fi/uploads/2019/12/9c8bd9a3-ecrea_paper_2016.pdf से पुन:प्राप्त.

ब्रिटैनिका. (2024). नेशनल एसोसिएशन ऑफ ब्रॉडकास्टर्स. https://www.britannica.com/topic/National-Association-of-Broadcasters से पुन:प्राप्त.

बीईए. (2024). ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ द बीईए. https://beaweb.org/wp/about-us/ से पुन:प्राप्त.

मोलिनेक्स, सी. (2024). इंटरनेशनल टाइपोग्राफिकल यूनियन (आटीयू) लोकल्स 1937-1949. मैपिंग अमेरिकन

लोकराज वार्षिकी. (1977). पत्रकारिता के 150 वर्ष. नई दिल्ली.

विश्वबंधु. (1977). 'पत्रकारिता के 150 वर्ष' विषय पर केंद्रित 'लोकराज वार्षिकी' के विशेषांक में 'स्वीडन की पत्रकारिता' नाम से अध्याय. नई दिल्ली. पृष्ठ-40.

सीपेजे. (2024). सीपेजे : आवर हिस्ट्री. https://cpj.org/about/history/ से पुन:प्राप्त.

सोशल मूवमेंट प्रोजेक्ट्स. https://depts.washington.edu/moves/CIO_ITU_locals.shtml से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 37(1) : 106-110, जनवरी-मार्च 2025
यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका, आईएसएसएन : 2321-2608

सिनेमाई कहानियों व किरदारों पर गांधी के प्रभाव का अध्ययन

अंजना शर्मा[1], डॉ. मीता उज्जैन[2] और डॉ. रंजन सिंह[3]

सारांश

भारत में सिनेमा अपने शैशव काल से ही महात्मा गांधी से प्रभावित रहा है। स्वतंत्रता काल के शुरुआती दिनों से लेकर अब तक समय-समय पर फिल्मों ने गांधी को याद किया है। फिल्मों में गांधी की दृश्य रूप में उपस्थिति भले ही सीमित रही हो, लेकिन कई फिल्मों में उनकी अदृश्य मौजूदगी को दर्शकों ने महसूस किया है। कई फिल्मों के कथानक गांधीवादी आदर्शों में गुँथे हुए महसूस होते हैं, जबकि किरदारों पर भी गांधीवादी मूल्यों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। हिंदी फिल्म 'लगान : वंस अपॉन ए टाइम इन इंडिया' व 'लगे रहो मुन्नाभाई' के कथानक व किरदारों पर गांधी का असर दिखाई देता है। पहली फिल्म में ग्रामीण, धार्मिक व जातीय विविधता के बावजूद एकजुट होकर अन्याय के खिलाफ अपनी क्रिकेट टीम खड़ी करते हैं। फिल्म का नायक केवल अपनी बात नहीं करता, वह दूसरों के लिए भी चिंतित होता है। वहीं 'लगे रहो मुन्नाभाई' फिल्म ने गांधीवाद को उसके नए कलेवर गांधीगीरी में प्रस्तुत किया। फिल्म प्रदर्शन के बाद आम जीवन में गांधीगीरी के कई किस्से देखने को मिले। यह फिल्म लोगों के भीतर गांधीवाद की संज्ञानात्मक उपस्थिति को दर्शाती है। शोध हेतु तथ्य द्वितीयक स्रोत्रों से प्राप्त किए गए हैं।

संकेत शब्द : महात्मा गांधी, गांधीवाद, गांधीगीरी, लगान : वंस अपॉन ए टाइम इन इंडिया, लगे रहो मुन्नाभाई

प्रस्तावना

सिनेमा समाज का आईना है। उसकी कहानियाँ और किरदार समाज की वास्तविक घटनाओं व उसके नायकों से प्रेरित होते हैं। हर दौर के सिनेमा पर उस विशेष दौर के सामाजिक व राजनीतिक घटनाक्रम का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। देश में आजादी के संघर्ष के दौरान कई ऐसे नायक उभरे, जिनके जीवन, सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों ने फिल्मकारों को अपनी ओर आकर्षित किया। महात्मा गांधी के सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों के साथ उनके जीवन मूल्यों ने फिल्मकारों को अपनी ओर आकृष्ट किया। हिंदी सिनेमा ने गांधी के जीवन मूल्यों से प्रेरित अनेक फिल्मों का न केवल निर्माण किया है, बल्कि आम जनता के भीतर गांधीवाद के प्रति असीम श्रद्धा भी जगाई है। सिनेमा ने अपने शुरुआती दौर में ही गांधी से प्रेरणा ग्रहण करनी शुरू कर दी थी। उनके जीवनकाल में ही उन पर कई न्यूजरील व लघु फिल्मों का निर्माण हुआ। उन पर व उनके आंदोलनों पर आधारित अनेक वृत्तचित्र फिल्में बनीं। मुख्यधारा के सिनेमा की कहानियों व किरदारों पर उनका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। वर्ष 1921 में प्रदर्शित फिल्म 'भक्त विदुर' में पहली बार गांधी जैसा किरदार दिखाई दिया। फिल्म की कहानी में गांधी नहीं थे, लेकिन मुख्य किरदार विदुर को गांधी जैसा (पहनावा, चाल-ढाल) दिखाया गया था। इस फिल्म में गांधी की छवि दिखने के कारण सेंसर बोर्ड ने इस पर रोक लगा दी थी। कुछ दृश्य हटाकर इसे 1922 में 'धर्म विजय' नाम से प्रदर्शित किया गया। वर्ष 1943 में यही फिल्म 'महात्मा विदुर' नाम से प्रदर्शित हुई। फिल्म में सत्य, अहिंसा और आत्म बलिदान के गांधीवादी आदर्शों को शामिल किया गया था। वर्ष 1925 में 'चरखा' नाम से एक फिल्म प्रदर्शित हुई, जो गांधी से प्रेरित थी। वर्ष 1931 में तमिल फिल्म 'कालीदास' का प्रदर्शन हुआ। यह फिल्म महाकवि कालीदास के जीवन पर आधारित थी, लेकिन इसमें दो ऐसे गीत शामिल थे, जो गांधी से प्रेरित थे। वर्ष 1932 में प्रदर्शित हुई फिल्मकार देवकी बोस की फिल्म 'चंडीदास' अस्पृश्यता निवारण के गांधीवादी मूल्य को छूती हुई कहानी है। 'अछूत कन्या' (1936) भी अस्पृश्यता को केंद्र में रखकर बनी फिल्म है।

भारतीय सिनेमा ने कई ऐसी फिल्में दीं, जिनका केंद्रीय पात्र गांधीवाद से प्रेरित व गांधीवादी मूल्यों पर चलता हुआ दिखाई देता है। अमिय चक्रवर्ती के निर्देशन में बनी 'सीमा' (1955) इसी कड़ी की फिल्म है। फिल्म का मुख्य पात्र गांधी के आदर्शों के समीप दिखता है। बलराज साहनी और नूतन ने मुख्य भूमिकाएँ निभाई हैं। फिल्म में एक अनाथ लड़की की कहानी है, जिस पर चोरी का झूठा आरोप लगता है। सताए हुए और अनाथ लोगों के लिए चलने वाली एक संस्था उसे आश्रय देती है। वर्ष 1957 में प्रदर्शित हुई व्ही. शांताराम की 'दो आँखे बारह हाथ' इस श्रेणी की महत्त्वपूर्ण फिल्म है, जिसमें एक गांधीवादी जेलर, छह खूँखार अपराधियों को गांधीवादी तरीकों से सुधारने और उनके पुनर्वास की कोशिश करता है। हिंदी सिनेमा ने कई ऐसी फिल्में दी हैं, जो गांधी की लाक्षणिक उपस्थिति का एहसास कराती हैं। कई बार गांधी की लाक्षणिक उपस्थिति किरदारों के जीवन में नया मोड़ ले आने का काम करती दिखाई देती है। वर्ष 1959 में प्रदर्शित हुई बिमल राय की फिल्म 'सुजाता' में एक हरिजन कन्या का पालन-पोषण एक ब्राह्मण परिवार में होता है। इसी परिवार की एक और बेटी है, जब लड़के वाले विवाह के लिए उसे देखने आते हैं, तो लड़का हरिजन कन्या को पसंद कर लेता है। फिल्म में हरिजन कन्या नदी में कूदकर आत्महत्या करने निकल पड़ती है, लेकिन वहाँ पहुँचने पर उसकी नजर गांधी की एक मूर्ति पर पड़ती है, जिसके नीचे लिखा है, 'आत्महत्या पाप है', यह पढ़कर वह वहीं ठिठक कर रह जाती है और अपना निर्णय बदलकर लौट जाती है। फिल्म ब्राह्मण युवक व अछूत कन्या के प्रेम के संघर्ष की कहानी है।

फिल्मकार कमल हासन की 'हे राम' (2000), आशुतोष गोवारिकर की 'लगान' (2000) और 'स्वदेस' (2000), जाह्नु बरुआ की 'मैंने गांधी

[1]पीएच.डी. शोधार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश), ईमेल : anjanaamu2013@gmail.com
[2]सह आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान (सम विश्वविद्यालय), नई दिल्ली, ईमेल : meeta.ujjain@iimc.gov.in
[3]सहायक आचार्य, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश), ईमेल : dr.singhranjan@gmail.com

को नहीं मारा' (2005), दीपा मेहता की 'वॉटर' (2005), वर्ष 2006 में प्रदर्शित हुई राजकुमार हीरानी की 'लगे रहो मुन्नाभाई' में गांधीवादी मूल्य स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। वर्ष 2007 में प्रदर्शित शिमित अमीन की 'चक दे इंडिया', अमित राय की 'रोड टू संगम' (2009), प्रकाश झा की 'सत्याग्रह' (2013), श्रीनारायण सिंह की 'टॉयलेट-एक प्रेम कथा' (2017), शरत कटियार की 'सुई धागा' (2018) और अनुभव सिन्हा की 'मुल्क' (2018) गांधीवादी आदर्शों से प्रेरित महत्त्वपूर्ण फिल्में हैं।

साहित्य पुनरावलोकन

सिनेमा राष्ट्र के मनोविज्ञान का एक निष्पक्ष सूचक है, लेकिन साथ ही वह हर दौर की ऐतिहासिक, राजनीतिक व आर्थिक घटनाओं से प्रभावित हो सकता है (चटर्जी, 2012)। पहले जहाँ साहित्य विचारों और भावनाओं को आकार देने का कार्य करता था, वही जिम्मेदारी अब सिनेमा निभाता दिख रहा है (शुक्ला, 2013)। सिनेमा में गांधी या तो प्रत्यक्ष रूप से नजर आते हैं या उनके मानवतावादी सिद्धांत दिखाई देते हैं (पांडेय, 2016)। आरंभिक भारतीय सिनेमा की प्रगतिशील फिल्मों में विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के गांधीवादी दृष्टिकोण दिखाई देते हैं (मार्गरेट, 2010)। गांधी के सिनेमा को एक बुराई के रूप में देखने के बावजूद सिनेमा ने उनके दर्शन व प्रभाव को अविस्मरणीय बनाने का काम किया है। गांधी जैसी हस्तियों को जानने-समझने के लिए वर्तमान पीढ़ी न केवल उनके आस-पास गढ़ी गई किंवदंतियों, बल्कि साथ-ही-साथ फिल्मों पर भी निर्भर है। नई पीढ़ी ने न तो गांधी को देखा है और न ही उनके दौर की सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों को जिया है। उसने गांधी को जितना जाना है, उतना उनके संत जैसे व्यक्तित्व को लेकर बनीं कहानियों व सिनेमा के जरिये जाना है (बुटालिया, 2000)।

तीस के दशक में जब गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया और अपने भाषणों, लेखों सामाजिक कार्यों के माध्यम से छूआछूत की कुरीति के उन्मूलन का आह्वान किया तो बॉम्बे टॉकीज ने भी इस समस्या को केंद्र में रखकर गढ़ी गई कहानी पर 'अछूत कन्या' फिल्म बनाई, जिस पर गांधीवादी विचारों का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। जिस तरह गांधी के आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी दिखाई देती थी, उसी तरह फिल्म 'जन्मभूमि' (वर्ष 1936) में सामाजिक सुधारों में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया गया। गांधी ग्राम सुधार की बात करते थे और बॉम्बे टॉकीज की 'अछूत कन्या', 'जन्मभूमि', 'कंगन', 'बंधन' व कई अन्य फिल्में ग्रामीण पृष्ठभूमि पर ही आधारित हैं (सिंह, 2014)।

भारत में पहले जहाँ गांधी का जीवन ही उनका संदेश हुआ करता था, वहीं उदारवाद आने के बाद गांधीगीरी उनका संदेश हो गया है (घोष व बाबू, 2006)। 'लगे रहो मुन्नाभाई' ने गांधीवादी विचारों का पुनरुत्थान किया है। यह फिल्म वैश्विक प्रभाव के चलते बदले हुए परिदृश्य में भारतीयों के सोचने-समझने के तरीके से मेल खाने में सफल रही है (दास, 2018)। गांधीगीरी वर्तमान पीढ़ी के लिए अधिक स्वीकार्य है। यह फिल्म केवल बॉलीवुड सिनेमा की आविष्कारशीलता ही नहीं दर्शाती, बल्कि इस बात की भी तस्दीक करती है कि समय बदलने के साथ गांधी व गांधीवाद में खुद को ढालने व प्रासंगिक बने रहने की क्षमता है (परांजपे, 2014)। 'लगान' देश की आजादी से पहले की कहानी प्रस्तुत करती है। फिल्म में जिस तरह ग्रामीण धार्मिक व जातीय विविधता के बावजूद एकजुट होकर अन्याय के खिलाफ अपनी क्रिकेट टीम खड़ी करते हैं, वह 'विविधता में एकता' को दर्शाता है (ड्वेयर, 2002)। 'लगान' फिल्म गांधी द्वारा भारत में जन आंदोलनों के एक लोकप्रिय शस्त्र के रूप में अहिंसा को स्थापित करने के कई दशक पहले के ऐतिहासिक काल में अहिंसक विरोध के गांधीवादी तरीके को दर्शाती है (लिचनर व बंद्योपाध्याय, 2008)। गांधी मानवतावाद के पक्षधर थे, जो फिल्मों में सीधे परिलक्षित होता है। गांधी त्याग की प्रतिमूर्ति थे और रुपहले पर्दे के नायक भी उनके दिखाए पथ पर चलते दिखते हैं (सूरी, 2019)।

शोध उद्देश्य

1. 'लगान : वंस अपॉन ए टाइम इन इंडिया' व 'लगे रहो मुन्नाभाई' फिल्म के कथानकों पर गांधीवादी आदर्शों/मूल्यों के प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
2. 'लगान : वंस अपॉन ए टाइम इन इंडिया' व 'लगे रहो मुन्नाभाई' फिल्म के किरदारों के चरित्रों पर गांधीवादी आदर्शों/मूल्यों के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन गुणात्मक प्रकृति का है। इसके अंतर्गत सोद्देश्य निदर्शन तकनीक का प्रयोग करते हुए गांधीवादी आदर्शों व मूल्यों से प्रभावित दो फिल्मों का चयन किया गया है। गुणात्मक अनुसंधान के अंतर्गत दोनों फिल्मों का अंतर्वस्तु विश्लेषण किया गया है। दोनों फिल्मों के कथानकों, पात्रों के चरित्र-चित्रण व गांधीवादी मूल्य प्रदर्शित करते संवादों को विश्लेषण का आधार बनाया गया है।

तथ्य संकलन

फिल्मों के अंतर्वस्तु विश्लेषण के माध्यम से प्राथमिक तथ्य एकत्रित किए गए हैं। साहित्य पुनरावलोकन के अंतर्गत पूर्व में प्रकाशित पुस्तकों व शोध पत्रों से द्वितीयक तथ्य एकत्रित किए गए हैं।

शोध के संदर्भ में गांधीवादी मूल्यों व आदर्शों की चर्चा

गांधी ने स्वयं सत्य के मार्ग का अनुसरण किया। उन्होंने अन्य लोगों से भी ऐसा ही करने के लिए कहा। उनका मानना था कि सत्य की राह बहुत कठिन है और इस रास्ते पर चलने के लिए व्यक्ति का अभय (भय रहित) होना आवश्यक है। वे हिंसा के विरोधी रहे, उनके लिए अहिंसा परम धर्म था। गांधी सर्वधर्म समभाव में यकीन रखते थे। वे धार्मिक आधार पर भेद-भाव के विरोधी थे। गांधी अन्याय सहने के खिलाफ थे। वे चाहते थे कि जिन लोगों पर किसी भी प्रकार से और किसी के भी जरिये अन्याय हो रहा है, उन्हें शांतिप्रिय तरीके से सत्याग्रह के मार्ग पर चलते हुए उस अन्याय को अस्वीकार कर उसका विरोध करना चाहिए। महात्मा गांधी ने अपने आश्रमों में ब्रह्मचर्य का नियम लागू किया था। उन्होंने स्वयं अपने जीवन में भी इसका अनुसरण किया था। उनके जीवन मूल्यों में अस्वाद, अस्तेय और अपरिग्रह भी शामिल हैं। वे जाति के आधार पर भेदभाव के विरोधी थे। उन्होंने अस्पृश्यता निवारण के प्रयास किए। उन्होंने स्वावलंबन

का संदेश भी दिया, जिसके अनुसार व्यक्ति की किसी पर निर्भरता नहीं होनी चाहिए, बल्कि वह अपनी हर तरह की सभी आवश्यकताएँ पूरी करने में सक्षम हो। गांधी ने सर्वोदय की भी बात कही। सर्वोदय का मतलब है, सभी का विकास। गांधी समाज के हर वर्ग का विकास चाहते थे।

'लगान : वंस अपॉन ए टाइम इन इंडिया' फिल्म का अंतर्वस्तु विश्लेषण

वर्ष 2001 में प्रदर्शित इस फिल्म का निर्देशन फिल्मकार आशुतोष गोवारिकर ने किया है। आजादी से पहले की पृष्ठभूमि पर आधारित इस फिल्म में कई स्थानों पर गांधीवादी मूल्यों की उपस्थिति का एहसास होता है।

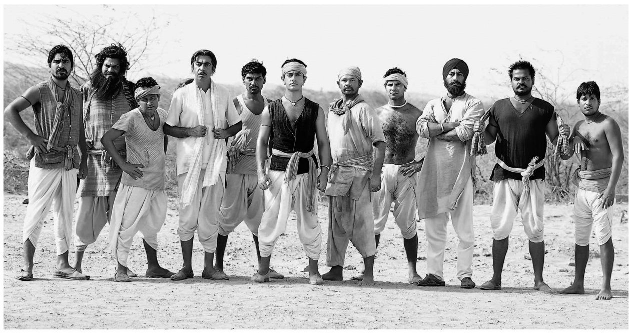

फिल्म 'लगाान' का एक दृश्य

कथानक का विश्लेषण : कथानक स्वतंत्रता पूर्व का दृश्य उकेरता है। सन् 1893 के एक काल्पनिक गाँव चंपानेर में जीवनयापन का मुख्य आधार खेती-बाड़ी है, लेकिन इस साल सूखे की स्थिति है। उस पर ग्रामीणों से इस वर्ष दुगुना लगान देने के लिए कहा गया है। नायक भुवन (आमिर खान) में अँग्रेजों की ओर से किए जा रहे अन्याय पर रोष है। अँग्रेज कप्तान रसेल शर्त रखता है कि यदि गाँव वाले क्रिकेट के खेल में अँग्रेज टीम को हरा दें तो लगान माफ किया जा सकता है। ग्रामीणों की ओर से भुवन इस शर्त को मंजूर कर लेता है। कथानक में नायक को अँग्रेज अधिकारियों के साथ अपने ही साथी ग्रामीणों के विरोध का सामना करना पड़ता है। नायक को गाँव में मौजूद अस्पृश्यता व असमानता जैसी कुप्रथाओं से भी संघर्ष करना पड़ता है। गांधी को भी अँग्रेजों के साथ कई बार अपने ही लोगों के भी विरोध का सामना करना पड़ा था। गांधी को ब्रितानी मूल के अनेक लोगों का सहयोग भी मिला था। कथानक में भी कप्तान रसेल की बहन एलिजाबेथ भुवन की क्रिकेट सीखने में मदद करती है। भुवन भी गांधी की ही तरह अस्पृश्यता का विरोध करता है और बिना किसी भेदभाव के अच्छे खिलाड़ियों की क्रिकेट टीम तैयार करता है। नायक अँग्रेज हुकूमत को पसंद नहीं करता, लेकिन वह उसके प्रति हिंसा का विरोध करता है। वह अहिंसा व रचनात्मक समाधान के माध्यम से ग्रामीणों को लगान के दबाव से उबारना चाहता है।

नायक का चरित्र-चित्रण : नायक भुवन ग्रामीणों की बदहाली व अँग्रेजों की क्रूरता से परेशान है। उसके किरदार में बदलाव की छटपटाहट स्पष्ट होती है। वह अन्याय का विरोध करना चाहता है। गांधी भी दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश हुकूमत के अत्याचार देखकर परेशान हो गए थे और उन्होंने भी वहाँ भारतीय मूल के लोगों के अधिकारों की लड़ाई लड़ी थी। नायक लगान माफी के लिए रखी गई शर्त को एक अवसर की तरह देखता है। वह जानता है कि क्रिकेट में अँग्रेजों से जीत पाना आसान नहीं होगा, लेकिन ग्रामीणों को लगान से मुक्ति दिलाने के लिए वह इस चुनौती को स्वीकार कर लेता है। उसे ग्रामीणों के ही विरोध का सामना करना पड़ता है, लेकिन वह अपने निर्णय पर अडिग रहता है। वह ग्रामीणों के भेदभाव आधारित विरोध के बावजूद प्रतिभाशाली खिलाड़ियों की एक टीम तैयार करता है। इस काम में उसे ब्रितानी मूल की किरदार एलिजाबेथ की मदद भी मिलती है।

संवाद विश्लेषण : कथानक में आए अनेक संवाद गांधीवादी मूल्यों व आदर्शों का स्मरण कराते हैं। फिल्म में एक स्थान पर जब एक ग्रामीण, नायक की ओर से लगान माफी की उम्मीद दिए जाने पर शंका व्यक्त करता है, तब नायक का संवाद है, "सच और साहस जिसके मन में अंत में जीत उसी की रहे" (सत्य व अभय के गांधीवादी मूल्य)। ग्रामीण कचरा को क्रिकेट टीम में शामिल करने के निर्णय का विरोध होने पर नायक का संवाद है, "दूध पर छूत-अछूत की छाप लगाइके दूध तो आप भ्रष्ट कर रहे हो। सारे गाँव की साँस इस छूत-अछूत के धुएँ से काहे घोंट रहे हो मुखिया जी! चमड़ी के नाम पर मन को छलना कौनउ नेक काम है का? फिर काहे पूजते हैं रामजी को, जिनने सबरी के झूठे बेर खाए। जो भगवान सबकी नैया पार लगावत हैं, ऊ की नैया एक छोटे जाति के नाविक ने पार लगाई। ई सब जानने के बाद भी छूत-अछूत की बात कर रहे हो! और आप ईसर काका.. आप तो वैद हो। पीड़ा हरते हो, रोगी की नाड़ी परख के ऊ का इलाज करते हो। का आपका सास्त्र इही कहता है कि अछूत का इलाज न किया जाए, ऊ का मरने दिया जाए। अगर अइसा है तो ये इ छूत-अछूत इनसानियत के नाम पर सबसे बड़ा कलंक होएगा। फिर आज के बाद कोई भी वैद को भगवान का दूसरा रूप नहीं मानेगा" (अस्पृश्यता विरोध व समानता के गांधीवादी मूल्य)। कथानक में जब एक पात्र देवा सिंह सोढ़ी भुवन की मदद करने के लिए पहुँचता है और उसे कहता है कि उसने सुना है कि वहाँ अँग्रेजों के खिलाफ जंग छिड़ी है और वह मदद करना चाहता है। इस पर भुवन का संवाद है, "लेकिन लाठी-भाले से नहीं, गेंद-बल्ले से" (अहिंसा का गांधीवादी मूल्य)। यहाँ नायक के संवाद में समस्या के रचनात्मक समाधान का संदेश स्पष्ट होता है।

'लगे रहो मुन्नाभाई' फिल्म का अंतर्वस्तु विश्लेषण

वर्ष 2006 में प्रदर्शित इस फिल्म का निर्देशन फिल्मकार राजकुमार हीरानी ने किया है। फिल्म ने बॉक्स ऑफिस पर अपार सफलता हासिल की थी। इसके प्रदर्शन के बाद समाज में वास्तविक रूप में गांधीगीरी के कई किस्से सामने आए थे।

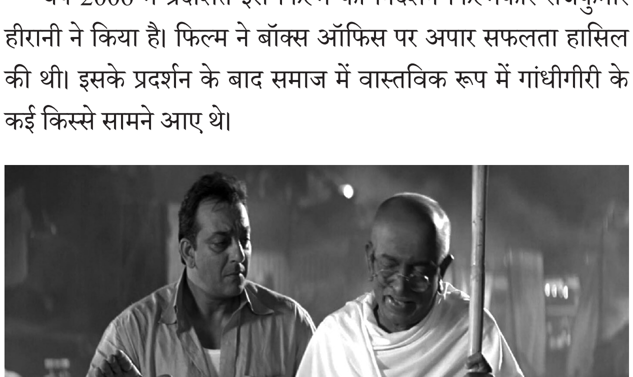

फिल्म 'लगे रहो मुन्ना भाई' का एक दृश्य

कथानक का विश्लेषण : कथानक भारतीय महानगर मुंबई की पृष्ठभूमि पर रचा गया है। फिल्म का नायक जमीनों व मकानों पर जायज व नाजायज कब्जे के लिए मारपीट, धमकी जैसे गलत तरीके अपनाता है। लेकिन यही नायक जब रेडियो जॉकी नायिका के प्रेम में पड़ता है तो महात्मा गांधी के आदर्शों से उसका परिचय होता है। शुरू-शुरू में तो वह अपनी प्रेमिका पर प्रभाव जमाने के लिए बापू के आदर्शों की बात करता है, लेकिन बाद में लोगों को इन आदर्शों को अपनाकर समस्याओं के समाधान खोजने के लिए प्रेरित करता है और स्वयं भी गांधीवादी मार्ग का अनुसरण करता है। कथानक से स्पष्ट होता है कि महात्मा गांधी के विचार कितने प्रभावशाली हैं। हिंसा, ठगी और कई अन्य दुराचारों को आधार बना जीवनयापन करने वाला नायक जब गांधी के आदर्शों के संपर्क में आता है, तो उनकी महानता के आगे वह अपने सभी बुरे कर्म त्याग देता है। वह गांधी के आदर्शों पर चलकर अपनी समस्याओं का समाधान करता है और इन्हीं आदर्शों के जरिये अन्य लोगों को भी उनकी परेशानियों का समाधान खोजने में मदद करता है। कथानक में आभासी गांधी दिखाई देते हैं, जिनसे चर्चा कर नायक स्वयं व दूसरों के लिए समाधान तलाशता है। ये आभासी गांधी, नायक के भीतर ही संज्ञानात्मक रूप में मौजूद हैं।

नायक का चरित्र-चित्रण : नायक मुरली प्रसाद शर्मा उर्फ मुन्ना लाठी-बंदूक के दम पर जमीनों व मकानों पर कब्जे में व्यवसायी लखबीर सिंह की मदद करता है, लेकिन जब वह गांधी को पढ़ता है और उन्हें जानने-समझने की कोशिश करता है तो उसके जीवन की दिशा बदल जाती है। वह लोगों को गांधी के आदर्श अपनाने के लिए प्रेरित करता है। जब वह गांधी पर अध्ययन करता है, तो उसे उनके कार्यों और विचारों के महत्त्व का ज्ञान होता है। वह गांधीवादी तरीकों से उलझनों व समस्याओं के समाधान में विश्वास करने लगता है। मुन्ना अब समाधान के गांधीवादी तरीकों को गांधीगीरी कहकर प्रचारित करता है। कथानक में उसका दिया यह नया शब्द और इसका असर मुंबई के युवाओं को कारगर लगता है और वे रेडियो के माध्यम से मुन्ना से बातचीत कर गांधीगीरी के जरिये समाधान ढूँढ़ते हैं।

संवाद विश्लेषण : कथानक में कई ऐसे संवाद हैं, जो गांधीवादी दृष्टिकोण का स्मरण कराते हैं। स्वयं नायक के भीतर मौजूद आभासी गांधी से उसकी बातचीत गांधीवादी आदर्शों और मूल्यों पर आधारित है। कथानक में नायिका के प्रेम में पड़ा नायक जब झूठ का सहारा लेता है, तो बापू उसे सच की राह पर चलने की सलाह देते हैं। फिल्म में पात्र बापू का संवाद है, "वो तो एक विद्वान प्रोफेसर मुरली प्रसाद शर्मा को चाहती है, तुम्हें नहीं। कल जाकर उसे सच बता दो। झूठ बोलते रहोगे तो एक ना एक दिन छोड़के जाएगी" (सत्य का गांधीवादी मूल्य)। बापू की इस सलाह पर नायक के हैरानी प्रकट करने पर उनका एक अन्य संवाद है, "भाई मेरा तो यही काम है, सत्य की राह पर चलो"। बापू का एक अन्य संवाद है, "मेरा रास्ता आसान नहीं है पर जीत पक्की है"। इस संवाद में सत्य के महत्त्व को उजागर किया गया है। सत्य की राह कठिन हो सकती है, लेकिन इस पर चलने वाले व्यक्ति की विजय निश्चित होती है। फिल्म में जब नायक अपने मित्र को चाँटा मार देता है, तो बापू उसे क्षमा माँगने के लिए कहते हैं। उनका संवाद है, "चाँटा मारना आसान है, माफी माँगने के लिए हिम्मत चाहिए बेटा। ये कायरों का काम नहीं है" (अहिंसा, क्षमा, गलतियों की स्वीकारोक्ति के गांधीवादी आदर्श)। कथानक में लकी द्वारा गलत तरीके से जानवी का घर ले लेने के बाद, नायक बँगला वापस लेने के लिए सत्याग्रह करता है। यहाँ जानवी के दादाजी का संवाद है, "हम आपसे लड़ेंगे नहीं, सिर्फ आपके घर के सामने खड़े रहेंगे" (सच के आग्रह का गांधीवादी आदर्श)। नायक, नायिका को स्वयं का सच बताने पर उसके रूठ कर चले जाने से भयग्रस्त है, लेकिन बापू का किरदार उसे सच की राह पर डटे रहने के लिए कहता है। बापू का संवाद है, "पर तुम निडर होके उसके मकान के लिए संघर्ष करते रहना और देखना एक दिन वो वापस आएगी" (अभय रहकर सत्य की राह पर अडिग रहने का गांधीवादी आदर्श)।

निष्कर्ष

शोध पत्र के लिए चयनित दोनों फिल्मों 'लगान : वंस अपॉन ए टाइम इन इंडिया' व 'लगे रहो मुन्नाभाई' के कथानकों के विश्लेषण, नायक के चरित्र-चित्रण व संवादों के विश्लेषण में गांधीवादी आदर्शों व मूल्यों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पहली फिल्म के कथानक में अनेक स्थानों पर गांधी के विभिन्न आदर्शों व मूल्यों का आभास होता है। कथानक में नायक को ब्रितानी हुकूमत व अपनों के ही विरोध का सामना करना पड़ता है तो उसे बाद में ब्रितानी मूल की एक पात्र के साथ ग्रामीणों का भी सहयोग मिलता है। गांधी को भी ब्रितानी हुकूमत के साथ कई जगहों पर अपने ही लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा था और उन्हें भी ब्रिटिश मूल के कई लोगों का सहयोग मिला था। नायक भुवन विपरीत परिस्थितियों में भी जिस तरह के निर्णय लेता है, निर्णय में आगे बढ़ने के लिए लोगों को जोड़ता है, लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है, उसके ये सभी गुण उसे गांधीवाद से जोड़ते हैं। जिस तरह गांधी दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारत तक इतनी विपरीत परिस्थितियों में भी बदलाव ले आने के लिए सफल प्रयत्न करते हैं, उसी तरह भुवन भी ऐसे समय में ग्रामीणों का लगान माफ करवाता है, जबकि इसकी बिल्कुल भी उम्मीद नहीं थी। गांधी ने अपने जीवन में महान् कार्य किए, जिनके लिए उन्होंने लोगों की एकजुटता, समरसता, समानता पर विशेष बल दिया था। कथानक में भुवन भी सत्य की राह पर चलता हुआ रचनात्मक सत्याग्रह के माध्यम से ग्रामीणों के लिए अपने उद्देश्य प्राप्त करता है। नायक की विशेषता है कि वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उम्मीद नहीं खोता और चुनौती को अवसर की तरह देखता है। फिल्म के संवाद चुनौतियाँ स्वीकार करने, अन्याय अस्वीकार करने, सत्य व अभय, अस्पृश्यता विरोध, दृढ़ निश्चय व अहिंसा के गांधीवादी मूल्यों को दर्शाते हैं। संवाद विश्लेषण से पता चलता है कि नायक उसके उद्देश्यों की राह में रुकावट जात-पाँत के भेदभाव को किनारे करते हुए एक प्रकार से अस्पृश्यता का विरोध करता है। अपने संवादों में वह परिणामों की चिंता किए बिना पूरा जोर लगाकर एक कोशिश करना चाहता है। नायक अँग्रेज हुकूमत के प्रति आक्रोशित है, लेकिन वह अहिंसक तरीके से विजयी होना चाहता है।

दूसरी फिल्म फिल्म में नायक आभासी गांधी से सलाह-मशविरा कर अपने काम करता है। यह गांधीवाद का प्रभाव ही है कि हर काम बलपूर्वक, जोर-जबरदस्ती से करने वाला नायक सत्य, अहिंसा व सत्याग्रह के मार्ग पर चलने लगता है। स्वयं को गांधी के आदर्शों का जानकार बताने के लिए शुरुआत में गलत साधनों का उपयोग करने वाला नायक धीरे-धीरे गांधी

से लगाव महसूस करने लगता है। उसे लोगों द्वारा गांधी के आदर्श भुला दिए जाने का दुख भी होता है। बाद में वह गांधी के अहिंसा, सत्याग्रह, अभय जैसे मूल्यों से लोगों की व स्वयं की समस्याओं का समाधान करने लगता है। फिल्म में आभासी गांधी के संवादों में सत्य, अभय व अहिंसा के संदेश स्पष्ट होते हैं। वहीं नायक के संवादों में इन पर संशय प्रकट किए जाते हैं, लेकिन अंत में वह गांधी के आदर्शों पर ही चलता है और अपने उद्देश्यों को प्राप्त करता है।

संदर्भ ग्रंथ

कौशिक, एन. (2020). महात्मा गांधी इन सिनेमा. न्यू कैसल : कैंब्रिज स्कॉलर्स पब्लिशिंग.

गांधी, एम. (1958). मंगल-प्रभात. अहमदाबाद : नवजीवन ट्रस्ट.

गोवारिकर, ए. (निर्देशक). (2001). लगान : वंस अपॉन ए टाइम इन इंडिया (चलचित्र).

घोष, ए., और बाबू, टी. (2006, दिसंबर 23-29). लगे रहो मुन्नाभाई : अनरैवलिंग ब्रांड गांधीगीरी. इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 41(51),पृ. 5225-5227.

चटर्जी, पी. (2012). इंडियन सिनेमा : देन एंड नाउ. इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वाटर्ली, पृ. 45-53.

चौकसे, जे. (2012). महात्मा गांधी और सिनेमा. मुंबई : मौर्य आर्ट्स प्रा. लि.

ड्वेयर, आर. (2002). रियल एंड इमेजिंड ऑडिएंसेज : लगान एंड द हिंदी फिल्म आफ्टर द 1990. एटनोफोर, 15(1/2), पृ. 177-193.

दास, ए. (2018). द ट्रांज़ीशन ऑफ गांधीज्म टू गांधीगीरी एन विज्युल नरेशन : ए स्टडी ऑफ गांधी एंड लगे रहो मुन्ना भाई. ग्लोबल मीडिया जर्नल- इंडियन एडीशन, पृ. 2249-5835.

परांजपे, एम. आर. (2014). गांधीज्म वर्सेस गांधीगीरी : द लाइफ एंड आफ्टरलाइफ ऑफ द महात्मा. Indi@logs, 1, पृ.103-122.

पांडेय, डॉ. एस. (2016). सिनेमा में गांधी-दृश्य अदृश्य पहलू. इंडियन सिनेमा- पास्ट, प्रजेंट एंड फ्यूचर (पृ. 1-3). विद्या प्रसारक मंडल के. जी. जोशी कॉलेज ऑफ आर्ट्स और एन. जी. बेडेकर कॉलेज ऑफ कॉमर्स, ठाणे.

बुटालिया, पी. (2000). रीकॉलिंग द महात्मा ऑन स्क्रीन. इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली, 27(3), पृ. 51-57

मारग्रेट, एम. एस. (2010, फरवरी 19). गांधी एंड द क्वेश्चन ऑफ कास्ट : ए स्टडी ऑफ सिलेक्ट तेलुगु एंड इंग्लिश फिक्शन एंड सिनेमा [अनपब्लिश्ड डॉक्टोरल डेजरटेशन]. द इंग्लिश एंड फॉरेन लैंग्वेजेज यूनिवर्सिटी. मार्च 4, 2021, को http://hdl.handle.net/10603/192734 से पुन:प्राप्त.

लिचनर, जी., और बंधोपाध्याय, एस. (2008, मई/जून). इंडियन सिनेमा एंड द प्रजेंटिस्ट यूज ऑफ हिस्ट्री : कंसेप्शंस ऑफ 'नेशनहुड' इन अर्थ एंड लगान. एशियन सर्वे, पृ.431-452.

शुक्ला, पी. (2013). फिल्म एज ए नैरेटिव फिक्शन. यूरोपियन ऐकैडमिक रिसर्च, पृ. 2722–2735.

सूरी, एस. (2019). ए गांधीयन अफेयर : इंडियाज क्यूरियस पोटरियल ऑफ लव इन सिनेमा. नई दिल्ली : हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया.

सिंह, यू. (2014). सिनेमा एंड द इंडियन नेशन. इलाहाबाद : इलाहाबाद यूनिवर्सिटी.

हीरानी, आर. (निर्देशक). (2006). लगे रहो मुन्नाभाई (चलचित्र).

हिंदी पत्रकारिता के अजातशत्रु की याद

संत समीर

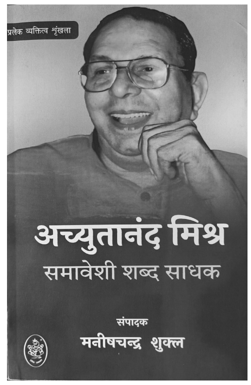

पुस्तक : अच्युतानंद मिश्र : समावेशी शब्द साधक
संपादक : मनीषचंद्र शुक्ल
प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन, 702, जे-50, ग्लोबल सिटी, विरार (वेस्ट), मुंबई, महाराष्ट्र-40130
मूल्य : 599 रुपये

इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो समझ में आएगा कि एहसास में डूबे हुए हर्फ इसके पन्नों में दर्ज हैं। स्तुतिगान नहीं, सचबयानी का दस्तावेज। पुस्तक जिस व्यक्तित्व पर केंद्रित है, आश्चर्य नहीं कि उस पर अपनी बात कहते हुए अलग-अलग ध्रुवों के लोग भी एक ध्रुव पर खड़े दिखाई देने ही लगते हैं। सही कहें तो आज की तारीख में पत्रकारिता जगत् में हमारे दौर की यही वह शख्सियत है, जिसके पास पहुँचकर दक्षिण और वाम संवाद करते नजर आते हैं। ऐसे में, यह कथन एकदम ठीक लगता है कि वयोवृद्ध पत्रकार अच्युतानंद मिश्र को किसी से कोई वैर नहीं है और न ही उनसे वैर रखने वाला दूर-दूर तक कोई दिखाई देता है। हिंदी पत्रकारिता का अजातशत्रु उन्हें यों ही नहीं कहा जाता। हाल ही में आई पुस्तक 'अच्युतानंद मिश्र : समावेशी शब्द साधक' में उनके जानने और चाहने वाले देश भर के लेखकों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों, समाजकर्मियों ने जिस तरह से उन्हें याद किया है, उससे उनके इस व्यक्तित्व की तसदीक होती है और कई और अनछुए पहलू हमारे सामने आते हैं।

कह सकते हैं कि हिंदी पत्रकारिता के सर्वाधिक उदात्त चेहरे की आखिरी कड़ी हैं अच्युतानंद जी। व्यवहार और पत्रकारिता कर्म, दोनों मामलों में उनका चेहरा अद्भुत निष्पक्षता का रहा है। पत्रकारिता से लेकर पत्रकारिता विश्वविद्यालय के कुलपति तक की यात्रा में कर्मक्षेत्र हो या निजी व्यवहार, दोनों में वे शिखर पर दिखाई देते हैं। हर किसी के साथ यथाशक्य सहयोगी भाव। उन्हें पता चले कि कोई पत्रकार-लेखक साथी मुश्किल में है तो उनके मदद के हाथ आगे बढ़ने को हमेशा तत्पर रहे हैं। वैचारिक रूप से किसी और ध्रुव पर खड़े व्यक्ति में भी उन्हें काबिलियत दिखाई दे तो उसे बुलाकर काम देने में उन्होंने कभी कोई दुराव नहीं रखा। अच्युतानंद जी ने हर तरह के लोगों के जीवन में कैसे प्रभाव डाला, इसे पुस्तक के 'आत्मीय मार्गदर्शक' शीर्षक लेख में अखिल भारतीय संत समिति के महामंत्री स्वामी जितेंद्रानंद सरस्वती कुछ यों लिखते हैं—"… संघ के वरिष्ठतम प्रचारकों में से एक रहे श्री यादवराव देशमुख और श्री अच्युतानंद मिश्र जैसे लोगों का मेरे जीवन को बदलने में एक विशिष्ट स्थान रहा है। श्री अच्युतानंद मिश्र ने हजारों लोगों का जीवन बदला, उनका मार्गदर्शन किया। ...मुझे गंगा आंदोलन को खड़ा करने की जिम्मेदारी दी गई। उस समय गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक गंगा किनारे के संपूर्ण क्षेत्र में 'गंगा संस्कृति प्रवाह यात्रा' के नाम से यात्रा निकाली गई। यात्रा अद्भुत रही। अनेक जगह से लाखों लोग यात्रा में शामिल हुए।...मेरी कोई बड़ी पहचान नहीं थी, परंतु संस्कृति प्रवाह यात्रा सफल हुई तो अच्युता चाचा जी के मार्गदर्शन के कारण।"

चार सौ चौंसठ पृष्ठ की पूरी पुस्तक को पाँच खंडों में विभाजित करके अच्युतानंद जी के विराट् व्यक्तित्व के कुछ जरूरी पहलुओं को रेखांकित करने वाली सामग्री सहेजी गई है। पहला खंड अच्युतानंद जी के रचनात्मक अवदान पर केंद्रित है। इस खंड में कुल तेईस लेख हैं। महाश्वेता देवी, कृष्ण बिहारी मिश्र, रमेशचंद्र शाह, विनोद कुमार शुक्ल, राजेंद्र मिश्र, कैलाशचंद्र पंत, प्रकाश चंद्रायन, यतींद्र मिश्र, रेशमी पांडा मुखर्जी, अभिजीत सिंह, उमेश चतुर्वेदी, मनीषचंद्र शुक्ल, रमेश नैयर, अनंत विजय, संजय द्विवेदी, राकेश मिश्र, नंदिनी सिन्हा/सुधीर कुमार, नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, गिरीश्वर मिश्र, विजयदत्त श्रीधर, कृपाशंकर चौबे, प्रमोद कुमार और के. विक्रम राव ने अपने-अपने तरीके से अच्युता जी के कृतित्व का मूल्यांकन किया है। विमर्श के केंद्र में अच्युतानंद जी की मौलिक कृतियाँ; मसलन, 'सरोकारों के दायरे', 'तीन श्रेष्ठ कवियों का हिंदी पत्रकारिता में अवदान', 'कुछ सपने कुछ संस्मरण' के अलावा उनके द्वारा संपादित 'हिंदी के प्रमुख समाचार पत्र और पत्रिकाएँ' (चार खंड) तथा 'पत्रों में समय संस्कृति' हैं। इस मूल्यांकन खंड में कई महत्त्वपूर्ण तथ्य उभर कर सामने आए हैं। हाल के दिनों में साहित्य और पत्रकारिता, दोनों ही क्षेत्रों में खासी चर्चित हुई अच्युतानंद जी की पुस्तक 'तीन श्रेष्ठ कवियों का हिंदी पत्रकारिता में अवदान' पर बात करते हुए कैलाशचंद्र पंत लिखते हैं—"वास्तव में पत्रकारिता के इतिहास में हिंदी साहित्यकारों के योगदान की बहुत कम चर्चा हुई है। श्री अच्युतानंद मिश्र की यह पुस्तक श्रमसाध्य तो है, यह पत्रकारिता और साहित्य के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास भी है। हिंदी साहित्य के विद्यार्थी पुस्तक को पढ़कर पत्रकारिता में साहित्य की भूमिका तय कर सकते हैं।...मिश्र जी के इस कथन से शायद ही कोई असहमत हो कि साहित्य की आत्ममुग्धता और पत्रकारिता की अहम्मन्यता से हिंदी की अक्षम्य क्षति हुई है। यह कटु सत्य है। इस विरोधाभास को दूर करने के प्रयास में मिश्र जी की यह पुस्तक एक शोधपरक दस्तावेज का काम करेगी।"

दूसरे खंड में अच्युतानंद जी के व्यक्तित्व पर बात की गई है। एक तरह से इसे संस्मरणों का खंड कह सकते हैं। अच्युतानंद जी को जिसने जिस रूप में देखा महसूस किया, वैसा बयान किया है। इन बयानों को पढ़ते हुए महसूस किया जा सकता है कि आज के इस दौर में अच्युतानंद जी जैसा निश्छल-निष्पक्ष व्यक्ति दुर्लभ है। प्रणव प्रियदर्शी लिखते हैं—"बतौर संपादक लोकतांत्रिक दायरे को परिभाषित करते हुए उनका सभी सहयोगियों से कहना था, 'आप जो भी करना चाहते हैं, आपके सामने तीन विकल्प हैं। एक, मुझे कन्विंस कर लीजिए और जो चाहे कीजिए। दूसरा उपाय है कि अगर मुझे कन्विंस नहीं कर पा रहे तो खुद मेरी बात से कन्विंस हो जाइए। अगर ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं तो फिर जैसा मैं कहता हूँ वैसा

कीजिए।' लेकिन इस थियरी के भीतर भी उन्होंने अपनी सोच का दयरा इतना व्यापक कर रखा था कि कभी यह एहसास ही नहीं हुआ कि संपादक से वैचारिक असहमति हमारे कामकाज को संकुचित कर सकती है। उन्हें इस बात का पूरा अंदाजा था कि वामपंथ की ओर तीव्र झुकाव की वजह से मैं वैचारिक धरातल पर उनसे एकदम अलग खड़ा था। लेकिन फिर भी न तो कभी उनका स्नेह कम पड़ा, न उनके मार्गदर्शन की जरूरत कम पड़ी।

रामबहादुर राय ने लिखा है—"संत कबीर का मशहूर कथन है, 'गुरु बिन सब निष्फल गया, पूछो वेद-पुरान'। इसका अच्युतानंद मिश्र से क्या संबंध है? गहरा संबंध है। यह संबंध बहुअर्थी नहीं है। एक ही अर्थ ढूँढ़ने और जानने की जरूरत है कि आज अच्युतानंद मिश्र पत्रकारिता के जगत् में गुरु स्थान पर हैं। पत्रकारिता अगर अपने गुरु से ज्ञान ग्रहण कर चले और कार्य करे तो उसका जितना उपकार होगा, उससे ज्यादा समाज का होगा।"

उनका कहना होता था कि व्यक्ति में कमिटमेंट तो होना ही चाहिए और जो आपको सही लगे, वही करना चाहिए।" इसी तरह से इस खंड के लेखकों में ऋता शुक्ल, चंद्रकला त्रिपाठी, राजकुमार सिंह, जयशंकर, दयानिधि मिश्र, यशवंत देशमुख, विश्वनाथ सचदेव, प्रकाश दुबे, अंशुमान तिवारी, सच्चिदानंद जोशी, रघु ठाकुर, संजय देव, रूबी सरकार, कमलेश मिश्र, अभय प्रताप, संत समीर, रामभुवन सिंह कुशवाह, सत्येंद्र प्रताप सिंह, उमेश चतुर्वेदी, आरती सारंग, धर्मेंद्र सिंह आदि को पढ़ना रोचक और अनेकानेक नए अनुभवों से गुजरना है।

पुस्तक के तीसरे खंड में अच्युतानंद जी के साथ जनसत्ता में काम कर चुके सहयोगियों के अनुभवों को सहेजा गया है। इस खंड में उनकी पत्रकारिता की प्रयोगशाला की निर्मितियों को देखा-परखा गया है। इस खंड के लेखक जनसत्ता में उनके सहयोगी रहे पत्रकार जरूर हैं, पर विमर्श का दायरा जनसत्ता के बाहर भी काफी दूर तक जाता है। रामबहादुर राय, राहुल देव, सुरेंद्र किशोर, अभय कुमार दुबे, मनोहर नायक, शंभूनाथ शुक्ल, अरविंद कुमार सिंह, हेमंत शर्मा, अरुण कुमार त्रिपाठी, प्रियदर्शन, बालेंदु शर्मा दाधीच, मनोज कुमार मिश्र, प्रमोद भार्गव और कृपाशंकर चौबे ने अच्युतानंद जी के साथ बिताए काम के दिनों के अनुभव साझा किए हैं। किसी के लिए मित्र, किसी के लिए गुरु, किसी के लिए अभिभावक, किसी के लिए किन्हीं और रूपों में प्रेरणापुरुष जैसी बहुरूपी उदात्तता की अनुभूतियाँ इन पृष्ठों में दर्ज की गई हैं। प्रियदर्शन लिखते हैं—"अच्युतानंद जी से एक अलग तरह का रिश्ता रहा। वे एक आश्वस्ति जैसे थे। मिलने-जुलने-गप करने में बहुत सहज। वे न अपनी बौद्धिकता से आक्रांत करते थे और न अपने विचारों से प्रभावित करने की कोशिश करते थे। वे अभिभावक जैसे थे, जो अपनों की फिक्र करते थे। उनमें एक सहज उदारता थी। इसी उदारता से उन्होंने अपने आसपास एक बड़ा आत्मीय संसार बसाया था, जो उनके प्रभामंडल के इर्द-गिर्द चक्कर नहीं काटता था, उनके अपनत्व की ऊष्मा से बँधा रहता था।" रामबहादुर राय ने लिखा है—"संत कबीर का मशहूर कथन है, 'गुरु बिन सब निष्फल गया, पूछो वेद-पुरान'। इसका अच्युतानंद मिश्र से क्या संबंध है? गहरा संबंध है। यह संबंध बहुअर्थी नहीं है। एक ही अर्थ ढूँढ़ने और जानने की जरूरत है कि आज अच्युतानंद मिश्र पत्रकारिता के जगत् में गुरु स्थान पर हैं। पत्रकारिता अगर अपने गुरु से ज्ञान ग्रहण कर चले और कार्य करे तो उसका जितना उपकार होगा, उससे ज्यादा समाज का होगा।"

चौथा खंड है—अच्युतानंद मिश्र की रचनाओं से एक चयन। कुल पंद्रह रचनाएँ इसमें शामिल की गई हैं। संपादक की ओर से उनकी रचनाधर्मिता का सोच-समझकर बनाया गया एक अच्छा कोलाज। इन व्यक्तिपरक और विषयपरक रचनाओं को पढ़ते हुए अच्युतानंद जी की सोच के व्यापक दायरे का कुछ-कुछ अंदाजा मिलता है। शीर्षकों पर निगाह डालते हुए वर्ण्य विषय का भी बहुत कुछ अंदाजा मिल जाता है। मसलन—पृथ्वी, मंगल और अंतरिक्ष, 'भारत' की संकल्पना, एक सहस्राब्दी बेचने का सुख, परंपरागत ज्ञान को कृत्रिम मेधा और संचार क्रांति की चुनौतियाँ, राष्ट्रकवि दद्दा मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का लोक और उनकी लोकदृष्टि, अज्ञेय और पत्रकारिता के प्रतिमान, धर्मवीर भारती और हिंदी पत्रकारिता, रघुवीर सहाय ने पत्रकारिता को नई ऊर्जा दी, त्रिलोचन जी की पीड़ा और जनसंस्कृति मंच, पंडित विद्यानिवास मिश्र और हिंदी पत्रकारिता, गँवई संवेदना के साधक, कठघरे में कैद भारतीय बुद्धिजीवी, उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ के बहाने, 'का'-पुरुषों को ललकारती तसलीमा।

आखिरी पाँचवा खंड 'अच्युतानंद मिश्र से संवाद' साक्षात्कारों का है। इसमें समय-समय पर अन्यान्य मुद्दों पर उनसे की गई बातचीत का संग्रह है। जिन लोगों ने साक्षात्कार लिया है, उनमें गोरखनाथ तिवारी, आलोक मेहता, अरविंद मोहन, अरुण कुमार त्रिपाठी, संत समीर, संतोष कुमार तिवारी, ऋतेश चौधरी और मनीषचंद्र शुक्ल के नाम हैं। निजी जिंदगी से लेकर पत्रकारिता, समाज, साहित्य जैसे विभिन्न मुद्दों पर अच्युतानंद जी ने सहज भाव से अपना मन खोला है। वे समस्याओं पर बात करते हुए समाधान के संकेत भी देते हैं। पत्रकारिता के विद्रूप और हिंदी के हाल पर उनकी चिंता गहरी है, पर नई पीढ़ी से उम्मीदें भी उनकी कम नहीं हैं। अंतिम दो पृष्ठों में उनका संक्षिप्त परिचय देकर पुस्तक की पूर्णता की गई है। इस तरह देखा जाए तो निस्संदेह यह एक जरूरी और संग्रहणीय पुस्तक बन पड़ी है और पत्रकारों, पत्रकारिता के विद्यार्थियों-शोधार्थियों तथा बुद्धिजीवियों के लिए लंबे समय तक उपयोगी बनी रहेगी। सामग्री चयन में संपादक मनीषचंद्र शुक्ल का श्रम स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रारंभ में ही इस बात की ओर ध्यान दिला देना उचित रहेगा कि यह पुस्तक अच्युतानंद के अन्यान्य पहलुओं पर बात करती है, पर उनका समाजिक चेहरा इसमें पूरी तरह उभर कर सामने नहीं आ पाया है। अच्युता जी के सामाजिक सरोकारों का दायरा व्यापक रहा और इस नाते इस पक्ष पर अभी और काम किए जाने की जरूरत है।

डिजिटल पत्रकारिता के बहुआयामी स्वरूप को दर्शाती पुस्तक

अल्बर्ट अब्राहम

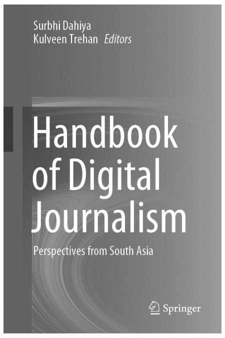

पुस्तक : हैंडबुक ऑफ डिजिटल जर्नलिज्म : पर्सपेक्टिव्स फ्रॉम साउथ एशिया
संपादक **:** सुरभि दहिया, कुलवीन त्रेहन
प्रकाशक : स्प्रिंगर, सिंगापुर
मूल्य : 12,794.00 रुपये

प्रो. सुरभि दहिया और डॉ. कुलवीन त्रेहान द्वारा संपादित 'द हैंडबुक ऑफ डिजिटल जर्नलिज्म : पर्सपेक्टिव्स फ्रॉम साउथ एशिया' डिजिटल पत्रकारिता के उभरते क्षेत्र, विशेष रूप से दक्षिण एशिया के गतिशील सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण अकादमिक योगदान है। स्प्रिंगर द्वारा 2024 में प्रकाशित यह पुस्तक सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि, अनुभवजन्य केस स्टडी और व्यावसायिक दृष्टिकोणों को समाहित करती है, जिससे इस क्षेत्र में डिजिटल पत्रकारिता के विकास का समग्र दृष्टिकोण प्राप्त होता है। कुल 62 मीडिया विद्वानों और पेशेवरों के योगदान से निर्मित इस पुस्तक में छह खंडों और 49 अध्यायों में पत्रकारिता में डिजिटलीकरण द्वारा उत्पन्न चुनौतियों, अवसरों और परिवर्तनों को दर्शाया गया है।

पुस्तक की प्रस्तावना में हांगकांग बैपटिस्ट विश्वविद्यालय में अंतरराष्ट्रीय संचार के प्रोफेसर और इंटरनेशनल एसोसिएशन फॉर मीडिया एंड कम्युनिकेशन रिसर्च (आईएएमसीआर) के अध्यक्ष दया किशन थुस्सू ने इस कार्य को 'दक्षिण एशिया के छात्रों, शोधकर्ताओं और शिक्षकों के लिए एक मूल्यवान पुस्तिका' के रूप में अनुशंसित किया है। पुस्तक को छह खंडों में व्यवस्थित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक डिजिटल पत्रकारिता के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को संबोधित करता है। इन खंडों में सैद्धांतिक रूपरेखा, देश-विशिष्ट केस स्टडी, समाचार उत्पादन और उपभोग की गतिशीलता, उभरती हुई तकनीकें, सोशल मीडिया और पत्रकारिता के बीच अंतर्संबंध और डिजिटल पत्रकारिता में नैतिक और नियामक चुनौतियों को शामिल किया गया है। यह विषयों की यह सुगठित प्रस्तुति सुनिश्चित करती है कि पाठक जटिल विषयों को व्यवस्थित रूप से समझ सकें। संपादक द्वय ने प्रस्तावना में दक्षिण एशिया में तेजी से इंटरनेट प्रसार और डिजिटल नवाचार के संदर्भ में पुस्तक की रूपरेखा तैयार की। उनका तर्क है कि इस क्षेत्र में डिजिटल पत्रकारिता, एक ओर लोकतंत्रीकरण के अवसर प्रदान करती है, तो दूसरी ओर गलत सूचना, डेटा हेरफेर और नैतिक दुविधाओं जैसी चुनौतियों का सामना करती है। यह द्वैत पूरी पुस्तक में प्रतिबिंबित होता है।

पुस्तक का प्रथम खंड (दक्षिण एशिया में डिजिटल पत्रकारिता : अवधारणा, विकास और वृद्धि) में सात अध्याय हैं, जो दक्षिण एशिया में डिजिटल पत्रकारिता की अवधारणा, विकास और वृद्धि पर केंद्रित है। यह खंड भारत में डिजिटल मीडिया अर्थव्यवस्था और डिजिटल मीडिया स्टार्ट-अप, डिजिटल पत्रकारिता और सार्वजनिक नीतियों के साथ-साथ पत्रकारिता शिक्षा के पाठ्यक्रम और शिक्षण दृष्टिकोण में हुए परिवर्तन पर भी चर्चा करता है। इस खंड के अध्याय न केवल ऐतिहासिक संदर्भ प्रदान करते हैं, बल्कि डिजिटल पत्रकारिता की सामाजिक और संस्थागत गतिशीलता पर इसके प्रभावों का भी विश्लेषण करते हैं।

दूसरे खंड (दक्षिण एशियाई देशों से डिजिटल पत्रकारिता के सबक) में चार अध्याय हैं, जिनमें श्रीलंका, नेपाल, भूटान और बांग्लादेश जैसे देशों में डिजिटल पत्रकारिता के क्षेत्रीय पहलुओं पर गहराई से चर्चा की गई है। ये अध्याय प्रायोगिक अध्ययनों और केस-आधारित विश्लेषणों से समृद्ध हैं, जो प्रौद्योगिकी, संस्कृति और मीडिया प्रथाओं के परस्पर संबंध को समझने में विशेष रूप से उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए, बांग्लादेशी पत्रकारिता में संवर्धित और आभासी वास्तविकता (एआर और वीआर) की खोज यह दर्शाती है कि ये प्रौद्योगिकियाँ कहानी कहने के तरीके को कैसे पुनःपरिभाषित कर रही हैं। वहीं, भूटान पर आधारित अध्याय यह उजागर करता है कि पारंपरिक मीडिया की धीमी वृद्धि की भरपाई में सोशल मीडिया कैसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस प्रकार के अध्ययन यह दर्शाते हैं कि दक्षिण एशिया में डिजिटल पत्रकारिता प्रथाओं की विविधता अनूठे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भों के कारण आकार लेती है।

> **'हैंडबुक ऑफ डिजिटल जर्नलिज्म' की प्रमुख विशेषताओं में से एक इसका अंत:विषयक दृष्टिकोण है, जो मीडिया अध्ययन, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों के दृष्टिकोणों को एकीकृत करता है। शिक्षाविदों, पेशेवरों और नीति-निर्माताओं के विविध विचारों का समावेश इस पुस्तक की विश्वसनीयता और प्रासंगिकता को बढ़ाता है।**

तीसरा खंड (डिजिटल पत्रकारिता : समाचार सामग्री, उत्पादन और उपभोग) डिजिटल युग में समाचार उत्पादन और उपभोग की गहन जाँच प्रदान करता है। 12 अध्यायों वाला यह खंड एकीकृत न्यूजरूम, डिजिटल समाचार प्लेटफॉर्म के राजस्व मॉडल, समाचारों के रिवर्स सोर्सिंग और डिजिटल स्पेस में बदलते समाचार मूल्यों जैसे विषयों पर चर्चा करता है। विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करने वाला एक अध्याय डिजिटल समाचार निर्माण के नृवंशविज्ञान आधारित अध्ययन (एथ्नोग्राफी) पर आधारित है, जो सांस्कृतिक अध्ययन दृष्टिकोण का उपयोग करके डिजिटल पत्रकारिता को आकार देने वाली संस्थागत प्रथाओं का विश्लेषण करता है।

दर्शकों के व्यवहार पर की गई चर्चाएँ विशेष रूप से विचारोत्तेजक हैं, जो यह स्पष्ट करती हैं कि जनसांख्यिकीय परिवर्तनों और प्रौद्योगिकी तक बढ़ती पहुँच ने समाचार खपत के पैटर्न को कैसे बदल दिया है। इस खंड में डिजिटल स्पेस में विकासात्मक पत्रकारिता की संभावना का भी विश्लेषण किया गया है, विशेष रूप से स्वास्थ्य सेवा और ग्रामीण विकास के क्षेत्रों में। एक अन्य महत्त्वपूर्ण विषय वेब एनालिटिक्स की खोज और इसका पत्रकारिता सामग्री पर प्रभाव है, जो इस डेटा-संचालित निर्णय लेने के युग में काफी प्रासंगिक है।

उभरती प्रौद्योगिकियाँ और स्वरूप

चौथा खंड (डिजिटल पत्रकारिता : स्वरूप और उभरती प्रौद्योगिकियाँ) में 10 अध्याय हैं, जो उभरती प्रौद्योगिकियों के पत्रकारिता पर प्रभाव को विश्लेषित करते हैं। डेटा पत्रकारिता, ट्रांसमीडिया स्टोरीटेलिंग और समाचार के गेमिफिकेशन पर आधारित अध्याय यह दर्शाते हैं कि तकनीकी प्रगति ने कहानी कहने के नवीन तरीकों को कैसे सक्षम बनाया है। विशेष रूप से बड़ा डेटा (बिग डेटा) और पत्रकारिता के लिए इसकी परिवर्तनकारी क्षमता पर आधारित अध्याय बहुत ही रोचक है, जो सैद्धांतिक दृष्टिकोण के साथ व्यावहारिक अनुप्रयोग भी प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, पॉडकास्टिंग, ब्लॉगिंग और कोविड-19 महामारी के दौरान मीम के उपयोग जैसे विशेष विषयों का समावेश चर्चा में गहराई जोड़ता है। ये अध्याय इस बात को उजागर करते हैं कि डिजिटल पत्रकारिता सामग्री निर्माण और प्रसार के विविध रूपों को अपनाने में कितनी लचीली है।

पाँचवें खंड (डिजिटल पत्रकारिता : पाँचवाँ स्तंभ, सोशल मीडिया, वैकल्पिक और एकीकृत संचार) में नौ अध्याय हैं, जो सोशल मीडिया और पत्रकारिता के बीच जटिल संबंधों का विश्लेषण करते हैं। इसमें सोशल मीडिया को एक साथ बाधा उत्पन्न करने वाला और सशक्त बनाने वाला, दोनों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेखकों ने आलोचनात्मक रूप से ट्विटर (अब एक्स) और फेसबुक जैसे प्लेटफार्मों के साथ-साथ सामुदायिक मीडिया पर गहन चर्चा की है, जो पत्रकारिता के मानदंडों, दर्शकों की सहभागिता और सार्वजनिक संवाद को पुनःपरिभाषित कर रहे हैं। मोबाइल मीडिया, नागरिक पत्रकारिता और सोशल मीडिया लिसनिंग (सुनने) की लोकतांत्रिक क्षमता पर चर्चाएँ विशेष रूप से प्रासंगिक हैं, खासकर एक ऐसे क्षेत्र में, जो व्यापक सामाजिक-आर्थिक असमानताओं से परिभाषित है। सोशल मीडिया मॉनिटरिंग की समीक्षा और इसकी निजता तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रभाव इस चर्चा में एक महत्त्वपूर्ण आयाम जोड़ते हैं। सोशल मीडिया के वादों और खतरों, दोनों को संबोधित करके यह खंड समकालीन पत्रकारिता में इसकी भूमिका पर एक संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

नैतिकता, नियम और साक्षरता

अंतिम खंड (डिजिटल मीडिया साक्षरता : फेक न्यूज से मुकाबला, सुरक्षा, नीतियाँ, कानून और नैतिकता) में सात अध्याय हैं, जो डिजिटल पत्रकारिता में नैतिक और नियामक चुनौतियों को संबोधित करते हैं। इसमें फेक न्यूज से मुकाबला करने, मीडिया साक्षरता की भूमिका, पत्रकारों के लिए डिजिटल सुरक्षा के महत्त्व और डिजिटल मीडिया के लिए नियामक उपायों पर गहन और विचारोत्तेजक चर्चाएँ शामिल हैं। पत्रकारिता नैतिकता पर आधारित अध्याय विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो डिजिटल युग में पेशेवरों द्वारा सामना की जाने वाली नैतिक दुविधाओं का व्यापक अवलोकन प्रस्तुत करता है। दक्षिण एशिया में प्रेस की स्वतंत्रता और पत्रकारों की सुरक्षा पर दिया गया जोर अत्यंत प्रासंगिक है। इन मुद्दों को उजागर करके संपादकों ने पत्रकारिता की निष्पक्षता और ईमानदारी की रक्षा के लिए मजबूत नीतियों और संस्थागत समर्थन की आवश्यकता पर बल दिया है।

'हैंडबुक ऑफ डिजिटल जर्नलिज्म' की प्रमुख विशेषताओं में से एक इसका अंतःविषयक दृष्टिकोण है, जो मीडिया अध्ययन, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों के दृष्टिकोणों को एकीकृत करता है। शिक्षाविदों, पेशेवरों और नीति-निर्माताओं के विविध विचारों का समावेश इस पुस्तक की विश्वसनीयता और प्रासंगिकता को बढ़ाता है। संपादकों का सैद्धांतिक गहनता और व्यावहारिक दृष्टिकोण के बीच संतुलन बनाने का प्रयास सराहनीय है। केस स्टडी, प्रायोगिक डेटा और वास्तविक दुनिया के उदाहरणों का उपयोग पुस्तक को छात्रों, शोधकर्ताओं और मीडिया पेशेवरों सहित व्यापक पाठक वर्ग के लिए सुलभ बनाता है। इसके अलावा, क्षेत्रीय दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करता है कि पुस्तक वैश्विक मीडिया अध्ययन में एक महत्त्वपूर्ण अंतर को पूरा करे, जो अक्सर दक्षिण एशियाई संदर्भ को नजरअंदाज करता है। हालाँकि पुस्तक व्यापक है, इस नाते अन्य क्षेत्रों के साथ एक तुलनात्मक विश्लेषण तथा दक्षिण एशिया की अनूठी चुनौतियों और अवसरों को समझने के लिए एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान कर सकती थी।

पुस्तक के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए भारत सरकार के पत्र सूचना कार्यालय में प्रमुख महानिदेशक रहे श्री राजेश मल्होत्रा कहते हैं, "द हैंडबुक ऑफ डिजिटल जर्नलिज्म' दक्षिण एशिया में डिजिटल पत्रकारिता के विकास को बहुत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती है। पुस्तक का दायरा अत्यंत व्यापक है, जिसमें डिजिटल मीडिया की अर्थव्यवस्था, कंवर्जेंस, डिजिटल न्यूज प्रोडक्शन, विभिन्न प्रारुप, एकीकृत न्यूजरूम, स्मार्ट न्यूज, संवर्धित एवं आभासी वास्तविकता, डेटा विज्ञान, डेटा पत्रकारिता, गेमीफिकेशन, पॉडकास्ट, ब्लोगिंग, ओपन-सोर्स पत्रकारिता, मोबाइल मीडिया, मीडिया साक्षरता, फेक न्यूज से मुकाबला, डिजिटल सुरक्षा, पत्रकारों की सुरक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विषय शामिल हैं। पुस्तक मीडिया एवं जन संचार के क्षेत्र में विविध सिद्धांतों और प्रयोगों को दर्शाती है। गुणात्मक अंतर्वस्तु पर आधारित यह संग्रह मीडिया जगत, शोधार्थियों और छात्रों को अवश्य आकर्षित करेगा।"

बांग्लादेश की डेफोडिल इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी के अध्यक्ष डॉ. मोहम्मद सबुर खान कहते हैं, "डिजिटल पत्रकारिता की चुनौतियां अनंत हैं। पत्रकारों को सोशल मीडिया की जटिलताओं को रेखांकित करने की, फेक न्यूज एवं झूठी खबरों के बढ़ते मामलों को रोकने की तथा इन्फॉर्मेशन ओवरलोड एवं क्षणिक ध्यान के समय में दर्शकों को आकर्षित करने की आवश्यकता है। डिजिटल पत्रकारिता रुचिकर स्टोरीटेलिंग, आडियंश इंगेजमेंट और डेटा आधारित रिपोर्टिंग के लिए नए अवसर लेकर आई है। मीडिया अध्ययन और सामाजिक विज्ञान में आ रहे नई पीढ़ी के छात्रों और शिक्षकों के लिये इस पुस्तक में बहुत कुछ सीखने को है। बांग्लादेश से लेकर सभी दक्षिण एशियाई देशों के पाठकों के लिए यह पुस्तक अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।"

संचार माध्यम

'संचार माध्यम' (ISSN : 2321-2608) भारतीय जन संचार संस्थान (सम विश्वविद्यालय), नई दिल्ली की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित होने वाली अग्रणी 'पीयर रिव्यूड' और यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में आरंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध-पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों /आलेखों की बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (ब्लाइंड पीयर रिव्यू) कराई जाती है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है। अब पत्रिका का प्रकाशन त्रैमासिक हो रहा है।

'संचार माध्यम' में निम्नलिखित श्रेणी के शोध-पत्र प्रकाशित किए जाते हैं :

1. **मौलिक शोध पर आधारित शोध-पत्र:** इस प्रकार के शोध-पत्र की शब्द सीमा 4000 से 5000 शब्द होनी चाहिए, जो डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। साथ ही अधिकतम 250 शब्दों में शोध सारांश भी शामिल होना चाहिए। शोध-पत्र सिर्फ यूनिकोड फॉण्ट में ही टाइप होना चाहिए और उसमें संबंधित शोध की पूर्ण तस्वीर दृष्टिगोचर होनी चाहिए। शोध-पत्र से जुड़े छायाचित्र/ग्राफ/टेबल, यदि कोई हों, तो वे भी अपनी मूल प्रति के साथ (एक्सेल फाइल इत्यादि) संलग्न किए जाने चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि छायाचित्रों का रिज़ॉल्यूशन उच्च स्तर का हो ताकि प्रिंटिंग के समय गुणवत्ता प्रभवित न हो। पीडीएफ फाइल में शोध पत्र स्वीकार्य नहीं होंगे।
2. **लघु शोध आधारित शोध-पत्र:** लघु शोध आधारित आलेख 2000 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए, यानी लगभग 4-5 पृष्ठ, डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। यह भी यूनिकोड फॉण्ट में ही टंकित होना चाहिए। ऐसे शोध-पत्र भी पूर्ण हो चुके शोध/अध्ययनों पर ही आधारित होने चाहिए। इसमें ऐसे तथ्यपूर्ण शोध-पत्र भी शामिल हो सकते हैं, जिनका संबंध किसी नवीन तकनीक के विकास से है। ऐसे शोध-पत्रों का शोध सारांश 80 से 100 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए।
3. **शोध समीक्षा:** इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले समीक्षात्मक आलेखों में प्रस्तावना, साहित्य समीक्षा, शोध परिणाम आदि के अलावा संबंधित शोध में मौजूद कमियों और उन कमियों के सुधार हेतु सुझावों का भी समावेश होना चाहिए, ताकि भविष्य में अन्य शोधकर्ता उन कमियों को दूर करने की दिशा में प्रयास कर सकें।
4. **पुस्तक समीक्षा:** 'संचार माध्यम' में पत्रकारिता और जनसंचार पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा (शब्द सीमा: 1500) भी प्रकाशित की जाती है। अन्य विषयों जैसे सामाजिक ज्ञान, सामाजिक कार्य, एंथ्रोपोलोजी, कला आदि पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा भी भेजी जा सकती है बशर्ते उनका शीर्षक मीडिया अध्ययन से जुड़ा हो या उनकी सामग्री में कम-से-कम 40 प्रतिशत अध्याय मीडिया, जनसंचार या पत्रकारिता से जुड़े हों। पुस्तक समीक्षाएँ उनके पूर्ण विवरण जैसे प्रकाशक, वर्ष, संस्करण, पृष्ठ संख्या, मूल्य व पुस्तक के छायाचित्र के साथ भेजी जानी चाहिए।

प्रकाशन नैतिकता और साहित्यिक चोरी

- संचार माध्यम के लिए जो शोध आलेख भेजे जाएँ उन्हें अन्य पत्रिकाओं को नहीं भेजना चाहिए और न ही शोध आलेखों को पूरी तरह से या आंशिक रूप से उसी सामग्री के साथ किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित किया जाना चाहिए। लेखकों को सुनिश्चित करना चाहिए कि 'संचार माध्यम' में प्रकाशन के लिए भेजे जाने वाले आलेख किसी भी रूप में या मिलती-जुलती सामग्री के रूप में पहले प्रकाशित न हुए हों।
- किसी भी तरह की साहित्यिक चोरी किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं है। आलेख के साथ मूल कार्य का घोषणापत्र प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है, जिसके बिना आलेखों पर कोई विचार नहीं किया जाएगा। लेखकों को आलेखों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करनी चाहिए। कोई भी अनैतिक व्यवहार (साहित्यिक चोरी, गलत डेटा आदि) किसी भी स्तर पर (पीयर रिव्यू या संपादन स्तर पर भी) आलेख की अस्वीकृति का कारण बन सकता है। किसी भी समय साहित्यिक चोरी और तथ्यों, निष्कर्षों के स्वनिर्मित आदि पाए जाने पर प्रकाशित आलेख वापस लिए जा सकते हैं।

बहुस्तरीय समीक्षा (पीयर रिव्यू) प्रक्रिया

'संचार माध्यम' में प्रकाशनार्थ प्राप्त सभी आलेख दोहरी या बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यू) प्रक्रिया के अधीन हैं। शोध आलेखों को विशेषज्ञों के पास बिना उनके लेखक/लेखकों का नाम बताए समीक्षा के लिए भेजा जाता है। उनकी टिप्पणी, सुझावों और अनुशंसा के आधार पर ही शोध-पत्रों के प्रकाशन का निर्णय लिया जाता है। संपादन-परिषद् के संतुष्ट होने पर ही शोध-पत्र प्रकाशित किया जाता है। इस प्रक्रिया में आमतौर पर 4-6 सप्ताह लगते हैं। समीक्षा प्रक्रिया पाँच चरणों पर आधारित है:-

क) जस के तस स्वीकार करने लायक
ख) मामूली सुधार की आवश्यकता
ग) मध्यम सुधार की आवश्यकता
घ) अधिक सुधार की आवश्यकता
ङ) अस्वीकृत

'संचार माध्यम' तीव्र समीक्षा प्रक्रिया का पालन नहीं करता है

लेखों का संपादन

यदि प्रकाशन के लिए लेख स्वीकार किया जाता है, तो उसे कम-से-कम दो संपादन चरणों से गुजरना पड़ता है। लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि सभी स्वीकृत लेख संपादन के किसी भी स्तर पर संपादकों द्वारा आवश्यक संशोधनों व परिवर्तनों के अधीन हैं।

जनवरी-मार्च 2025, खंड-37, अंक-1
आईएसएसएन : 2321-2608

टाइटल कोड : DELHIN28999
सदस्यता शुल्क : ₹ 200 प्रति अंक
(वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹ 800)

भारतीय जन संचार संस्थान

समविश्वविद्यालय

भारत का नंबर एक मीडिया संस्थान

स्नातकोत्तर डिग्री पाठ्यक्रम

- एम.ए. स्ट्रैटिजिक कम्युनिकेशन
- एम.ए. मीडिया बिजनेस स्टडीज

स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम

- अँग्रेजी पत्रकारिता • हिंदी पत्रकारिता • रेडियो और टीवी पत्रकारिता
- विज्ञापन एवं जनसंपर्क • उड़िया पत्रकारिता • मलयालम पत्रकारिता
- उर्दू पत्रकारिता • मराठी पत्रकारिता • डिजिटल मीडिया

नवीनतम और सुसज्जित सुविधाएँ

- साउंड और टीवी स्टूडियो तथा ऑडियो विजुअल सेटअप
- डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक कैमरों के साथ टीवी और वीडियो प्रोडक्शन
- मल्टी कैमरा स्टूडियो सेटअप • नॉन-लीनियर वीडियो एडिटिंग
- एडिटिंग कंसोल • डिजिटल साउंड रिकॉर्डिंग • डीएसएलआर कैमरा
- 4K वीडियो कैमरा • प्रोजेक्टर और वातानुकूलित कक्षाएँ
- कंप्यूटर लैब • मल्टीमीडिया सिस्टम
- वॉयस रिकार्डर, ग्राफिक और लेआउट डिजाइनिंग
- अपना रेडियो 96.9 एफएम

छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा

- सीखने के मजबूत और व्यावहारिक तरीके
- नवीनतम तकनीक और सॉफ्टवेयर के साथ ज्ञान को बढ़ाना
- विशेष बीट रिपोर्टिंग सत्र
- मीडिया उद्योग के विशेषज्ञों के व्याख्यान

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
(सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार)

जेएनयू न्यू कैंपस, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110067
फोन : 011-26742920/296 | वेबसाइटः www.iimc.gov.in
ईमेलः iimc1965@gmail.com

मुद्रक और प्रकाशक प्रो. (डॉ.) वीरेंद्र कुमार भारती, प्रमुख-प्रकाशन विभाग, द्वारा भारतीय जन संचार संस्थान के लिए जे.के. ऑफसेट ग्राफिक्स प्रा. लि., B-278, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित तथा भारतीय जन संचार संस्थान, नया जेएनयू कैंपस, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110067 से प्रकाशित । संपादक : प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार